भूमिका।

"समयसार परमागम" प्राकृत भाषामें श्री कुन्दकुन्दाचार्य रचित वर्तमान उपलब्ध जैन साहित्यमें एक प्राचीनतम व सर्वोत्कृष्ट आतमहित द्योतक ग्रंथराज है। इसकी संस्कृत वृत्ति श्री अमृतचन्द्र आचार्यने बहुत विद्वता व प्रेमसे लिखी है। इस वृत्तिके मध्यमें विद्वान आचार्यने गाथाओंका भाव खींचकर संस्कृतमें श्लोक भी रच दिये हैं जिनको कलश कहते हैं। इस समयसार कलशोंको संग्रह कर हिन्दी भाषामें सबसे प्राचीन टीका राजमल्लजीने की है। इसीको पढ़कर प्रसिद्ध अध्यात्मरसिक श्री० पंडित बनारसीदासजीने कवित्त छंद बनाए हैं। हमको बहुत उत्कंठा थी कि राजमल्ल कृत टीकाका दर्शन प्राप्त करें। इनही कलशोंकी एक संस्कृत टीका विजयकीर्ति महाराजके शिष्य भ० शुभचंद्रजीने वि० सं० १५७३ में रची थी जो हिन्दी टीका सहित परमाध्यात्म तरंगिणीके नामसे मुद्रित होचुकी है उसके आधार पर यह राजमल्लीय टीका नहीं है—यह स्वतंत्र रूपसे राजमल्लजीसे रचित है।

इसी वर्ष हमारा गमन सागर (मध्यप्रांतमें) हुआ, वहां सेठ जवाहरलालजी समैयाने इस राजमल्ल कृत टीकाकी एक प्रति हमको दिखलाई। उसको पढ़कर मेरा मन मोहित होगया। उनसे वह प्रति स्वाध्यायार्थ लेली। जैसा जैसा मैं स्वाध्याय करता था राजमल्लजीकी अद्भुत विद्वताका परिचय पाता था। फिर अन्य भंडारोंमें भी खोज करनेसे इसकी प्रतियें दृष्टिगोचर हुईं। बासौदा स्टेट ग्वालियरके प्राचीन भंडारमें तथा अंकलेश्वर जिला भरुच निवासी देशसेवक भाई छोटालाल घेलाभाई गांधीके घरके पुस्तकालयमें भी दर्शन हुए।

इस वर्ष धाराशिव उर्फ ऊसमानाबादमें जिनवाणी प्रेमी सेठ नेमचन्द बालचन्द वकीलकी प्रेरणासे मैं वर्षाऋतुमें ठहरा तब मेरे अंतरंगने प्रेरणा की कि मैं इस राजमल्ल कृत टीकाका प्रकाश कराऊं जिससे समयसारके रसिक पाठकोंको विशेष लाभ हो और राजमल्लजीके परिश्रमकी सफलता हो। तब मैंने तीन प्रतियोंको सामने रखकर उसकी प्रतिलिपि करनी प्रारम्भ की। (१) सागरवाली प्रति जो वि० सं० १८६९ की लिखित स्थान मिरजापुरकी है। (२) ब्र० पार्श्वदास द्वारा बासौदाके प्राचीन भंडारकी प्रति जिसपर लिपि संवत नहीं है, लेकिन प्राचीन है। (३) भाई छोटेलाल अंकलेश्वर द्वारा वि० सं० १७७५ की। यह तीसरी प्रति बहुत शुद्ध लिखी हुई थी। तथा इस प्रतिके अंतमें लेखकने जो वर्णन दिया है उससे पाठक समझेंगे कि पहले ग्रंथको पढ़नेके लिये मिलना कितना दुर्लभ था। वह वर्णन इस प्रकार है—

'इति श्री नाटक समयसार कलशा अमृतचन्द्र कृत टीका तथा बनारसीदास कृत भाषा बद्ध कवित्त समाप्त एही ग्रथकी प्रति एक टीका दूसरी थी ताके पास बहुत प्रकार करि मागी है वा प्रति लिखनको बाचनको नहीं दीनी, पीछे सब भाई मिलि विचार कीयो जो ऐसी प्रति होवै तो बहोत अच्छो ऐसो विचारके तीन प्रति जुदी २ देखिके अर्थ विचारिके अनुक्रमै २ समुच्चय लिखी है। दोहा-समयसार नाटक अकथ, अनुभवरस भडार। याको रस जो जानही, सो पाव भवपार ॥ १ ॥ चौपाई-अनुभौरसके रसियाने, तीन प्रकार एकत्र बखाने। समयसार कलशा अति नीका, राजमल्ल सुगम यह टीका ॥ २ ॥ ताके अनुक्रम भाषा कीनी, बनारसी ग्याता रस लीनी। ऐसा ग्रन्थ अपूरब पाया, तासौं सबका मनहिं लुभाया ॥३॥ दोहा-सोई ग्रथके लिखनको किये बहुत परकार। बाचनको देवे नहीं, जो हटी रतन भडार ॥ ४ ॥ मानसिंघ चितवन कियो, क्यों पावै यह ग्रथ। गोविन्दसों इतनी कही, पास सरस यह ग्रथ ॥ ५ ॥ तब गोविंद हर्षित भयो, मन विचि धरि हुल्लास। कलशा टीका अरु कवित्त, जेजे य तिहि पास ॥ ६ ॥ चौपाई-जो पडितजन बाचो सोइ, अधिको उचो चौकस जोई। आगे पाछे अधिको आणो देखि विचार सुगुणसे पूछो ॥७॥ अल्प मति मेरी, मनमें धरू दढता घनेरी। जा बिन भजन समुद्र तरनों, है अनादि पना नहिं मरना ॥ ८ ॥ इहि विधि ग्रथ लिखायो नीको, समयसार सबके सिर टीको। सतरहसै पचोत्तर मानो, फागुन कृष्ण सप्तमी मानो ॥९॥ इति सपूर्णम्-सवत १७७ वर्ष फागुन वदी ८ सोमवासरे लिखियो बाई मोती ज्ञानावरणी क्षयनिमित्त लिखापित श्रीरस्तु'

छापेकी प्रतिको देखकर व इस ज्ञा० १८ की प्रतिसे मिलान कर ग्रथकी लिपि की गई तथा हरएक श्लोकका राजमल्ल कृत अर्थक पीछे नहीं उचित समझा कम व अधिक भावार्थ आजकलकी हिन्दीमें लिख दिया जिससे पढ़नेवालोंको कठिनता न हो तथा फिर बनारसीदास कृत छन्द भी सग्रह कर दिये राजमल्लजीकी विद्वता टीकाके ध्यानसे पढ़नेसे ही झलकती है।

बादशाह अकबरके समयमें राजमल्लजी हुए हैं। उस समयकी भाषा कैसी प्रचलित थी यह भाषा मनुष्यके आसपासकी विदित होती है यह ज्ञान भाषाके इतिहास जाननेवालोंका भी प्रकार होजाय इसलिये उनके ही वाक्योंमें जैसीकी तैसी टीका प्रकाश करना ही उचित समझा। थोड़ेसे शब्द नीचे लिये जाते हैं इनको ध्यानमें रखनेसे राजमल्ल कृत टीकाके समझनेमें बड़ी सुगमता होगी-

छै=है। कहु=को। तिहिंते=इसलिये। थोहू=यह भी। ता हूँ=उसको। म्हाको=हमारा। किस्यो छै=कैसा है। जिहिको=जिसका। तिहिको-उसको। तेहमाहे=तिनमें। कहेवा योग्य छै=कहना योग्य है। पावै=बिना। एवै=इस। करिसी=करेगी। किहाके=किसीके।

वक्तव्य एक समान है। इत्यादि कारणोंसे हमको तो अबतक यही निश्चय होता है कि कवि राजमल्ल व पांडे राजमल्ल दोनों एक ही हैं।

अन्य विद्वान इस समयसार ग्रथको पूर्ण पढ़कर विचार करें। जो विद्वता पंचाध्यायी-में है वही विद्वता इस टीकामें झलक रही है।

अध्यात्मप्रेमी इसे पढ़कर स्वानुभवको प्राप्त करें इसी भावसे इसको प्रकाशनार्थ लिखा गया है।

कार्तिकवदी १ वी० स० २४५५ शनिवार
ता० १९-१०-२९
धाराशिव (उसमानाबाद) — ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद।

विषयसूची।

श्रीमान् सेठ नेमचन्द बालचन्दजी वकील–उसमानाबाद।

[इस शास्त्रको "जैनमित्र" के ग्राहकोंको भेटमें देनेवाले दानी नररत्न]

जैनविजय प्रिन्टिंग प्रेस–सूरत।

श्री सेठ नेमचन्द वालचन्द वकील और उनके कुटुम्बका-संक्षिप्तपरिचय ।

इस ग्रंथको प्रकाश करनेमें विपुल आर्थिक सहायता देनेवाले श्री० सेठ नेमचंद वालचंद वकील धाराशिव (उसमानाबाद) जिला सोलापुर निवासी दशाहूमड़ जातिके दिगंबर जैन-शोलापुर जिलेमें माननीय धनवान सद्गृहस्थ हैं। इस समय आप कई लक्षके धनी हैं। आपके बड़े बाबा रतनचन्दजी गुजरातके जादर ग्राम सस्थान ईडरसे व्यापार निमित्त धाराशिवमें आकर बसे थे उस समय उनके पास मात्र ३) की पूंजी थी।

रतनचन्दजीके पुत्र कस्तूरचन्दजी हुए। कस्तूरचन्दजीके दो पुत्र हुए-वालचन्द और अमीचन्द। सेठ कस्तूरचंदजी वि० स० १९०० के अनुमान जब गिरनारजीकी यात्रार्थ गए थे और उनका वहीं स्वर्गवास होगया था तब सेठ वालचंदजीकी आयु १६ वर्षकी थी। उस समय बहुतसा कर्ज माथेपर था। वालचन्दजी व्यापारमें कुशल थे। संवत् १९०८ तक तो स्थिति साधारण रही। धीरे धीरे सब कर्जा चुका दिया गया फिर २५-२६ वर्षमें इतनी आर्थिक उन्नति की कि घराना लक्षपति गिना जाने लगा तब सेठ वालचंदजीने अपने घरका मकान २० हजारकी लागतका बनवाया। वालचंदजीके चार पुत्र थे-रामचंद, नानचंद, नेमचंद, और माणिकचंद। सर्व ही व्यापारमें कुशल हुए। रामचंदजी मराठी फारसी उर्दू जानते थे। इनका देहान्त स० १९६६ में ४४ वर्षकी आयुमें होगया। इनके सुपुत्र फूलचंदजी बी० ए० एल एल० बी० वकील अब विद्यमान हैं। जिनकी आयु अब ३० वर्षकी है। नानचंदजी संस्कृत, उर्दू, मराठी व जैनधर्मके भी ज्ञाता थे, वकील थे व मराठीमें अच्छी कविता करते थे। आपने मराठी कवितामें द्रव्यसंग्रह, श्रावक प्रतिक्रमण व रविवार व्रत कथा रची है। आपका स्वर्गवास ५९ वर्षमें वि० स० १९८१ में होगया। आपके मोतीचन्द व हीराचन्द दो सुपुत्र थे। दोनों युवावयमें कालवश हुए। मोतीचन्दके पुत्र विनयकुमार अब विद्यमान है।

इस चारित्रके मुख्य नायक श्री० नेमचन्दजी सु० कार्तिक वदी १२ स० १९१० को जन्मे थे। आप मराठी, उर्दू, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, इंग्रेजीके ज्ञाता व वकालत तथा व्यापारमें अति कुशल हैं। आपको बाल्यावस्थासे धर्मका ज्ञान न था परन्तु स० १९५०के अनुमान सेठ रामगोपाल खंडेलवाल श्रावकने आपको स्वाध्यायका नियम कराया, तबसे आपको जैनधर्मकी रुचि हुई। संवत् १९६९ में आपने पद्मनंदीपच्चीसी संस्कृत ग्रंथका मराठी व गद्य पद्यमें अनुवाद प० कल्लाजी जोशीसे कराया व स्वयं उसकी हिन्दी करके

उसको प्रसिद्ध किया। उस समय आप संस्कृत नहीं जानते थे। फिर आपने संस्कृत व्याकरण व साहित्यका व धर्मशास्त्रका अच्छा अभ्यास कर लिया।

आपके दो विवाह हुए। दोनों पत्नी अब नहीं हैं। पहली पत्नीसे छः लड़कियें व दो लड़के जन्मे जिनमेंसे मात्र दो लड़कियोंकी शादी कर सके। बड़ी लड़की राजबाईका देहान्त होगया। उसके दो पुत्र व एक पुत्री सजीवित है। छोटी लड़की माणकबाई हीराचंद दीपचंद अक्कलकोटके पुत्र रावजीको विवाही गई थी। वह १८ वर्षकी आयुमें ही विधवा होगई तब वह संस्कृत व धर्म कुछ नहीं जानती थी, परन्तु सेठ नेमचन्दजीने पुत्रीको अपने घरमें रखकर संस्कृत व धर्मकी स्वयं शिक्षा दी व इतनी योग्य कर दी कि वह आज संस्कृत सुगम श्लोकका अर्थ कर लेती है व सर्वार्थसिद्धि तथा गोम्मटसार समझती है। इनकी आयु अब ३६ वर्षकी है। सेठ माणिकचन्दजीकी आयु ५२ वर्षकी है। यह मराठी, उर्दू, हिन्दी जानते हैं। आपकी धर्मपत्नी अब नहीं है। दो पुत्र व एक पुत्री मौजूद हैं। पुत्र कुमुदचंद बी० ए० में व विमलचंद ९वीं में पढते हैं। पुत्री फूलबाई विवाहित है।

सेठ बालचंदजीके भाई अमीचंदके पुत्र हीराचद हुए। संवत १९५७ तक ये सम्मिलित थे। फिर इन्होने अपना कार्य व्यवहार पृथक् कर लिया। धाराशीवमें सेठ हीराचन्द अमीचन्दका भी घर माननीय धनवान सद्गृहस्थ गिना जाने लगा। सेठ बालचंदजीके सुपुत्रोंमें बराबर ऐक्य रहा। सेठ बालचन्दजीका देहांत सम्वत् १९६१ में हुआ। पश्चात् चारों भाइयोने व्यापारमें बराबर उन्नति की है। सेठ नेमचदजी धाराशिवमें प्रसिद्ध प्रथम नंबरके वकील है। आप वकालतमें भी अच्छा धन कमाते है। मराठी गद्य भी बहुत अच्छा लिखते हैं। आपने सप्त तत्त्व और गुणस्थान चर्चा नामकी मराठीमें एक पुस्तक प्रकाशित की है। व अभी गोम्मटसार कर्मकाण्डका स्वाध्याय करते हुए आप उसका संक्षिप्त विवरण मराठीमें लिख रहे हैं। आप गुणग्राही व स्वतत्र विचारक हैं। जैनसमाजके सर्व ही समाचारपत्रोंको पढ़ते रहते हैं। सर्वदेशी शिक्षासंस्थाओंमें भी सहाय करते रहते हैं। आपने सकुटुम्ब दो दफे श्री सम्मेदशिखरजीकी व एक दफे श्री गोम्मटस्वामीकी यात्रा की। सं० १९८८ में आपने श्री सम्मेदशिखरजीकी उपरली कोठीके मंदिरजीमें ७०४) देकर संगमर्मरका पत्थर लगवाया। आप व आपके भाइयोको विद्याका बड़ा ही प्रेम है। इसलिये उन्होंने श्री कुन्थलगिरि देशभूषण कुलभूषण ब्रह्मचर्याश्रमको २०००), महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजाको २०००), श्राविकाश्रम बंबईको १०००), गोपाल जैनसिद्धांत विद्यालय मोरेनाको ६००) व स्यद्वाद महाविद्यालय काशीको ५००) दान किये हैं। इसके सिवाय विद्या संस्थाओंको जो ५००)से कमकी फुटकल रकमें दीं उनका उल्लेख यहांपर नहीं किया गया है। कुन्थलगिरजी क्षेत्रके प्रबन्धार्थ भी ५००) दान किया है।

सेठ नेमचन्दजीको जिनवाणीके प्रकाशका इतना प्रेम है कि आपने २०००) देकर कलकत्तेकी जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था स्थापित कराई जिसमें गोम्मटसार ऐसे महान् ग्रन्थका प्रकाश हुआ व माणिकचन्द ग्रन्थमालामें आपने ७००) देकर संस्कृत हरिवंशपुराण प्रगट कराया व और भी सहायता ग्रन्थ प्रकाशनमें दी। इस समय आप श्री अमितगति आचार्यकृत "पञ्चसंग्रह" ग्रन्थका हिन्दी भाषान्तर पंडित वंशीधरजी शास्त्री सोलापुर द्वारा प्रकाश करा रहे हैं। जिसमें करीब १॥ हजार खर्च होंगे तथा इस समयसार रायमल्लीय टीकाके प्रकाशनमें आपने बड़ी भारी सहायता देकर इस ग्रन्थको जैनमित्रके ग्राहकोंको मुफ्त वितरण कराया है। आपके कुटुम्बने १६०००) लगाकर धाराशिवमें एक रमणीक मंदिर भी श्री आदिनाथस्वामीका निर्माण कराया है। आप बड़े उत्साहित, विद्याप्रेमी व जिनवाणीभक्त हैं। स्वाध्याय व सामायिकमें नित्य लौलीन हैं। आपकी भावना है कि श्री धवल जयधवल आदि महाग्रन्थोंका भी लाभ भाषाटीका द्वारा सब जैनसमाजको होजावे। इस समय आप ५७ वर्षके हैं व अपने गृही धर्मसाधनमें रत हैं-गोम्मटसारका सूक्ष्मतासे मनन करते हैं। आपने अमितगतिकृत सामायिक पाठका मराठी भाषांतर भी कवितामें किया है।

आपका जिनवाणी प्रेम सारे जैनसमाजको अनुकरणीय है। व जैनमित्रके पाठकोंको इतना बड़ा ग्रन्थ उपहारमें मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसके कारणभूत आप ही हैं। आप चिरायु होकर विशेष धर्मसाधन, जिनवाणीसेवा, व परोपकार करनेमें अपना जीवन वितावें, यही हमारी आन्तरिक भावना है।

नोट-इस ग्रन्थकी कुल १२०० प्रतियां प्रगट की गई हैं जिनमेंसे ११०० 'मित्र'के ग्राहकोंको भेटमें दी गई हैं व शेष विक्रयार्थ अलग निकाली गई हैं।

सूरत
वीर सं. २४६०
पौष सुदी ११ } मूलचन्द किसनदास कापड़िया-प्रकाशक।

शुद्धाशुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
२	६	जाणितो	जाणिवो
,,	१४	जानता भवता	जानता अनुभवता
		जाननहारी	जाननहारो
३	२६	अडील	अडोल
४	२१	शकोन	को सौन
,,	,,	कमर	करम
,,	२२	धुलत	घुलत
५	१९	घुन	धन
८	२१	कुनि	फुनि
१०	६	ममता	भ्रमता
१९	३	तृण छे	झूठा छे
,,	२३	यथार्थ	पर्याय
,,	३६	भुणहि	मुणहि
,,	३७	तहु	लहु
१९	१६	वृथा	पृथग्
,,	२९	आपुनयो	आपुनपो
२१	८	जैके	जैसे
,,	१७	दह्यो	रह्यो
२२	११	तहु	कहु
२५	२७	णिच्छयवाण्ण	णिच्छयणाएण
२६	७	दर्शश	दर्शन
२९	११	अया	अप्पा
,,	१६	व्यान	ध्यान
३१	६	कुनि	फुनि
४०	२१	अतर झूठी	अतर गूझी
,,	२२	सव झूठी	सव सूझी
,,	२५	यावद्वत्तिमत्यन्त	यावद्द्रुत्तिमन्दन्त
४२	२४	आयो पर जायो	आपो पर जान्यो
४३	९	शुद्ध नाही	शुद्ध
४४	१३	मोह उदह	मोक्ष जयह
४७	१३	कायो	कादो
,,	२०	विभवता	विभावता
४८	५	यान्नो	वान्नो
५०	७	दयादेव	उपादेय
५२	१२	नाने	नाहो
५६	२६	सुद	सुद्ध
५७	९	अकुलता	आकुलता
,,	२९	आतहिं	जातहिं
५८	३	परिणायो	परिणयो
६१	१३	दूणो	डणो
६२	५	याद करि	पाय करि
६५	२२	अनुमान	अनुभाग
६८	२०	आत्माको	आत्माके
८३	८	योगाभिलाप	भोगाभिलाप
८५	१७	अशक्त	आशक्त
८६	३	मुक्ता	मुत्तवा
८७	४	विभाग	विभाव
,,	१२	कल्पनाके दिये	कल्पना करिये
,,	१७	तपको	मनको
९८	२५	देह	देय
९९	१९	प्रतिवोध	प्रवोध
१०१	१०	यदि वृंहणार्थम्	परिवृंहणार्थम्
१०३	२६	स्खत	स्खलत
१०४	४	एक कहतां	एव कहता
१०५	१०	परिणवैयो	परिणवै थो
,,	२९	मान	भान
११०	२३	यति	यातें
१११	१०	छोड़े छे	दौड़े छै
,,	२०	दोपको	दोप तो
११४	१०	ऐसो	ऐसा
११६	७	हटावै छे	जावै छै
११९	२०	प्रदेश इसो	प्रदेशहँ सो
१२२	९	जन्तु	जेतु
१२५	२६	कृत.	कुतः
,,	२८	एक	एव
१२८	८	द्रय	द्रव्य
,,	१५	परिणमन छै	परिणाम न छै
,,	२१	वन्ध नहीं	वन्ध वही
,,	३१	दरा	दशा

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१३३	७	करि मद्दाय	करी सहाय	२०७	४	मेघको	भयको
१३५	२१	जातिपनो	जीतिपनो			मोहीहोतोहीसों	मोहीमो न तो होसों
,	२५	जीवराशी	जीवराशि	२ ८	७	पूर्ो ज्ञान	पूर्ण ज्ञान
	२८	नीतिपनो	जीतिपनो	२	१४	भेग्यानदि	भेदग्यानादि
१४	१९	गहता	कहता	२११	१	पोरी	पीरी
१४३	५	तिपि	थिति	२१८	४	आपनगीरो	स्थापनसोको
	११	धर्महि	धर्महि	२१५	१	दो पर	दोष
,	२५	कह	कर	२१७	२२	पृथग लक्षण	पृथग् लक्षण
१४७	१९	लाभका लाभ	लाभ या अलाभ	२१९	१७	पाश्रय	पराश्रय
१४८	२१	ये योगी	ह योगी		२५	पुग्ल पुग्ण	पुग्ल वर्गणा
१४९	१९	उत्य आयो	उदय आयो	२२०	२१	अतीव	अतीत
१५५	२४	मरम माम	मरम माण	२२३	६	अनुभो	अनुभौ
१५८	२७	भरि चुनो	भरि चुग्गो	२२६	११	अन्यत्र	अन्यत्र
१६२	१९	स्युपयोग	स्युपभोग	२२८	९	कनत्व	कर्तत्व
१६	३	साम्री	सामग्री	,		स्वाभावो	स्वभावो
१६४	२६	परहो	पाहो	,	१७	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
१६६	१५	समस्त	समन्यत	२२९	२९	परकामना	परकामूना
१६९	९	विराजन	विराधन	२३	८	गणेशाह	गणधरदेवाद
१७२	१७	आरजक	रंजक	२३१	१९	उत्यादि	इत्यादि
	२१	फलति पु	फलति पुं का	२३३	२८	मुद्दिण	मुद्वि ण
१८३	२७	दानी	ग्यानी	२३४	२७	कनु	कन
१८४	२८	गृह	मृह	२३८	१५	कृति	श्रति
१८५	११	पापोद	पा पोद	२४	३२	चारित्र मोह एका	चारित्रमोहका
१८६	५	अनलगण	उनमगन	२४	९	पाव	पाप
१९१	४	वनमें	वनमे		२९	जब्रानि	जब्रारनि
	१७	वसम	आश्रम	२४	१६	मुक्तिवशत	मुक्तिवगत
१९४	२२	करोगे	करेगी	,	३	रह	रह
१९६	६	मिवाऊ	बिचाऊं	२४७	२७	विचारे	विचार
१९७	६	कामनि	कामात	२५१	६	अनोके	जीवोके
१९८	३	कहता	करता	२५४	१९	वोय	वोध
१९	२८	यथप्रभावर	यथप्रमाणात्	२५६	१७	मध्यम्दृष्टी	सम्यग्दृष्टी
२ ४	८	स्वभावको	स्वभाव	२५७	७	यम।	व्यक्त।
२०५	१	सतुके	समुच	२५८	११	कह्यो	कह्यो
	५	धूद	पूद	२६२	९	पुद्गलज्ञान	पुद ज्ञान
,	२०	अनुभत	अस्जात	२६६	६	कोसर रहे	कोसल है

नमस्कार प्रमाण राख्यो। असारपनो जानि अचेतन पदार्थनं नमस्कारु निषेध्यो। आगे कोई वितर्क करिसी जो सर्व ही पदार्थ अपना अपना गुणपर्याय विराजमान छै स्वाधीन छै। कोई किहीकै आधीन नहीं। जीव पदार्थकौ सारपनौ क्यों घटै छै। तिहिके समाधानकरिवाकहु दोई विशेषण कह्या। पुनः किंविशिष्टाय भावाय और किसौ छै भाव स्वानुभूत्या चकासते, सर्वभावांतरच्छिदे च। एने अवसर स्वानुभूति कहता निराकुलत्व लक्षण शुद्धात्म परिणमनरूप अतीन्द्रिय सुख जाणिवौ। तिहिरूप चकासते–अवस्था छै जिहिकी। सर्वभावांतरच्छिदे–सर्व भाव कहतां, अतीत अनागत वर्तमान पर्याय सहित अनतगुण विराजमान जावंत जीवादि पदार्थ तिहिको अंतरछेदी–एक समय माहे जुगपत् प्रत्यक्षपनें जानन शील जो कोई शुद्ध जीव वस्तु तिहिको म्हाकौ नमस्कारु। शुद्ध जीव कहु सारपनौ घटै छै, सार कहतां हितकारी। असार कहता अहितकारी। सो हितकारी सुख जानिज्यो, अहितकारी दुख ज्यानिज्यो। जातहि अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल कहु[1] अरु संसारी जीव कु सुखु नहीं, ज्ञानु[2] भी नहीं अरु तिहिकौ स्वरूप जानतां जाननहारा जीव कुं भी सुखु नहीं ज्ञानु भी नहीं, तिहितै इनकौ सारपनौ घटै नहीं। शुद्ध जीव कहुं सुखु छै, ज्ञानु भी छै, तिहिकै जानतां अनुभवता जाननहारोसुखु छ ज्ञान भी छ तिहितै शुद्ध जीवकौ सारपनौ घटै छै॥ १॥

भावार्थ–श्री अमृतचंद्र आचार्यने इस श्लोकमें शुद्ध आत्माको इसलिये नमस्कार किया है कि उस आत्मामें कोई कर्मका मेल नहीं है इसलिये वह सर्वज्ञ व सर्वदर्शी है तथा वीतराग है। सर्वज्ञ वीतराग होकर भी वह निरंतर अपने आत्मा हीमें मग्न रहते हुए आत्मीक स्वाधीन सुखका स्वाद लेते रहते हैं। छः द्रव्योंके समुदायरूप लोकमें शुद्ध आत्माएं ही परम हितकारी हैं क्योंकि जैसे वे शुद्ध ज्ञान व आनन्दके स्वामी हैं वैसे जो उनको जानकर उनके स्वरूपका अनुभव करता है उसको भी आत्मज्ञान व आनन्द होता है। आचार्यकी अंतरंग भावना ही यह है कि हमारा आत्मा स्वाधीन होकर परमात्मा होजाय इसलिये जो स्वाधीन शुद्ध परमात्मा हैं उनको नमस्कार किया है। अर्थात उनहीके शुद्ध गुणोंको अपने मनमें धारण करके उनसे गाढ़ भक्ति उत्पन्न की है। भक्तकी गाढ भक्ति ही उसकी परिणतिको उन्नत बनानेमें कारण होती है।

सूचना–पंडित बनारसीदासजीने राजमल्ल कृत टीकाको देखकर नाटक समयसार ग्रंथ बनाया है सो भी इसी जगह दिया गया है। मूल संस्कृत श्लोकोंके अनुसार छंद रचे हैं। कहीं कहीं विशेष भी रचना की है। आदिमें भूमिका रूप जो विशेष कथन किया है वह नीचे प्रमाण है—

१–को। २–आत्मज्ञान।

अथ श्री पार्श्वनाथजीकी स्तुति—करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग सिवमग दरसि॥ निरखत नयन भविकजल बरषत हरषत अमित भविकजन सरसि॥ मदन कदन जित परम धरमहित, सुमरत भगत भगत सब डरसि॥ सजल जलदतन मुकुट सपत फन कमठदलनजिन नमत बनरसि॥ १॥

समस्तलघु एकस्वर काव्य—सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग॥ धवल परम पद रमन, जगतजन अमल कमल खग॥ परमत जलधर पवन, सजलघन समतन समकर॥ परअघ रजहर जलद, सकलजन नत भव भयहर॥ यमदलन नरकपद क्षयकरन, अगम अतट भव जलतरन॥ वर सबल मदन वन हर दहन, जयजय परम अभयकरन॥२॥

पुन सवैया ३१ सा—जिन्हके वचन उर धारत युगल नाग, भये धरनिंद पद्मावती पलकमें॥ जाके नाममहिमासों कुधातु कनककरे पारसपाखान नामी भयोहै खलकमें॥ जिन्हकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम, आपनो स्वरूप लख्यो भानुसो भलकमें॥ तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब, दीने मोहिसाता दृगलीलाकी ललकमें॥ ३॥

अब श्रीसिद्धकी स्तुति—अविनासी अविकार परमरस धाम है॥ समाधान सरवग सहज अभिराम है॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध अनादि अनन्त है॥ जगत सिरोमणि सिद्ध सदा जयवन्त है॥ ४॥

अब श्रीसाधुकी स्तुति—ज्ञानको उजागर सहज सुखसागर, सुगुन रत्नागर विरागरस भर्यो है॥ सरनकी रीत हरे मरनको भै न करे, करनसों पीठदे चरण अनुसर्यो है॥ धरमको मंडन भरमको विहंडनजु, परम नरम ह्वैके करमसो लर्यो है॥ ऐसो मुनिराज भुवलोकमें विराजमान, निरखी बनारसी नमस्कार कर्यो है॥ ५॥

अब सम्यग्दृष्टीकी स्तुति—भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके घट, सीतल चित्त भयो जिम चन्दन॥ केलि करे शिव मारगमें, जगमाहि जिनेश्वरके लघुनन्दन॥ सत्यस्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकन्दन॥ शांत दशा तिनकी पहिचानि, करे करजोरि बनारसी वन्दन॥ ६॥ स्वारथके साचे परमारथके सांच चित्त, साचे साचे बैन कहे साचे जैनमती है॥ काहूके विरुद्धी नांही परजाय बुद्धि नाही, आतमगवेषी न गृहस्थ है न यती है॥ रिद्धिसिद्धि वृद्धि दीसे घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लछिमी अजाची लक्षपती है॥ दास भगवतके उदास रहे जगतसों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है॥ ७॥ जाके घटप्रगट विवेक गणधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहको हरतु है॥ साचा सुख माने निज महिमा अडोल माने, आपुहीमें आपनो स्वभावले धरतु है॥ जैसे जलकर्दम कुतकफल भिन्न करे, तैसे जीव अजीव विलछन करतु है॥ आतम सकति साधे ज्ञानको उदो आराध, सोई समकिती भवसागर तरतु है॥ ८॥

मिथ्यादृष्टि–धरम न जानत वखानत भरमरूप, ठौरठौर ठानत लराई पक्षपातकी॥ मूल्यो अभिमानमें न पाँवधरे धरनीमें, हिरदेमें करनी विचारे उतपातकी॥ फिरे डांवाडोलसो करमके कलोलनिमें, व्हैरही अवस्थाज्यूं वभूल्याकैसे पातकी॥ जाकीछाती तातीकारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी॥ ९॥

दोहा—वंदौं सिवअवगाहना, अर वंदो सिवपंथ।
जसु प्रसाद भाषा करो, नाटक नाम गिरंथ॥ १०॥

अब कविवर्णन–चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदापद मेरो॥ मोह महातम आतम अंग, कियो परसग महा तम घेरो॥ ज्ञानकला उपनी अब मोहिं, कहूं गुणनाटक आगम केरो॥ जासु प्रसाद सिधे सिवमारग, वेगि मिटे घटवास वसेरो॥ ११॥

अब कवि लघुता वर्णन–जैसे कोऊ मूरख महासमुद्र तरिवेको, भुजानिसो उद्युत भयोहै तजि नावरो॥ जैसे गिरि ऊपरि विरखफल तोरिवेको, वामन पुरुष कोऊ उमगे उतावरो॥ जैसे जल कुण्डमें निरखी ससि प्रतिविंब, ताके गहिवेको कर नीचो करे टावरो॥ तैसे मैं अल्पबुद्धि नाटक आरंभ कीनो, गुनी मोही हँसेंगे कहेंगे कोऊ वावरो॥ १२॥ जैसे काहू रतनसौ वींध्यो है रतन कोऊ, तामें सूत रेसमकी डोरी पोयगई है॥ तैसे बुद्ध-टीकाकरी नाटक सुगमकीनो, तापरि अलपबुद्धि सुधी परनई है॥ जैसे काहू देशके पुरुष जैसी भाषा कहै, तैसी तिनहूके बालकनि सीखलई है॥ तैसे ज्यौं गरंथको अरथ कह्यो गुरु त्योंही, मारी मति कहिवेको सावधान भई है॥ १३॥ कबहू सुमती व्है कुमतिको विनाश करै, कबहू विमलज्योति अंतर जगति है॥ कबहू दयाल व्है चित्त करत दयारूप, कबहू सुलालसा व्है लोचन लगति है॥ कबहू कि आरती व्है प्रभु सनमुख आवै, कबहू सुभारती व्है बाहरि बगति है॥ धरे दशा जैसी तब करे रीति तैसी ऐसी, हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है॥ १४॥ मोक्ष चलिवे ~~सकोन करमको~~ करवोन, जाके रस मानै बुध लोनज्यौं घुलत है॥ गुणको गरंथ निरगुनको सुगमपंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है॥ याहीके जु पक्षीते उड़त ज्ञानगगनमें, याहीके विपक्षी जगजालमें रुलत है॥ हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है॥ १५॥

दोहा–कहूं शुद्ध निश्चय कथा, कहूं शुद्ध व्यवहार। मुकति पंथ कारन कहूं, अनुभौको अधिकार॥ १६॥ वस्तु विचारत ध्यावतें, मन पावै विश्राम। रस स्वादत सुख उपजै, अनुभौ याको नाम॥ १७॥ अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभव है रस कूप। अनुभौ मारग मोक्षको, अनुभौ मोक्ष स्वरूप॥ १८॥

सवैया ३१ सा–अनुभौके रसको रसायण कहत जग, अनुभौ अभ्यास यह तीरथकी ठौर है॥ अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसासु, अनुभौ अधोरसासु ऊरधकी दौर

है ॥ अनुभौकी केलि इह कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वादपंच अमृतको कौर है ॥ अनुभौ करम तोरै परमसो प्रीति जोरै, अनुभौ समान न धरम कोउ और है ॥ १९ ॥

दोहा–चेतनवंत अनंतगुण, पर्यय शक्ति अनंत। अलख अखंडित सर्वगत, जीव द्रव्य विरतंत ॥ २० ॥ फरस वर्ण रस गंधमय, नरदपास सठान। अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥ जैसे सलिल समूहमें, करै मीनगति कर्म। तैसें पुद्गल जीवको, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥ ज्यों पथी ग्रीषम समै, बैठे छाया माहि। त्यों अधर्मकी भूमिमें, जड़ चेतन ठहराहि ॥ २३ ॥ सतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास। जो भाजन सब जगतको, सोई द्रव्य आकाश ॥ २४ ॥ जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तुथिति ठानि, परावर्त वर्तन धरै, कालद्रव्य सो जानि ॥ २५ ॥ समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास। वेदकता चेतन्यता, ये सब जीवविलास ॥ २६ ॥ तनता मनता वचनता, जड़ता जड़सम्मेल। लघुता गरुता गमनता, ये अजीवके खेल ॥ २७ ॥ जो विशुद्धभावनि बंधे, अरु उरध मुख होई। जो सुखदायक जगतमें, पुन्य पदारथ सोइ ॥२८॥ संक्लेश भावनि बंधे, सहज अधोमुख होई। दुखदायक संसारमें, पापपदारथ सोई ॥ २९ ॥ जोई कर्म उदोत धरि, होइ क्रियारस रत्त। करषै नूतन कर्मको, सोई आश्रव तत्व ॥ ३० ॥ जो उपयोग स्वरूप धरि, वरतै जोग विरत्त। रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्व ॥ ३१ ॥ पूरव सत्ताकर्म करि, थिति पूरण भी आऊ। खिरवेकौं उदित भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥ ३२ ॥ जो नवकर्म पुरानसौं, मिलैं गठिदिढ होइ। शक्ति बढ़ावै वंशकी, बंध पदारथ सोइ ॥ ३३ ॥ थितिपूरन करि कर्म जो, खिरै बंधपद भान। हंसअंस उज्वल करै, मोक्षतत्व सो जान ॥३४॥ भाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व। द्रविण अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ये सर्व ॥३५॥

अब शुद्ध जीवद्रव्यके नाम कहे हैं–परमपुरुष परमेसर परमज्योति, परब्रह्म पूरण परम परधान है ॥ अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज, निरदुंद मुक्त मुकुंद अमलान है ॥ निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमणि सुजान है ॥ सरवदरसी सरवज्ञ सिद्धस्वामी शिव, धनी नाथ ईश जगदीश भगवान है ॥ ३६ ॥

अब संसारी जीवद्रव्यके नाम कहे हैं–चिदानन्द चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है ॥ चिद्रूप स्वयंभू चिनमूरति धरमवंत प्राणवंत प्राणी जंतु भूत भव भोगी है ॥ गुणधारी कलाधारी भेषधारी, विद्याधारी, अंगधारी संगधारी योगधारी जोगी है ॥ चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम, करमको करतार [illegible] ॥

दोहा–ख विहाय अंबर गगन, अंतरीक्ष जगधाम। व्योम वियत [illegible] आकाशक नाम ॥ ३८ ॥ यम कृतांत अंतक त्रिदश,

ततनय, कालनाम परवान ॥ ३९ ॥ पुन्य सुकृत ऊर्ध्ववदन, अकररोग शुभकर्म। सुखदायक संसारफल, भाग बहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥ पाप अधोमुख येन अघ, कंपरोग दुखधाम। कलिल कलुष किल्विष दुरित, अशुभ कर्मके नाम ॥ ४१ ॥ सिद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, अविचल मुक्त स्थान। मोक्ष मुक्ति वैकुठ सिव, पंचम गति निरवान ॥ ४२ ॥ प्रज्ञा धिषना सेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि। सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥ ४३ ॥ निपुण विचक्षण विबुधबुध, विद्याधर विद्वान। पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥४४॥ कलावंत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत। ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणीजन संत ॥४५॥ मुनि महंत तापस तपी, भिक्षुक चारित धाम। जती तपोधन संयमी, व्रती साधु रिष नाम ॥ ४६ ॥ दरस विलोकन देखनों, अवलोकन द्रिगचाल। लखन द्रिष्टि निरखन जुवन, चितवन चाहन भाल ॥४७॥ ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान। संयम चारित आचरन, चरन वृत्ति थिरवान ॥४८॥ सम्यक सत्य अमोघ सत, निःसंदेह निरधार। ठीक यथातथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ॥४९॥ अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक। मुधा मोघ निःफल वितथ, अनुचित असत अठीक ॥५०॥

॥ इति श्रीसमयसारनाटकमध्ये नाममाला सूचनिका सम्पूर्णा ॥

मूल श्लोकानुसार छंद—शोभित निज अनुभूति युत, चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ १ ॥

अब आत्माको वर्णन करि सिद्ध भगवानको नमस्कार।

सवैया २३ सा—जो अपनी द्युति आप विराजित, है परधान पदारथ नामी ॥ चेतन अंक सदा निकलंक, महा सुख सागरको विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें तिनको गुण ज्ञायक अंतरजामी ॥ सो सिवरूप वसे सिवनायक, ताहि विलोकि नमैं सिवगामी ॥

अनुष्टुप छंद—अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्त्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥ २ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—नित्यमेव प्रकाशतां-नित्य कहता सदा त्रिकाल, प्रकाशतां कहता प्रकाश कहु करहु। इतना कहता नमस्कार कियो। सो कौन, अनेकांतमयीमूर्तिः—न एकांतः अनेकांतः, अनेकांत कहतां स्याद्वाद, तिहिमयी कहतां सोई छै, मूर्त्ति कहतां सरूप जिहिकौ, इसी छै सर्वज्ञकी वाणी कहतां दिव्यध्वनि। एनै अवसर आशंका उपजै छै। कोई जानिसे[१], अनेकांत तो संशय छै, संशय मिथ्या छै। तिहि प्रति इसो समाधान कीजै। अनेकांत तो संशयको दूरिकरण शील छै अरु वस्तुस्वरूप कह साधन शील छै। तिहिको व्यौरो—जो कोई सत्ता सरूप वस्तु छै, सो द्रव्य गुणात्मक छै, तिहि माहे जो सत्ता अभेद-

१—जानेगा।

पने द्रव्य रूप कहिजे छे सोई सत्ता भेदपनेकरि गुण रूप कहिजे छे। इहि भी भांति अने कान्त कहिजे। वस्तु स्वरूप अनादिनिधन इसी ही छे। काहूकी सारी नहीं। तिहितै अने कांत प्रमाण छे। आगे जिहि वाणी कहु नमस्कार कियो सो वाणी किसी छे प्रत्यगात्मन तत्त्व पश्यन्ती–प्रत्यगात्मा कहता सर्वज्ञ वीतराग, तिहिको व्यौरो, पृथग भिन्न भिन्न कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तहि रहित छै आत्मा जीवद्रव्य तिहिको सो कहिजै प्रत्यगात्मा तिहिको तत्त्व कहिजे स्वरूप, ताकू पश्यनी अनुभवनशील छे। भावार्थ–इस्यो जोकोई वितर्क करिसे दिव्यध्वनि तौ पुद्गलात्मक छे अचेतन छे, अचेतनने नमस्कार निषिद्ध छे। तीहैं पंथि समाधान करिवाके निमित्त यो अर्थ कह्यो जो वाणी सर्वज्ञ स्वरूप अनुसारिणी छे। इसो मानिवा पांचे (बिना) भी बने नहीं। ताको व्यौरो–वाणी तो अचेतन छे। तिहि सुनतां जीवादि पदार्थको स्वरूपज्ञान ज्यो उपने छे त्योंही जानिज्यो, वाणीको पूज्यपणो भी छे। किंविशिष्टस्य प्रत्यगात्मनः किसी छे सर्वज्ञ वीतराग। अनंतधर्मण अनत कहतां अति बहुत छैं; धर्म कहतां गुण जिहिको इसो छे, भावार्थ–इसो जो कोई मिथ्यावादी कहै छे परमात्मा निर्गुण छे गुण विनाश हुवा परमात्मापणो होइ छे सो इसो मानिवो झूठो छे। जिहितै गुण विनश्या द्रव्यको भी विनाश छे ॥ २ ॥

भावार्थ–इस श्लोकमें श्री अमृतचन्द्र आचार्यने सर्वज्ञ भगवानकी वाणीको नमस्कार किया है जो परद्रव्य गुण व पर्यायोंसे भिन्न शुद्ध आत्माके स्वरूपको झलकानेवाली है तथा जिसमें वस्तुके अनंत स्वभावोंको भिन्न२ अपेक्षासे यथार्थ बताया गया है। हरएक द्रव्य अस्तिरूप भी है नास्तिरूप भी है। स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है पर द्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है। एक वस्तुकी भिन्न सत्ता तब ही सिद्ध होगी जब उसमें अन्य वस्तुओंकी सत्ताका नास्तित्व या अभाव हो। इसी तरह हरएक द्रव्य नित्यरूप भी है अनित्यरूप भी है। द्रव्य व गुणोंके सदा बने रहनेकी अपेक्षा द्रव्य नित्य है–उनमें अवस्थाओंके नित्य पलटाने रहनेकी अपेक्षा द्रव्य अनित्य है। हरएक द्रव्य एक रूप भी है–अनेक रूप भी है। अनेक गुणपर्यायोंका समुदाय रूप अखंड द्रव्य होनेकी अपेक्षा द्रव्य एकरूप है, अनेक गुणोंसे सर्वत्र व्यापक होनेकी अपेक्षा द्रव्य अनेक रूप है। आत्मा एक है वही आत्मा ज्ञानापेक्षा ज्ञानरूप, वीर्यगुण अपेक्षा वीर्यरूप, चारित्रगुण अपेक्षा चारित्र रूप, सम्यक्त गुण अपेक्षा सम्यक्त रूप, सुखगुण अपेक्षा सुखरूप इत्यादि। द्रव्यको यथार्थ बतानेवाली जिनवाणी है। हरएक स्वभावको स्यात् या कथंचित् या किसी अपेक्षासे कहनेवाली है इसलिये इस वाणीको स्याद्वाद वाणी कहते हैं। बिना अनेक अपेक्षाओंसे द्रव्यको समझे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सका है।

सवैया २३सा—जोगधरी रहे जोगसु भिन्न, अनंत गुणातम केवलज्ञानी ॥ तासु हृदे द्रहसो निकसी, सरिता समव्है श्रुत सिंधु समानी ॥ याते अनंत नयातम लक्षण, सत्य सरूप सिद्धांत वखानी ॥ बुद्ध लखे दुरबुद्ध लखेनहि, सदा जगमाहि जगे जिनवाणी ॥ ३ ॥

मालिनीछंद—परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावादविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्त्तेर्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ॥३॥

खंडान्वय सहित अर्थ—मम परमविशुद्धिर्भवतु—शास्त्र कर्ता छे अमृतचंद्रसूरि सो कहै छे, मम कहतां मोकहु, परम विशुद्धि कहतां शुद्ध स्वरूप प्राप्ति ताको व्यौरो-परम कहतां सर्वोत्कृष्ट, विशुद्धि कहतां निर्मलता, भवतु कहतां होउ। कया समयसारव्याख्यया-समयसार कहतां शुद्ध जीव तिहीकी व्याख्या कहतां उपदेश तिहि कहतां हम कहु शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति होउ। भावार्थ इसो जो यह शास्त्र परमार्थरूप छे। वैराग्योत्पादक छे। भारत रामायणकी नाई राग वर्द्धक न छे। किंविशिष्टस्य मम किसौछौ हौं। अनुभूतेः अनुभूति कहतां अतीन्द्रिय सुख सोई छे स्वरूप जिहिको इसोछौं। पुनः किंविशिष्टस्य मम और किसौछौं शुद्ध चिन्मात्रमूर्त्तेः, शुद्ध कहतां रागादि उपाधि रहित, चिन्मात्र कहतां चेतना मात्र, मूर्ति कहतां स्वभाव छे जिहिको इसोछौं। भावार्थ इसो—द्रव्यार्थिक नय करि द्रव्य स्वरूप इसौ ही छे। पुनः किं विशिष्टस्य मम, और किसौ छौंहौं अविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः—अविरतं कहतां निरंतरपनै अनादि संतानरूप, अनुभाव्य कहतां विषयकषायादिरूप अशुद्ध चेतना, तिहिसौ छे व्याप्ति कहतां तिहिरूप विभाव परिणमन इसौ छे। कल्माषिता कहतां कलंकपनौ जिहिकौ इसो छे। भावार्थ इसो जो पर्यायार्थिक नय करि जीव वस्तु अशुद्धपनै अनादिको परिणयो छे, तिहि अशुद्धपणा के विनाशु होतां जीव वस्तु ज्ञानस्वरुप, सुख स्वरूप छे। आगे कोई प्रश्न करे छैं। जीव वस्तु अनादि तहि अशुद्धपनै परिणयोछै, तहां निमित्त मात्र किछु छे कै न छे। उत्तरु इसो निमित्त मात्र छुनि छे, सोकौन, सोई कहिजै छे। मोहनाम्नोनुभावात्—मोह नाम कहता पुद्गल पिंडरूप आठ कर्म्म माहैं मोह एक कर्म्म जाति छे तिहिको अनुभाव कहतां उदय, उदय कहतां विपाक अवस्था। भावार्थ इसो—रागादि अशुद्ध परिणामरूप जीवद्रव्य व्याप्यव्यापक रूप परिणवै छे, पुद्गल पिंडरूप मोह कर्म्मको उदय निमित्त मात्र छे। जैसे कोई धतूरो पीया थे घूमे छे, निमित्त मात्र धतुराको वाकु छे। किंविशिष्टस्य मोहनाम्नः-किसौ छे मोह नाम कर्म्म परपरिणतिहेतोः—पर कहतां अशुद्ध, परिणति कहतां जीवको परिणाम तिहिको हेतु कारण छे। भावार्थ इसो—जीवका अशुद्ध परिणामको निमित्त इसो रस लेय मोहकर्म्म बंधै छे पाछे उदय देता निमित्त मात्र होय छे ॥ ३ ॥

भावार्थ-आचार्य कहते हैं कि मैं इस समयसार ग्रंथकी व्याख्या इसलिये करता हूं

कि मेरा भाव वीतरागरूप शुद्ध होजावे। यद्यपि मैं स्वभावसे शुद्ध ज्ञानचेतनामय हू तथापि अनादि कालसे कर्मोंके बंधनमें होनेसे मोहकर्मके उदयके कारण रागी द्वेषी होरहा हूं। वास्तवमें प्रत्येक भव्य जीवका हित इसीमें है कि उसको शुद्ध आत्मीक भावका स्वाद आया करे, क्योंकि इस स्वादमें अनुपम आनन्द है व इससे आत्माके पूर्वबद्ध कर्म भी झड़ते हैं। रागद्वेषमय भावोंमें सच्चा सुख नहीं व इनसे आत्मा कर्मोंसे बंधता है। आत्माके सच्चे स्वरूपके ध्यान, मनन, विचार, पठनपाठन आदिसे परिणति निर्मल होती है, इसलिये इस आध्यात्मिक समयसार ग्रन्थका विवेचन करनेसे अवश्य भावोंकी शुद्धता होगी। ऐसा गाढ़ निश्चय आचार्यने प्रकाशित किया है।

छप्पैछंद—हूं निश्चय तिहुं काल शुद्ध चेतनमय मूरति। पर परणति संयोग भई जड़ता विस्फूरति। मोहकर्म पर हेतु पाइ चेतन पर रच्चइ। ज्यों धतूर रस पान करत नर बहुविध नच्चइ। अब समयसार वर्णन करत, परम शुद्धता होहु मुझ। अन [१] बनारसीदास कहीं मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥४॥

मालिनीछंद—उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः। सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैरनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥४॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ते समयसारं ईक्षत एव—ते कहता आसन्न भव्य जीव, समयसार कहता शुद्ध जीव, ईक्षत एव कहतां प्रत्यक्षपने प्राप्ति होय। सपदि कहता थोरा ही काल माहे। किस्यौ छै शुद्ध जीव, उच्चैः परज्योति—अतिशय मान ज्ञान ज्योति, और किस्यौ छै। अनवं—अनादि सिद्ध छै, और किस्यौ छै, अनयपक्षाक्षुण्ण—अनयपक्ष कहता मिथ्या वाद तिहिकरि अक्षुण्ण कहता अखंडित। भावार्थ—इसो जो मिथ्यावादी बौद्धादि झूठी कल्पना बहुत भांति करै छै, तथापि नेही झूठा छै। आत्मतत्व जिसो छै तिसो ही छै। आगे ते भव्यजीव कांयी करता शुद्ध स्वरूप पावहिंछे सोई कहिजे छै। ये जिनवचसि रमते—ये कहतां आसन्न भव्यजीव, जिनवचसि कहतां दिव्यध्वनि करि कह्यो छै उपादेयरूप शुद्ध जीव वस्तु, तिहि विषै रमने कहतां सावधान पणे रुचि श्रद्धा प्रतीति करै छै। व्यौरो—शुद्ध जीव वस्तु कहु प्रत्यक्षपने अनुभव करै छै तिहिको नाम रुचि श्रद्धा प्रतीति छै। भावार्थ—इसो जो वचन पुद्गल छै तिहिकी रुचि करतां स्वरूपकी प्राप्ति नाहीं। तिहिते वचन करि कहिजे छै जे कोई उपादेय वस्तु तिहिको अनुभव करतां फल प्राप्ति छै। किसो छै जिनवचन—उभयनयविरोध ध्वंसिनि—उभय कहता दोय, नय कहता पक्षपात, विरोध कहतां परस्पर बैरभाव। व्यौरो—एक सत्व कहु द्रव्यार्थिकनय द्रव्यरूप, सोई सत्व कहु पर्यायार्थिकनय पर्यायरूप कहै। तिहिते परस्पर विरोध छै। तिहिको ध्वंसिनि कहता मेटनशील छै। भावार्थ इसो—दोऊ नय विकल्प छै। शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव निर्विकल्प छै। तिहिते शुद्ध जीव वस्तुको अनु

[१] भया दसय।

भव होतां दोऊ नय विकल्प झूठा छे। और किसौ छै जिन वचन, **स्यात्पदांके**-स्यात् कहतां स्याद्वाद, स्याद्वाद कहतां अनेकांत, तिहिकौ स्वरूप पाछौ कह्यो छे सोई छै। अंक कहतां चिन्ह जिहिकै इसौ छे। भावार्थ इसौ, जो कछु वस्तु मात्र छै सो तो निर्भेद छै। सो वस्तु मात्र वचनकरि कहता जो कोई वचन बोलिजे सोई पक्षरूप छै। किसा छै आसन्नभव्यजीव **स्वयं वांतमोहाः**-स्वयं कहतां सहजपनै, वांत कहतां वम्यो छे, मोह कहतां मिथ्यात्व, मिथ्यात्व कहतां विपरीतपनो इसो छे। भावार्थ-इसौ जो अनंत संसार जीव कहुं भ्रमता जाय छै। ते संसारी जीव एक भव्यराशि छे एक अभव्यराशि छे। तिहि माहे अभव्यराशि जीव त्रिकाल ही मोक्ष जावाकौ अधिकारी नहीं। भव्यजीव माहे केताएक जीव मोक्ष जावा योग्य छे। तिहिकौ मोक्ष पहुंचि याकौ काल परिमाण छे। व्यौरौ-यह जीव इतना काल वीत्या मोक्ष जासे इसौ न्यौधु केवलज्ञान माहे छे। सो जीव संसार माहे भमतां भमतां जब ही अर्धपुद्गलपरावर्त मात्र रहै छे तब ही सम्यक्त उपजवा योग्य छै। इहिकौ नाव काल लब्धि कहिजे। यद्यपि सम्यक्तरूप जीव द्रव्य परिणवै छे, तथापि काललब्धि पाषे कोड़ि उपाय जो कीजे तौ पुनि जीव सम्यक्तरूप परिणमन योग्य नहीं। इसौ नियम छे। तिहितै जानिवौ सम्यक्त वस्तु जतन साध्य नहीं। सहज रूप छे॥ ४॥

भावार्थ-इस श्लोकमें आचार्यने बताया है कि शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय जिनवाणी द्वारा कहे हुए तत्वोंका विचार करते हुए उनमेंसे आत्माके यथार्थ स्वरूपको लक्ष्य करके उसीका वारवार मनन करना है। आत्माकी भावना भाते हुए अकस्मात् अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्वका उपशम होजाता है और इस जीवको स्वयं सम्यग्दर्शनका लाभ हो जाता है, उसी समय आत्माके शुद्ध स्वरूपका अनुभव होजाता है। सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिमें क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि ये पांच लब्धियें कारण बताई है। इनमें मुख्य करणलब्धि है। जिन विशुद्ध चढ़ते हुए आत्मविचाररूप भावोंसे अवश्य अंतर्मुहूर्तके भीतर मिथ्यात्वादि प्रकृतियोंका उपशम होकर सम्यक्त होजावे उन परिणामोंकी प्राप्तिको ही करणलब्धि कहते हैं। इस स्थिति प्राप्त करनेका मुख्य उपाय देशनालब्धि है। अर्थात् जिनेन्द्र कथित तत्वोपदेशका प्रेमी होकर तत्वोंका मनन करना है। तत्वोंकि मननके साधारण रूपसे चार उपाय बडे हितकारी है। प्रथम अरहंत सिद्ध परमात्माकी भक्ति, आत्मज्ञानी गुरुकी सेवा करके आत्मबोध प्राप्ति, जिनवाणीका पठन, मनन, व धारणा, एकांतमें प्रातः और संध्याकाल बैठकर कुछ देरतक सामायिक करना अर्थात् रागद्वेष छोड़कर व समताभावमें तिष्ठकर आत्मा अनात्मासे भिन्न है इस भेद विज्ञानका विचार करना। इन उपायोंका करना ही हमारा पुरुषार्थ है। इनहीके द्वारा सम्यक्त होगा परन्तु वह समय तब ही आवगा जब संसार निकट होगा। यदि सर्वज्ञके ज्ञानकी अपेक्षा अर्ध पुद्गल

परावर्तसे अधिक काल मोक्ष जानमें होगा तो सम्यक्त न होगा। इस हीका नाम काललब्धि है। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि विना प्रतिपक्षी कर्मोंके उपशमके सम्यक्त कभी नहीं होगा। उन कर्मोंका उपशम तत्वविचारसे ही होगा। यह तत्वविचार किसी जीवको परके उपदेशसे व किसीको आप ही अन्य किसी निमित्तसे होसक्ता है। टीकाकारका प्रयोजन यह नहीं है कि हम आलसी बने रहें व यह समझते रहें कि जब सम्यक्त होना होगा तो हो जायगा। यह भाव घोर अज्ञानमय है, हमें तो अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ उपाय तत्वोंके मननका हो सो करना ही चाहिये। जब अवसर आयगा तब यही उपाय फलदाई हो जायगा। जैसे धनप्राप्तिके लिये आजीविका करने व रोगशमनके लिये औषधि सेवे परन्तु उनकी सफलता तब ही होगी जब अंतरायकर्म हल्का व सातावेदनीयका उदय आता है। तब ही हमको धनका लाभ होता व रोग मिट जाता है। भावार्थ—यह है कि हम सबको परम रुचिके साथ जिनवाणीके द्वारा स्वपर तत्वोंका विचार करना उचित है। श्री अमृतचन्द्र आचार्यका यह भाव है कि इसी लिये मैं इस समयसार ग्रन्थका मनन करता हूं जिससे शुद्ध आत्माका अनुभव होसके।

सवैया ३१ सा—निहचमें एकरूप व्यवहारमें अनेक याही न विरोधमें जगत भरमायो है। जगके विवाद नासिवेको जिनआगम है जामें स्यादवादनाम लक्षण सुहायो है॥ दरसनमोह जाको गयो है सहजरूप आगम प्रमाण ताके हिरदेमें आयो है। अनयसों अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरण तुरत तिन पायो है॥ ५॥

मालिनीछंद व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां हंत हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं, परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किंचित्॥५॥

खंडान्वय सहित अर्थ—व्यवहरणनय यद्यपि हस्तावलम्ब स्यात्—व्यवहरण नय कहता जेती कथनी, ताको ब्यौरो—जीव वस्तु निर्विकल्प छे। सो तो ज्ञान गोचर छे। सोई जीव वस्तु कह्यौ चाहिये। तब यौंही कहता आवै, जिहिकी गुण दर्शन ज्ञान चारित्र सो जीव। जो कोई बहुत साधिक है तौभी यौंही कहनी॥ इतनी कहिवाको नाम व्यौहार छे। इहां कोई आशंका करिसी जो वस्तु निर्विकल्प छे तिहि विषै विकल्प उपजावना अयुक्त छे। तहां समाधानु इसौ जो व्यौहारनय हस्तावलम्ब छे। हस्तावलम्ब कहता ज्यों कोई नीचौ पर्यौ होतौ हाथ पकरि ऊंचौ लीजे छे। त्यौंही गुण गुणीरूप भेद कथनी ज्ञानु उपजिवाको एक अंग छे, ताको ब्यौरो—जीवको लक्षण चेतना, इतनी कहतां पुद्गलादि अचेतन द्रव्य तहि भिन्नपनेकी प्रतीति उपजै छे। तिहि तहि जब ताहि अनुभव होय तिसने गुण गुणी भेदरूप कथनो ज्ञानको अंग छे। व्यवहारनय ज्याकौ हस्तावलम्ब छे ते किसा छे। प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां—इह कहता विद्यमान प्राक् पदवी कहता ज्ञान

ऊपजतां आरंभ अवस्था, तिहि विषै, निहित पदानां, निहित कहतां स्थाप्यो छै, पद कहतां सर्वस्य जिहि इसा छे। भावार्थ—इसौ जेकोई सहज सहि अज्ञानी छै। जीवादि पदार्थको द्रव्य गुणपर्याय स्वरूप जानिवाका अभिलाषी छे तिनकौ गुण गुणी भेदरूप कथनौ योग्य छै। तदपि एष न किंचित्—यद्यपि व्यवहारु नय हस्तावलम्ब छै, तथापि क्यों नहीं। न्यौंधु करतां झूठौ छे। ते जीव किसा छै जिनहि व्यौहारनय झूठौ छै। चिचमत्कारमात्रं अर्थं अंतःपश्यतां—चित् कहतां चेतना चमत्कार कहतां प्रकाश, मात्र कहतां इतनौ ही छै, अर्थ कहतां शुद्ध जीव वस्तु, अंतःपश्यतां कहतां प्रत्यक्षपनै अनुभवै छै। भावार्थ इसौ—जो वस्तुकौ अनुभव होतां वचनको व्यवहारु सहज ही छूटै छै। किसौ छै वस्तु। परमं—परम कहतां उत्कृष्ट छै उपादेय छै। और किस्यो छै वस्तु। परविरहितं—पर कहतां द्रव्यकर्म्म नोकर्म्म भावकर्म्म तिहि तहि विरहित करतां भिन्न छै ॥ ५ ॥

भावार्थ—यहा यह बताया गया है कि जिसको शुद्ध आत्माका अनुभव है—व जिसने शुद्धात्माका यथार्थ स्वरूप समझ लिया है उसको फिर समझानेकी जरूरत नहीं है। समझानेका उपाय यही है जो व्यवहारनयके द्वारा अभेद वस्तुके भीतर भी गुण व गुणी भेद करके समझाया जाय। इसलिये जिनको शुद्धात्माका बोध नहीं है उनके लिये यह व्यवहारनय बोध करानेके लिये आलम्बन रूप है। विना इसका आश्रय लिये वस्तुका कथन हो नहीं सक्ता। क्योंकि विकल्पोंके भीतर आत्मानुभव नहीं, व निजानन्द नहीं। इसी लिये आचार्य खेद प्रगट करते हैं जो व्यवहारनयका सहारा लेना पड़ता है। आत्महित तो मात्र शुद्ध स्वरूपके अनुभव हीमें है ॥ ५ ॥

सवैया २३ सा—ज्यों नर कोऊ गिरे गिरिसो तिहि, होइ हितू जु गहै दृढबाही। त्यौं बुधको विवहार भलौ, तबलौ जबलौ सिव प्रापति नाही ॥ यद्यपि यो परमाण तथापि, सधै परमारथ चेतन माही। जीव अव्यापक है परसो, विवहारसु तो परकी परछाहीं ॥ ६ ॥

शार्दूलविक्रीडितछंद—एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेवनियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्त्वा नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—तत् नः अयं एकः आत्मा अस्तु—तत् कहतां तिहि कारण तहि, न. कहतां हम कहु, अयं कहतां विद्यमान छे, एकः कहतां शुद्ध, आत्मा कहतां चेतन पदार्थ, अस्तु कहतां होउ। भावार्थ—इसौ जो जीव वस्तु चेतना लक्षण तौ सहजही छै। परि मिथ्यात्व परिणाम करि भम्यो होतो अपना स्वरूप कहु नहीं जानै छै। तिहिसहि अज्ञानी ही कहिजे। तिहितहि इसौ कह्यौ जो मिथ्या परिणामके गया थी यौही जीव

अपना स्वरूपकौं अनुभवन शीली होहु। किं कृत्वा कहाकरि करि, इमां नवतत्वसन्तति मुक्त्वा–इमां कहता आगे कहिजे छे। नवतत्व कहता जीवाजीवास्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप, तिहिकी संतति कहतां अनादि सम्बन्ध तिहि कहु, मुक्त्वा कहतां छांडि करिकै भावार्थ इसो–जो संसार अवस्थां जीव द्रव्य नव तत्वरूप परिणयौ छे सो तो विभाव परणति छे। तिहितै नवतत्व रूप वस्तुको अनुभव मिथ्यात्व छे। यदस्यात्मन इह द्रव्यान्तरेभ्य' पृथक् दर्शन नियमात् एतदेव सम्यग्दर्शन। यत् कहता जिहि कारण तिहि, अस्यात्मन कहतां यही जीवद्रव्य, द्रव्यांतरेभ्य पृथक् कहतां सकल कर्मोपाधि तहि रहित जिसो छे, इह दर्शन कहतो तिसोही प्रत्यक्षपने अनुभव, नियमात् कहतां निश्चय सौं, एतदेव सम्यग्दर्शन कहतां यहै सम्यग्दर्शन छे। भावार्थ–इसी जो सम्यग्दर्शन जीवको गुण छे। सो गुण संसारावस्था विभाव परिणयौ छे, सोई गुण जब स्वभाव परिणवे तब मोक्षमार्ग छे। व्यौरो। सम्यक्‌भाव होतां नूतन ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मास्रव मिटे छे, पूर्वबद्ध कर्म निर्झरे छे। तिहितहि मोक्षमार्ग छे। इहां कोई आशंका करिसे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन्यो मिल्यातै छे। उत्तर इसी जो शुद्ध जीव स्वरूप अनुभवतां तीन्यो ही छे। किसो छे शुद्ध जीव, शुद्धनयत एकत्व नियतस्य–शुद्ध नयत कहतां निर्विकल्प वस्तुमात्र एने दृष्टि देखतां, एकत्वे कहतां शुद्धपनौं, नियतस्य कहतां तिहिरूप छ। भावार्थ–इसी जो जीवको लक्षण चेतना। सो चेतना तीन प्रकार–एक ज्ञान चेतना, एक कर्म चेतना, एक कर्मफल चेतना, तिहि माहे ज्ञानचेतना, शुद्धचेतना, बाकी अशुद्धचेतना। तिहि तहि अशुद्धचेतना रूप वस्तुको स्वादु सर्व जीवहको अनादिको छती ही छे। तिहिरूप अनुभव सम्यक नहीं। शुद्धचेतना मात्र वस्तु स्वरूप आस्वाद आवे तो सम्यक छे। और किसो छे जीव वस्तु। व्याप्तु'–कहतां आपणां गुणपर्यायको लीयौ छे। एते कहिवे करि शुद्धपनो, दिखायो। कोई आशंका करिसी जो सम्यक‌गुण जीव वस्तुको भेद छे के अभेद छे।, उत्तर इसी जो अभेद छे। आत्मा च तावानयं–अयं कहता यह, आत्मा कहतां जीव वस्तु, तावान् कहतां सम्यक्त गुण मात्र छे ॥ ६ ॥

भावार्थ–इस श्लोकमें निश्चय सम्यग्दर्शनका स्वरूप बताया गया है। सम्यग्दर्शन आत्माका गुण है व आत्माके सब प्रदेशोंमें व्यापक है। जिस समय शुद्ध आत्माका आत्मा रूप यथार्थ अनुभव या स्वाद आता है उसी समय सम्यक्त गुण प्रकाशमान होता है। नव तत्वोंके व्यवहारमें आत्माका स्वरूप कर्मबंध सहित विचारमें आता है। इसलिये इस विचारको भी त्यागकर सर्व कर्मोपाधि रहित परम शुद्ध आत्मद्रव्यको जो अनुभव करना यही सम्यक्तका विकास करना है।

सवैया ३१ सा.—शुद्धनय निहचै अकेला आप चिदानद, आपने ही गुण परजायको गहत हैं। पूरण विज्ञानघन सो है व्यवहार माहि, नव तत्वरूपी पंच द्रव्यमें रहत है॥ पचद्रव्य नवतत्व न्यारे, जीव न्यारो लखे सम्यक दरस यह और न गहत है। सम्यक दरस जोइ आतम सरूप सोइ, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहत है॥ ७॥

अनुष्टुप छन्द–अतः शुद्धनयायत्तं प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति तत्।
नवतत्त्वगतत्वेऽपि यदेकत्वं न मुञ्चति॥ ७॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अतः तत् प्रत्यग्ज्योतिश्चकास्ति–अतः कहतां इहां तै आगे, तत् कहतां सोई, प्रत्यग्ज्योति कहतां शुद्धचेतना मात्र वस्तु, चकास्ति कहतां शब्दद्वारा युक्ति करि कहिजे छे। किसौ छे वस्तु। शुद्धनयायत्त–शुद्धनय कहतां वस्तुमात्र, आयत्तं कहतां आधीन। भावार्थ इसौ–जिहि कै अनुभवतां सम्यक्त होइ छे शुद्ध स्वरूप कहिजे छे। यदेकत्वं न मुंचति–यत् कहतां जो शुद्ध वस्तु, एकत्वं कहतां शुद्धपनौ, न मुंचति कहतां नहीं छोड़े छे। इहां कोई आशंका करिसे जो जीव वस्तु जब संसार तहि छूटे छे तब शुद्ध होइ छे। उत्तरु इसौ जीव वस्तु द्रव्य दृष्टि विचारयौ होतौ त्रिकाल ही शुद्ध छे। सोई कहिजे छे। नवतत्त्वगतत्वेऽपि–नवतत्त्व कहतां जीवा जीवाश्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप, गतत्वेऽपि कहतां तिहिरूप परिणयौ छे। तथापि शुद्ध स्वरूप छे। भावार्थ-इसौ जो–ज्यों अगनि दाहक लक्षण छे, काठ तृण, छाणा आदि देह समस्त दाह्यको दहै छे दहतौ होतौ आगि दाह्याकार होई छे। परि तिहिकौ विचारु छे। जौनौ काठ तृण छानाकी आकृति माहौ देखिजे तौ काठकी आगि, तृणकी आगि, छानाकी आगि यौ कहिबौ साचौ ही छे। जौ आगिकी उष्णता मात्र विचारिजे तौ उष्ण मात्र छे। काठकी आगि, तृणकी आगि, छानाकी आगि इसा समस्त विकल्प झूठा छे। त्योंही नवतत्त्व रूप जीवका परिणाम छे। ते परिणाम केई शुद्धरूप छे केई अशुद्धरूप छे। जो नौ परिणामही माहो देखिजे तौ नव ही तत्त्व साचा छे। जो चेतना मात्र अनुभव कीजे तौ नव ही विकल्प झूठा छे॥ ७॥

भावार्थ–यहां यह बताया है कि यह आत्मा कर्मबंधके संयोगसे आश्रवबंधादि रूप या नवतत्त्व रूप व्यवहार नयसे कहलाता है। आत्मामें बंध है, आत्माकी मुक्ति होती है यह सब कथन व्यवहार नयसे या पर्यायकी दृष्टिसे है। जब निश्चय नयसे या द्रव्यकी दृष्टिसे देखा जावे तो आत्माके न बंध है न मोक्ष है। यह बिलकुल भिन्न शुद्ध ज्ञानानंदमय परम वीतरागी ही झलकेगा। जैसे निमकके दस बीस व्यंजन बनाये–उनमें निमक अनेक रूपमें फैल गया है। यदि व्यंजनके सम्बन्धकी अपेक्षा देखा जावे तो निमक नानारूप है परन्तु यदि निश्चयनयसे मात्र लवणके स्वादकी दृष्टिसे देखा जावे तो लवण बिलकुल अलग

है वैसे ही स्वानुभवीको उचित है कि कर्मोंके मध्य पड़े हुए अपने या परके आत्माको शुद्ध द्रव्यरूप ही अनुभव करे।

सवैया ३१ सा —जैसे तृण काठ बांस आरन इत्यादि और इंधन अनेक विधि पावकमें दहिये। आकृति विलोकत कहावे आगि नानारूप दीसे एक दाहक स्वभाव जब गहिये॥ तैसे नव तत्वमें भया है बहु भेषी जीव शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये। जाहीक्षण चेतना सकतिको विचार कीजे ताहीक्षण अलख अभेदरूप लहिये॥ ८॥

मालिनीछन्द-चिरमितिनवतत्त्वच्छन्नमुन्नीयमानं कनकमिव निमग्नं वर्णमालाकलापे।
अथ सततविविक्तं दृश्यतामेकरूपं प्रतिपदमिदमात्मज्योतिरुद्योतमानम्॥८॥

खडान्वय सहित अर्थ आत्मज्योतिर्दृश्यता-आत्म कहता जीवद्रव्य, तिहिकी ज्योति कहता शुद्ध ज्ञान मात्र, दृश्यतां कहता सर्वथा अनुभव हु। किसी छै आत्मज्योति, चिरमितिनवतत्त्वच्छन्न, अथ सततविविक्त-एने अवसर नाटकसकी नाई एक जीव वस्तु आश्चर्यकारी अनेक भावरूप एक ही समय दिखाइ ने छै। इही कारण तहि इहि शास्त्रको नाम नाटक समयसार छै। सोई कहिने छ। चिर कहतां अम र्यादि काल। इति कहतां जो विभावरूप रागादि परिणाम पर्यायमात्र विचारिजे तदा ज्ञान वस्तु नवतत्त्वच्छन्न-नव तत्व कहतां पूर्वोक्त जीवादि तिहिरूप, छन्न कहता आच्छादित। भावार्थ-इसी जो जीव वस्तु अनादिकाल तहि धातु पाषाणकी संयोगकी नाई कर्म पर्यायसे मिल्यौ ही चल्यौ आयौ छै, मिलयाथकी रागादि विभाव परिणाम सहु व्याप्त व्यापकरूप आपुणपे परिणवे छै। सो परिणमन देखिजे, जीवको स्वरूप न देखिजे तो जीव वस्तु नवतत्त्वरूप छै इसी दृष्टि आवे, इसी पुनि छै, सर्वथा झूठ नहीं। जाते विभाव रागादि परिणाम शक्ति जीव ही महि छै। अथ कहता दूजो पक्ष सोई जीव वस्तु द्रव्यरूप छै, आपणा गुणपर्याय विराजमान छै। जो शुद्ध द्रव्य स्वरूप देखिजे, पर्याय स्वरूप न देखिजे तो किसी छै, सततविविक्त-सतत कहता निरंतरपने विविक्त कहता नव तत्व विकल्प तहि रहित छै। शुद्ध वस्तुमात्र छै, भावार्थ इसी जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव सम्यक्त छै। और किसी छै आत्मज्योति वर्णमालाकलापे कनकमिवनिमग्न-वर्णमाला कहतां दोइ अर्थ। एक तो बनवारी। दूजे पक्ष, वर्ण कहतां भेद, माला कहतां पंक्ति। भावार्थ-इसो जो गुण गुणी भेदरूप भेद प्रकाश, कलाप कहता समूह, तिहिते इसो अर्थ उपजो जैसे एक

विचारतां भेदरूप फुनि वस्तु ही छै, वस्तु तहि भिन्न भेदु किछु वस्तु नहीं छै। भावार्थ- इसौ जो सुवर्ण मात्र देखिजै नहीं, वानभेद मात्र देखिजै तौ वानभेद छै, सोनाकी शक्ति इसी फुनि छै। जो वानभेद देखिजै नहीं केवल सुवर्ण मात्र देखिजै तौ वानभेद झूठ छै। तैसे जो शुद्ध जीव वस्तु मात्र देखिजै नहीं, गुणपर्याय मात्र उत्पादव्यय ध्रौव्य मात्र देखिजै तौ गुणपर्याय छै, उत्पाद व्यय ध्रौव्य छै। जीव वस्तु इसौ फुनि छै। जो गुणपर्याय भेद, उत्पाद व्यय ध्रौव्य भेद देखिजै नहीं, वस्तु मात्र देखिजै तौ समस्त भेद झूठा छै। इसौ अनुभव सम्यक्त छै। और किसौ छै आत्मज्योति, उन्नीयमानं-कहतां चेतना लक्षण करि-जानी जै छै, तिहिंतै अनुमान गोचर फुनि छै। अथ दुजे पक्ष, उद्योतमानं-कहतां प्रत्यक्ष ज्ञानगोचर छै। भावार्थ-इसौ जो भेदबुद्धिकरता जीव वस्तु चेतना लक्षणकरि जीव कह जानै छै। वस्तु विचारतां इतनौ विकल्प फुनि झूठौ। शुद्ध वस्तु मात्र छै। इसौ अनुभव सम्यक्त छै॥ ८॥

भावार्थ-जैसे एक ही सोनेके अनेक आभूषण बनाए जावें तब उनके कड़ा, कंठी, कर्णफूल, मुद्रिका आदि अनेक भेद होजाते हैं। जो भेद दृष्टि या पर्यायदृष्टि या व्यवहार-दृष्टि करि देखा जावे तौ ये भेद अवश्य देखनेमें आवेंगे परन्तु जो मात्र सुवर्णकी दृष्टिसे देखा जावेगा तो सब आभूषणोंमें एक सुवर्ण ही अभेदरूपसे दीखनेमें आयगा इसी तरह आत्माके पुद्गलके सम्बन्धसे अनेक भेदरूप होगए हैं जैसे संसारी, एकेंद्रिय, द्वेंद्रिय, तेंद्रिय, चौन्द्रिय, पंचेद्रिय मनुष्य, देव, नारकी, रागी, द्वेषी, श्रावक, मुनि, आदि व आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा आदि व्यवहार दृष्टिसे देखा जावे तो ये सब भेद आत्मामें हैं ऐसा ही दिखनेमें आयगा परंतु जो निश्चयनय या अभेददृष्टिसे देखा जावेगा तौ इन सब पर्यायोंमें आत्मा एकरूप ही परम शुद्ध झलकता हुआ दिखाई देगा। इस संसारी जीवने अनादिकालसे आत्माको भेदरूप ही अनुभव किया-मैं नर मैं पशु मैं सुखी मैं दुखी मैं रोगी मैं शोकी ऐसा ही मानता रहा कभी भी आत्माका असली स्वभाव ध्यानमें नहीं लिया इसलिये आचार्य कहते हैं कि अब तो पर्याय दृष्टि गौण करो व बंद करो तथा निश्चयदृष्टिसे देखो तो हरएक पदमें शुद्ध आत्मद्रव्य ही अनुभवमें आयगा। यही अनुभव सम्यक्त है-व परम कार्यकारी है। श्री योगीन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

दोहा-जो णिम्मल अप्पा मुणहि छंडवि सहु ववहारु।
जिणसामी एहउ भणइ लहु पावहि भवपारु॥ ३७॥

भावार्थ-जो सर्व व्यवहारको छोड़कर निर्मल आत्माका अनुभव करता है वह शीघ्रही संसार पार होजाता है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है॥ ८॥

सवैया ३१ सा—जैसे बनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम, नानाभ ति भयो पै तथापि एक नाम है। कसीके कसोटी लीक निरखे साराफ ताहि बानके प्रमाणकरि लेतु देतु दाम है॥ तैसे ही अनादि पुद्गलसों संजोगी जीव नवतत्त्वरूपमें अरूपी महा धाम है। दीसे अनुमानसों उद्योत वान ठौरठौर दूसरो न और एक आतमा ही राम है॥ ९॥

मालिनीछंद—उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाण क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्र।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥१०॥

खंडान्वय सहित अर्थ अस्मिन् धाम्नि अनुभवमुपयाते द्वैतमेव न भाति—अस्मिन् कहता यह जो है स्वय सिद्ध, धाम्नि कहता चेतनात्मक जीव वस्तु, तिहिकी अनुभव कहता प्रत्यक्षपने आस्वाद, उपयाते कहतां आये सते, द्वैत कहता यावत् सूक्ष्म स्थूल अतर्जल्प बहिर्जल्प रूप विकल्प, न कहता नहीं, भाति कहता शोभे छे। भावार्थ इसौ जो अनुभव प्रत्यक्ष ज्ञानु छे, प्रत्यक्ष ज्ञान कहतां वेद्य वेदक भावपणे आस्वादरूप छे। सो अनुभव, पर सहायतहि निरपेक्षपणे छे। इसौ अनुभव यद्यपि ज्ञानविशेष छे तथापि सम्यक्त सौं अविनाभूत छे जो सम्यग्दृष्टि कहु होई, मिथ्यादृष्टि कहु न होई इसौ निहचौ छे। इसौ अनुभव होतां जीव वस्तु आपणा शुद्ध स्वरूप कहु प्रत्यक्षपने आस्वादे छे। तिहितहि जेते काल अनुभव छे ते ते काल वचन व्यवहार सहज ही रहे छे[1] जातहि वचन व्यवहार तौ परोक्षपनै कथक छे। सो जीव प्रत्यक्षपने अनुभवशील छे। तिहिंते वचन व्यवहारताई कछु रही नाहीं। किसौ छे जीव वस्तु। सर्वंकषे—सर्वं कहता जावत विकल्प, कषे कहता क्षयकरणशील छे। भावार्थ—इसौ जैसे सूर्य प्रकाश अंधकार तहि सहज ही भिन्न छे। तैसे अनुभव पुनि समस्त विकल्प रहित ही छे। इहां कोई प्रश्न करिसे जो अनुभव होता कोई विकल्प रहे छे कै निंनै नाम समस्त ही विकल्प मिटे छे। उत्तर इसो जो समस्त ही विकल्प मिटे छे, सोई कहिंमे छे। नयश्रीरपि न उदयति प्रमाणमपि अस्तमेति न विद्म' निक्षेपचक्रमपि क्वचित् याति अपरं किं अभिदध्म.—जिहि अनुभव आवसने प्रमाणनय निक्षेप पुनि झूठा छे। तहां रागादि विकल्पहकी कौनु कथा। भावार्थ—इसौ जो रागादि तौ झूठा ही छे, जीव स्वरूप तहि बाहिरा छे। प्रमाणनय निक्षेप बुद्धि करि दे केई जीव द्रव्यका द्रव्य गुणपर्याय रूप अथवा उत्पादव्यय ध्रौव्य रूप भेद कीजै छे ते समस्त झूठा छे। एवा समस्त झूठा होता। जो वयौ वस्तुकौ स्वाद छे सौ अनुभव छे। प्रमाण कहता युगपत् अनेक धर्म ग्राहक ज्ञान, सो पुनि विकल्प छे, नय कहतां वस्तुकौ एकु कोई गुण ग्राहक ज्ञानु, सो पुनि विकल्पु छे। निक्षेप कहतां उपचार घटनारूप ज्ञानु सो पुनि विकल्प छे। भावार्थ—इसौ जो अनादि तहि जीव अज्ञानी छे। जीवस्वरूपकहु नहीं जाने छे। तिहिकौ जब जीवसत्वकौ

[1] बंद होजाता है।

प्रतीति आनी चाहिजे, तब ज्योंही प्रतीत आवे त्योंही वस्तु स्वरूप साधिजे। सो साधवौ गुण गुणी ज्ञान द्वार होई दूजौ उपाय तौ कोई नहीं छे। तिहितहिं वस्तु स्वरूप गुण गुणी भेदरूप विचारता प्रमाणनय निक्षेप विकल्प उपजे छे। ते विकल्प प्रथम अवस्था भलाही छे। तथापि स्वरूपमात्र अनुभवतां झूठा छे।

भावार्थ-यहां बताया गया है कि शुद्ध आत्मस्वरूपका अनुभव विकल्परहित है। उपयोग जो अन्य अनेक विषयोंमें दौड़ा करता है रुक करके आत्माके ही ऊपर जम जाना अनुभव है। जैसे आम्रका स्वाद लेते हुए एकाग्रता होती है वैसे शुद्ध आत्माका सच्ची श्रद्धा द्वारा व स्पष्ट व निःसंशय ज्ञानद्वारा स्वाद लेते हुए एकाग्रता होती है। उस समय यह आत्मा अपनेसे ही आपका स्वाद लेता है। ऐसी दशामें अनुभव करनेवालेके स्वादमें सिवाय अपने ही आत्माके और कोई विषय नहीं आता है। वह मानों निज स्वरूपमें अद्वैत होजाता है। जैसे मादक पदार्थसेवी मदसे चूर हो एक ही रंगमें मस्त होजाता है वैसे आत्मानुभवी आत्मानन्दमें भरपूर हो एक ही रसमें लीन होजाता है। उस समय कोई प्रकारके विचार नहीं रहते हैं। प्रमाण नय निक्षेप आदि आत्माके ज्ञान प्राप्त करनेके साधन हैं, अनुभव दशाके पहले इनका उपयोग होसक्ता है परन्तु स्वानुभवके समय इनका पता भी नहीं चलता है। यही स्वानुभव परम उपादेय है। इसका लाभ करना ही एक बुद्धिमानका कर्तव्य है। स्वात्मानुभव करनेके पहले साधक इसतरह भावना करता है। जैसा कल्लाणा लोयणामें कहा हैः—

इक्को सहावसिद्धो सोहं अप्पा वियप्पपरिमुक्को।
अण्णोणमज्झसरणं सरणं सो एक्क परमप्पा॥ ३५॥

भावार्थ-जो सर्व विकल्पोंसे रहित एकरूप स्वभावसिद्ध आत्मा है सो ही मैं हूं, मैं और किसीकी शरणमें नहीं जाता हूं, एक शुद्धात्मा ही मेरे लिये शरण है।

सवैया ३१ सा—जैसे रवि मंडलके उदै महि मंडलमें, आतम अटल तम पटल विलातु है॥ तैसे परमातमको अनुभौ रहत जोलों, तोलों कहूं दुविधान कहु पक्षपात है॥ नयको न लेस परमानको न परवेस, निक्षेपके वंसको विधंस होत जातु है॥ जेजे वस्तु साधक हैं तेऊ तहां बाधक हैं, बाकी रागद्वेषकी दसाकी कौन बातु है॥ १०॥

उपजातिछंद-आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं।
विलीनसङ्कल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति॥ १०॥

खंडान्वय सहित अर्थ-शुद्धनयः अभ्युदेति-शुद्धनय कहतां निरुपाधि जीववस्तु स्वरूपोपदेश, अभ्युदेति कहतां प्रगट होई छे, कार्यो करता होवी, एकं प्रकाशयन् एकं कहतां शुद्ध स्वरूप जीव वस्तु तिहिकौं, प्रकाशयन् कहतां निरूपंत संतै। किसौ छे शुद्ध

जीव स्वरूप। आद्यन्तविमुक्त-आदि कहता यावत पाछिलो काल, अंत कहता आगामि काल, तिहि करि विमुक्त कहता रहित छै। भावार्थ-इसो जो शुद्ध जीव वस्तुकी आदि भी नहीं अंतु भी नहीं। इसो स्वरूप सूचै। तिहिको नाम शुद्ध नय कहिजै। और किसो छै जीव वस्तु। विलीनसंकल्पविकल्पजाल-विलीन कहता विलाइ गया छै, संकल्प कहता रागादि परिणाम, विकल्प कहता अनेक नय विकल्परूप ज्ञानका पर्याय तिहिको इसो छै। भावार्थ-इसो जो समस्त संकल्प विकल्पतहि रहित वस्तुस्वरूपको अनुभव सम्यक्त छै। किसा छै शुद्ध जीव वस्तु, परभावभिन्न-कहता रागादि भावोंसे भिन्न छै और किसा छै आपूर्णम् कहता अपने गुणोंसे परिपूर्ण छै। और किसा छै आत्मस्वभाव-कहता आत्माका निज भाव छै।

भावार्थ-शुद्ध निश्चयनय वह दृष्टि है जिसमें कोई पदार्थ बिलकुल शुद्ध परद्रव्यके संयोग रहित देखा जाता है। इस दृष्टिसे देखने हुए यह आत्मा अनादि अनन्त, सब रागादि विकार व सब भेदरहित एक अखंड ज्ञानानन्दमय परम स्वभावधारी ही दिखता है। इसी दृष्टिके पुनः पुनः अभ्याससे स्वानुभव होता है। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं कि इस तरह अपने आत्माका मनन करो---

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञातादृष्टा सदाप्युदासीनः।
स्वोपात्तदेहमात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्तः ॥ १५३ ॥

भावार्थ-मैं सत निस्य पदार्थ हूं चैतन्यमई, ज्ञातादृष्टा व सदा ही उदासीन हूं। शरीर प्रमाण आकारधारी होकर भी आकाशके समान अमूर्तीक हूं ॥ १० ॥

अडिल्ल-छन्द—आदि अंत पूरण स्वभाव संयुक्त है। पर स्वरूप पर जोग कल्पना मुक्त है॥ सदा एकरस प्रगट कही है जैनमें। शुद्ध नयातम वस्तु विराजे बैनमें ॥ ११ ॥

मालिनीछन्द न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात् जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

खंडान्वय सहित अर्थ-जगत् तमेव स्वभावं सम्यक् अनुभवतु-जगत् कहता सर्व जीव राशि, तं कहता पूर्वोक्त, एव कहता निश्चयसों, स्वभाव कहता शुद्ध जीव वस्तु, सम्यग् कहता ज्यों छै त्यों, अनुभवतु कहता प्रत्यक्षपनै स्वसंवेदन रूप आस्वादहु। किसा होई करि आस्वादहु। अपगतमोहीभूय-अपगत कहता गयो छै, मोह कहता शरीरादि परद्रव्यसेती एकत्व बुद्धि जाकी इसो, भूय कहता होय करि। भावार्थ-इसो जो संसारी जीव कहुं संसार माहि बसता अनंतकाल गयो। पनै जीव शरीरादि परद्रव्य स्वभाव सों। परि आपुनपो ही जानि प्रवर्त्यो। सो जब ही यह विपरीत बुद्धि छूटै, तब ही यह शुद्ध स्वरूप अनुभव योग्य होइ। किसो छै शुद्ध स्वरूप। समन्तात् द्योतमानं-समन्तात्

कहतां सर्व्व प्रकार, द्योतमानं कहतां प्रकाशमान छे। भावार्थ–इसौ जो अनुभव गोचर होतां किछू भ्रांति न छै। इहां कोई प्रश्न करै छै जो जीव तो शुद्ध स्वरूप कह्यौ, औरु योंही छै, परि रागद्वेष मोह रूप परिणाम अथवा सुखदुःखादि रूप परिणाम कहु कौन करै छे, कौन भोगवै छै। उत्तरु इसौ जो करतां तो जीव करै छे, भोगवे छै, परि यह परिणति विभावरूप छै, उपाधिरूप छे, तिहितै निजस्वरूप विचारतां, जीवको स्वरूप नहीं इसौ कहिजै छै। किसौ छै शुद्धस्वरूप। यत्र अमी वद्धस्पृष्टभावादयः प्रतिष्ठां न हि विदधति–यत्र कहतां जिहि शुद्धात्मस्वरूप विषै, अमी कहतां छता छे, वद्धस्पष्टभावादयः–वद्ध कहतां अशुद्ध रागादिभाव, स्पष्ट कहतां परस्पर पिंडरूप एक क्षेत्रावगाह। आदि शब्दतहि अन्यभाव, अनियतभाव, विशेषभाव, संयुक्तभाव जानिवा। तहां अन्यभाव कहतां नरनारक तिर्यंचदेव पर्यायरूप, अनियत कहतां असख्यात प्रदेश सम्बन्धी संकोच विस्तार रूप परिणमन, विशेष कहतां दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मेद कथन, संयुक्त कहतां रागादि उपाधि सहित, इत्यादि छै जे विभाव परिणाम, ते समस्त भाव शुद्धस्वरूप विषै, प्रतिष्ठां कहतां शोभा, नहि विधति कहतां नहीं धरै छे। भावार्थ–इसौ वद्ध स्पष्ट अन्य, अनियत, विशेष, संयुक्त इसा छे विभाव परिणाम ते समस्त संसारावस्था जीवका छै, शुद्धजीवस्वरूप अनुभवतां जीवका नहीं। किसा छे वद्धस्पष्टादि विभाव भाव स्फुटं कहतां प्रगटपनै, एव अपि–ऊपज्या होता छता ही छे। तथापि उपरितरंतः ऊपर ही ऊपर रहे छे। भावार्थ–इसौ जो जीवकौ ज्ञानगुण त्रिकालगोचर छे त्यों रागादि विभावभाव जीव वस्तु सौ त्रिकालगोचर नहीं छे। यद्यपि संसारावस्था छता ही छे। तथापि मोक्षावस्था सर्वथा नहीं छे। तातहि इसौ निहचौ जो रागादि जीव स्वरूप नहीं।

भावार्थ–इस श्लोकमें आचार्यने प्रेरणा की है कि हे जगतके जीवों! आत्माके सिवाय सम्पूर्ण पर पदार्थोंसे मोहको हटाकर अपने शुद्ध स्वभावका भलेप्रकार निश्चिन्त होकर स्वाद लो। जिस आत्माके स्वभावमें न तो कर्मोका बंध है न स्पर्श है। जैसे कमलका पत्ता जलके भीतर होकर भी जलसे भिन्न है वैसे आत्मा इन कर्मादिसे भिन्न है। यह आत्मा अपनी अनन्त नर नारकादि पर्यायोंमें भी वही द्रव्य है अन्यरूप नहीं हुआ। जैसे मिट्टी घट प्याला अनेक रूप बनकर भी मट्टी ही है। जैसे समुद्र तरंग रहित निश्चल भासता है ऐसे ही यह आत्मा संकोच विस्तार रहित अपने आत्मप्रदेशोंमें थिर झलकता है। जैसे सुवर्ण अपने गुण भारीपन पीलेपन आदिसे अभेद है वैसे यह आत्मा अपने ज्ञान दर्शनादि गुणोंसे अभेद सामान्य रूप है। जैसे अग्नि संयोग विना जल उष्ण न होकर शीतल है वैसे यह आत्मा मोहकर्मके विना रागद्वेष न प्राप्त करके परम वीतराग है। इसतरह अपने आत्माको एकाकार परम शुद्ध अनुभव करो।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

झाणेण कुणउ मेय पुग्गलजीवाण तहय कम्माण।
घत्तव्वो णियअप्पा सिद्धसरूपो परो बमो ॥ २८ ॥

भावार्थ—ध्यानके बलसे पुद्गलोंका कर्मोंका व जीवोंका भेद करो फिर अपने आत्माको सिद्धस्वरूपी परम ब्रह्मरूप अनुभव करो।

कवित्त—सतगुरु कहे भव्यजीवनसों तोरहु तुरत मोहकी जेल ॥ समकितरूप गहो आपनो गुण करहु शुद्ध अनुभवको खेल ॥ पुद्गलपिंड भावरागादिक इनसों नहीं तिहारो मेल ॥ ये जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल ॥ १२ ॥

शार्दूलविक्रीडितछन्द—भूत भान्तमभूतमेव रभसा निर्भिद्य बन्धं सुधी
र्यद्यन्तः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।
आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलो देवः स्वयं शाश्वतः ॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अयं आत्मा व्यक्तः आस्ते—अयं कहतां योंही, आत्मा कहतां चेतना लक्षण जीव, व्यक्त कहतां स्वस्वभाव रूप, आस्ते कहतां होई। नित्यं कर्मकलङ्कपङ्कविकलः—नित्य कहतां त्रिकालगोचर कर्म कहतां अशुद्ध पनों तिहिरूप कलंक कहतां कालीसि सोई, पंक कहतां कादौ, तिहितहि, विकल कहतां सर्वथा भिन्न इसो होइ। और किसी होइ, ध्रुव—कहतां चारि गति भमिवा तें रह्यो। और किसौ छै देव कहतां त्रैलोक्य करि पूज्य छै। और किसौ छै स्वयं शाश्वत—कहतां द्रव्य रूप छतौ ही छै। औरु किसौ होइ—आत्मानुभवैकगम्यमहिमा—आत्मा कहतां चेतन वस्तु तिहिको अनुभव कहतां प्रत्यक्षपनें आस्वाद तिहि करि, एक कहतां अद्वितीय, गम्य कहतां गोचर छै, महिमा कहतां बड़ाई जिहिकी, इसौ छै। भावार्थ—इसौ जो जीवको ज्यौ एक वस्तु गुण छै त्यौ एकु अतिन्द्रिय सुख गुणु छै। सो सुख गुण संसारावस्था अशुद्धपणाको प्रगटरूप आस्वादरूप नहीं, अशुद्धपणा गया थके प्रगट होइ छै। सो सुख अतिन्द्रिय परमात्माको छै। तिहि सुखको कहिवाको कोई दृष्टांत चारिगति माहैं नहीं। जातहि चारयौं गति दुःखरूप छै। तिहितैं इसौं कह्यौ जो तिहिको शुद्धस्वरूप अनुभव छै सो जीव परमात्मा। जीवका सुखको जानिवा योग्य छै। जिहित शुद्ध स्वरूप अनुभवता अतींद्रिय सुख छै इसौ भाव सूच्यौ। कोई प्रश्न करे छै। किसौ कारण करता जीव शुद्ध होई छै। उत्तर इसौ जो शुद्धको अनुभव करतां शुद्ध होई छै। किल यदि कोऽपि सुधी अंतः कलयति—किल कहतां निहचैसौं, यदि जो, कोपि कहतां कोई जीव, अंत कलयति कहतां शुद्ध स्वरूप कहु निरंतरपनें अनुभवै, किसौ छै जीव, सुधी कहतां शुद्ध छै बुद्धि जाकी। किं कृत्वा—

कायो करि अनुभवै। रभसा बंधं निर्भिद्य रभसा कहतां तेही काल, बंध कहतां द्रव्य पिंड रूप मिथ्यात्व कर्म्म, निर्भिद्य कहतां उदय मेटि करि अथवा मूलतहि सत्ता मेटि करि तथा हठात् मोहं व्याहृत्य-हठात् कहतां माटीपनै, मोहं कहतां मिथ्यात्वरूप जीवका परिणाम, व्याहृत्य कहतां मूल तहि उखारिकरि। भावार्थ-इसौ अनादिकालकौ मिथ्यादृष्टी ही जीव काललब्धि पाया सम्यक्त ग्रहण काल पहिले तीनि करण करै छै। ते तीनि करण अंतर्मुहूर्त माहि होहि छे। करण करतां द्रव्य पिंड रूप मिथ्यात्वकर्मकी शक्ति मिटै छै। तिहि शक्तिकै मिटतां भाव मिथ्यात्वरूप जीवका परिणाम मिटै छै। यथा धतूराकौ रस पाक मिटतां गहिलाई मिटै छै। किसौ छै बंध अथवा मोह। भूतं भांतं अभूतं एव-एव कहतां निहचौ, भूतं कहतां अतीत काल सम्बन्धी, भांतं कहतां वर्तमान काल सम्बन्धी, अभूतं कहतां आगामि काल सम्बन्धी। भावार्थ- इसौ जो त्रिकाल संस्कार रूप छै शरीरादि सौ एकत्व बुद्धि तिहिकै मिटता जो जीव शुद्ध जीव तहु अनुभवै सो जीव कर्म्म तहि मुक्त होई निहचा सेती ॥१२॥

भावार्थ-यहां बताया है कि जो बुद्धिमान भेद ज्ञानके द्वारा अपने आत्माको तीन कालके बंधके संस्कारसे रहित मानकर व मोहभावको दूर करके अपने भीतर अनुभव करता है उसको यही झलकता है कि मैं आत्मा नित्य ही सर्व कर्मके मैलसे रहित परम देव हूं। वास्तवमें मेरी महिमा अनुभव गोचर है। उसको कोई उपमा नहीं दी जासक्ती न उसका वचनोंसे वर्णन ही होसक्ता है। वास्तवमें जिसको देखना, जानना, श्रद्धना व अनुभव करना या स्वाद लेना है वह आप ही है। जब शुद्ध निश्चय नयके बलसे अपनेको परमात्मा रूप गाढ़ भावनाके द्वारा भाया जायगा तब स्वय स्वानुभव प्राप्त हो जायगा। आचार्य भावना करते हैं कि ऐसा ही आत्मा सदा हमारे अनुभवमें आवे।

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

जो जिण सोहउं सोजिहउं एहउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहकारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु॥ ७४॥

भावार्थ-जो जिन परमात्मा हैं वही मैं हूं, वही ही मैं हूं ऐसी ही भावना भ्रांति छोड़ करके सदा करै। हे योगी! यही मोक्षका उपाय है, और कोई न मंत्र है न तंत्र है।

सवैया ३१ सा—कोऊ बुद्धिवत नर निरखे शरीर घर, भेदज्ञान दृष्टीसो विचार वस्तु वास तो॥ अतीत अनागत वर्तमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखे बधमें विलास तो॥ बंधको विदारी महा मोहको स्वभाव डारि, आतमको ध्यान करे देखे परगास तो॥ करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप, अचल अबाधित विलोके देव सासतो॥ १३॥

वसन्ततिलका-आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिःप्रकम्पमेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥१३॥

खडान्वय सहित अर्थ–आत्मा पुनि मकप एकोस्ति–आत्मा कहता चेतन द्रव्य, पुनि प्रकप कहतां अशुद्ध परिणमन तहि रहित, एक कहता शुद्ध, अस्ति कहता होई छै। किसौ छै आत्मा। नित्य समनात् अवबोधघन'–नित्य कहतां सदाकाल, समतात् कहतां सर्वांग, अवबोध कहतां ज्ञान गुण तिहिकी घन कहता समूह छै, ज्ञानपुंज छै। किं कृत्वा–कार्योकरिकै आत्मा शुद्ध होइ छै। आत्मना आत्मनि निवेश्य–आत्मना कहता आपुनपै, आत्मनि कहता आपनै ही विषै, निवेश्य कहतां प्रविष्ट होइ करि। भावार्थ–इसौ जो, आत्मा नुभव परद्रव्य सहाय रहित छै। तिहितै आपुनपै ही आपुनु करि आत्मा शुद्ध होई छै। इहा कोई प्रश्न करै छै जो एनै अवसर तौ इसौ कह्यो जो आत्मानुभव करता आत्मा शुद्ध होइ छै। कहीं एक कह्यो जो ज्ञान गुण मात्र अनुभव करता शुद्ध होइ छै, सो विशेष कायौ परयौ। उत्तरु इसौ जो विशेष तौ काई न छै–या शुद्ध नयात्मिका आत्मानुभूतिः इति किल इय एव ज्ञानानुभूति इति बुद्ध्वा–या कहता जो, आत्मानुभूति कहतां आत्म द्रव्यकी प्रत्यक्षपनै आस्वाद। किसी छै अनुभूति शुद्ध नयात्मिका, शुद्ध नय कहता शुद्ध वस्तु सोई छै आत्मा कहतां स्वभाव जिहिकौ, इसी छै। भावार्थ–इसौ जो निरुपाधि पनै जीवद्रव्य जिसौ छै तिसौ ही प्रत्यक्षपनै आस्वाद आवै इहिकौ नाम शुद्धात्मानुभव कहीजै। किल कहता निहचै, इय एव कहता यही कही जो आत्मानुभूति सोई ज्ञानानुभूति इति मुन्ध्या कहतां जानिकरके एतावन्मात्र। भावार्थ इसौ जो जीव वस्तुकौ प्रत्यक्षपनै आस्वाद, तिहिसौ नामकरि आत्मानुभव इसौ कहिजै अथवा ज्ञानानुभव इसौ कहिजै, नाम भेद छै वस्तुभेद नहीं। इसौ जानि आत्मानुभव मोक्षमार्ग छै। एनै अवसरि और भी संशय जाइ छै। जो कोई जानिसे, द्वादशांग ज्ञान कछौ अपूर्व लब्धि छै। ताहिप्रति समाधान इसौ–जो द्वादशांग ज्ञानु पुनि विकल्प छै। तिहि माहि पुनि इसौ कह्यौ छै जो शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग छै तिहिनै शुद्धात्मानुभूति होता शास्त्र पढ़िवाकी अटक किछू नाहीं।

भावार्थ–इसमें यह बताया है कि सम्यग्ज्ञानका अनुभव वही है जहां शुद्ध आत्माका अनुभव है। ऐसा समझकर आत्माको अपने ही द्वारा अपने आत्माके भीतर प्रवेश करके अविनाशी ज्ञानमई आत्माका निश्चलपने अनुभव करना चाहिये। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

> कर्मजेभ्य समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहं।
> ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥ १६४॥

भावार्थ–ज्ञानीको उचित है कि अपने आत्माके द्वारा अपने आत्माको ज्ञान स्वभाव, परम वीतराग व सब कर्म कृत भावोंसे भिन्न सदा अनुभव करे।

सवैया २३ सा—शुद्ध नयातम आतमकी, अनुभूति विज्ञान विभूति है सोई ॥ वस्तु विचारत एक पदारथ, नामके भेद कहावत दोई ॥ यो सरवंग सदा लखि आपुहि, आतम ध्यान करे जब कोई ॥ मेटि अशुद्ध विभावदशा तब, सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥ १४ ॥

पृथ्वीछंद-अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनन्तमन्तर्बहिर्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालम्बते यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितं ॥१४॥

खंडान्वय सहित अर्थ—तत् परमं महः नः अस्तु—तत् कहतां सोई, महः कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र वस्तु, नः कहतां हम कहुं, अस्तु कहतां होउ। भावार्थ—इसो शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव उपादेय, आन समस्त हेय। किसौ छै महः, परमं कहतां उत्कृष्ट छै, औरु किसौ छै महः अखंडितं—खंडित नहीं छै, परिपूर्ण छै। भावार्थ—इसो जो इंद्रियज्ञान खंडित छै, सो यद्यपि वर्तमान काल तिहिरूप परिणयौ छै तथापि स्वरूप अतीद्रिय ज्ञानु छै। औरु किसौ छै। अनाकुलं—आकुलता तहि रहित छै। भावार्थ—इसौ जो—यद्यपि संसारावस्था कर्मजनित सुख दुःख रूप परिणवै छै तथापि स्वाभाविक सुख स्वरूप छै। औरु किसौ छै, अंतर्बहिर्ज्वलत्—अंतः कहतां माहे, बहिः कहतां बाहिर, ज्वलत् कहतां प्रकाशरूप परिणवै छै। भावार्थ—इसौ जीव वस्तु असंख्यात प्रदेश छै। ज्ञानु गुणु सर्व्व प्रदेश एकसौ परिणवै छै। कोई प्रदेश घाटि वाढ़ि नहीं छै। औरु किसौ छै, सहजं—स्वयं सिद्ध छै। औरु किसौ छै, उद्विलासं—कहतां आपणा गुण पर्याय सौं धाराप्रवाह रूप परिणवै छै। औरु किसौ छै, यत् महः सकलकालं एकरसं आलम्बते-यत् कहतां जो, महः कहतां ज्ञानु पुंज, सकलकालं कहतां त्रिकाल ही, एकरसं कहतां चेतना स्वरूपकहु, आलम्बते कहतां आधारभूत छै। किसौ छै एकरस, चिदुच्छलननिर्भरं—चित् कहतां ज्ञान, उच्छलन कहतां परिणमन, तिहिकरि निर्भरं कहतां भरितावस्थ छै। औरु किसौ छै एकरस, लवणखिल्यलीलायितं—लवण कहतां क्षाररस तिहिकी खिल्य कहतां कांकरु तिहिकी लीला कहतां परिणति, आयितं कहतां तिहिकै नांई छै स्वभाव जिहिकौ। भावार्थ—इसौ जो जैसे लौनकी कांकरि सर्वांग ही क्षार छै तैसे चेतन द्रव्य सर्वांग ही चेतन छे ॥ १४ ॥

भावार्थ—ज्ञानी ऐसी भावना भाता है कि मुझे उस आत्मस्वभावका अनुभव प्राप्त हो जिस आत्माका ज्ञान एक स्वभावरूप अखण्डित है। उसमें मति ज्ञानादिके भेद नहीं है व जिसमें किसी प्रकारके राग द्वेषका क्षोभ नहीं, जो आत्मानन्दको देनेवाला है तथा जो आत्माके सर्व आकारमें सर्व जगह परिपूर्ण प्रकाशमान है व जिसके समान और कोई तेज इस लोकमें नहीं है। जिसके प्रकाशके लिये किसी परवस्तुकी सहायताकी जरूरत नहीं है व जिसमें चेतनताका एक सामान्य स्वाद ऐसा भरा हुआ है जैसे लोणकी डलीमें खारपन भरा होता है। स्वानुभव ही परमानन्दमई एकरस उसीका स्वाद हमें निरन्तर प्राप्त हुआ करे।

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं—

सुद्ध पएसह पूरियउ लोयायास पमाणु ।

सो अप्पा अणुदिण मणहु पावहु लहु णिव्वाणु ॥ २२ ॥

भावार्थ-जो अपने लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशोंमें परम शुद्ध है ऐसे ही आत्माको रातदिन मनन करो जिससे शीघ्र निर्वाणका लाभ होवे ॥

सवैया ३१ सा—आन ही गुण परजायको प्रवाहरूप परिणौ तिहूं काल अपने आधार सो । अंतर बाहिर परकासवान एकरस छीणता न गहे, भिन्न रहे भौ विकारसो ॥ चेतनाके रस सरवंग भरिरह्यो जीव जैसे लूण कांकर भर्यो है रस क्षारसो । पूरण स्वरूप अति उज्जल विज्ञानघन मोको होहु प्रगट विशेष निरवारसो ॥ १४ ॥

अनुष्टुप-एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभि ।

साध्यसाधकभावेन द्विधैक समुपास्यताम् ॥ १० ॥

खडान्वय सहित अर्थ-सिद्धिमभीप्सुभि एष आत्मा नित्य समुपास्यता-सिद्धि कहता सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष, अभीप्सुभि कहतां मोक्ष कहु उपादेय करि अनुभवे छे जे जीव तिन कहु उपादेय इसौ जो, एष कहता आपनो, आत्मा कहता शुद्ध चैतन्यद्रव्य, नित्य कहता सदाकाल, समुपास्यता कहता अनुभव करिवो । किसो छे आत्मा ज्ञानघन ज्ञान कहता स्वपर ग्राहक शक्ति तिहकी घन कहता पुंज छे । और किसौ छे । एक — कहता समस्त विकल्प रहित है। और किसौ छे, साध्यसाधकभावेन द्विधा-साध्य कहता सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष, साधक कहु । मोक्ष कारण शुद्धोपयोग लक्षण शुद्धात्मानुभव, इसी भाव कहतां दोइ अवस्था भेद करि द्विधा कहता दोइ प्रकार छे । भावार्थ-इसौ जो एक ही जीवद्रव्य कारणरूप तो आपुनपैंगी परिणवइ, कार्यरूप ता आपुनपैं ही परिणवै छे। तिहिते मोक्ष जाता कोई द्रव्यांतरको सारो नहीं। तिहितै शुद्धात्मानुभव कार्ज ।

भावार्थ-यहां बताया है कि मोक्ष आत्माका स्वरूप है जिसको साधन करना है। व मोक्षका साधन व उपाय भी आत्मा ही है। जब यह आत्मा स्वानुभवरूप वर्तता है तब व । निश्चय रत्नत्रय अर्थात् मोक्षमार्ग विद्यमान है । उपादान कारण ही कार्यका मुख्य साधन होता है इसलिये आत्मा पूर्वभाव साधक उत्तर भाव साध्य है । ऐसा जान शुद्धोपयोग वर्तनेका पुरुषार्थ सदा ही करते रहना चाहिये । श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

दसणणाणचरित्ता णिच्छयवाएण हुंति ण हु भिण्णा ।

जो खलु सुद्धो भावो तमेव रयणत्तय जाण ॥ ८० ॥

भावार्थ-सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र निश्चयनयसे भिन्न नहीं है। जो कोई आत्माका एक शुद्ध भाव है उस हीको रत्नत्रय वास्तवमें जानो ।

कवित्त—जहां ध्रुवधर्म कर्मक्षय लच्छन, सिद्ध समाधि साध्यपद सोई। शुद्धोपयोग जोग महि मंडित, साधक ताहि कहै सब कोई॥ यो परतक्ष परोक्ष स्वरूपसो, साधक साध्य अवस्था दोई। दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै सिव वंछक थिर होई॥ १६॥

अनुष्टुप—दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम्।

मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः॥ १६॥

खंडान्वयसहित अर्थ—आत्मा मेचकः—आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, मेचक कहतां मैल्यौ छे। किसा पे मैल्यो छे, दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वात्-दर्शन कहतां सामान्यपने अर्थ-ग्राहकशक्ति, ज्ञान कहतां विशेषपने अर्थ ग्राहकशक्ति। चारित्र कहतां शुद्धत्व शक्ति। इसी शक्ति भेद करतां एकु जीव तीनिप्रकार होइ छे। तिहितै मैलो कहिजे इसौ व्यवहार छे। आत्मा अमेचकः— आत्मा कहतां चेतनद्रव्य, अमेचक कहतां निर्मल छे। किसा छे निर्मल छे। स्वयं एकत्वतः—स्वयं कहतां द्रव्यकौ सहज एकत्वतः कहतां निर्भेद छे, इसौ निश्चय-नय कहिजे। आत्मा प्रमाणतः समं मेचकः अमेचकोपि च—आत्मा कहतां चेतनद्रव्य समं कहतां एक ही वार, मेचकः अमेचकोपि च—मैलो फुनि छे निर्मल फुनि छे। किसाथकी, प्रमाणतः प्रमाण कहतां युगपत् अनेक धर्म ग्राहक ज्ञान। तिहितै प्रमाण दृष्टि देखतां, एक ही वार जीवद्रव्य भेदरूप फुनि छे, अभेदरूप फुनि छे॥

भावार्थ—वस्तुको अभेद एकरूप देखना निश्चय दृष्टि है, उसे अनेक गुण व स्वभाव रूप देखना व्यवहारदृष्टि है। दोनों रूप एक समयमें एक साथ देखना प्रमाणदृष्टि है। आत्मामें दर्शन, ज्ञान व चारित्रगुण है इसलिये अनेकरूप है। टीकाकार राजमलजीने दर्श-नके अर्थ सामान्य ग्राहक उपयोग किया है। जब कि इसका अर्थ सम्यग्दर्शन गुण भी होसक्ता है। दोनो ही अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं। आत्मा अपने इन गुणोंसे अभेद है इसलिये आत्मा एकरूप है। एकरूप अनुभव करना स्वानुभवका साधक है। श्री योगेन्द्राचार्य पर-मात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जीवहिं मोक्खहिं हेउवरु-दंसणणाणचरित्तु।

ते पुण तिण्णवि अप्पुमुणि, णिच्छए एहु उवुत्तु॥ १३७॥

भावार्थ—जीवके लिये मोक्षका कारण निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है वे उन तीनोंको ही निश्चयनयमे आत्मा जानो ऐसा कहा गया है।

कवित्त—दरसन ग्यान चरन त्रिगुनातम, समलरूप कहिये विवहार। निहचै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविचल अविकार॥ सम्यकदसा प्रमान उभैनय, निर्मल समल एक ही बार। यौं समकाल जीवकी परिनति, कहै जिनेंद गहै गनधार॥ १७॥

अनुष्टुप—दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणतत्वतः।

एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद्व्यवहारेण मेचकः॥ १७॥

आत्मस्वरूप विचारतां बहुत विकल्प उपजै छे, एक पक्ष विचारतां आत्मा अनेकरूप छे, दूजै पक्ष विचारता आत्मा अभेदरूप छे। इसौ विचारतां फुनि स्वरूप अनुभव नहीं। इहां कोई प्रश्न करै छे, विचारतां तौ अनुभव नहीं, अनुभव कया छे। उत्तरु इसौ जो। प्रत्यक्षपनै वस्तुको आस्वाद करता अनुभवै छे। सोइ कहिजै छे। **दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिः** दर्शन कहतां शुद्ध स्वरूपकौ अवलोकन, ज्ञान कहतां शुद्ध स्वरूपकौ प्रत्यक्ष जानपनौ, चारित्रं कहतां शुद्ध स्वरूपकौ आचरण, इसौ कारण कहता, साध्यसिद्धिः—साध्य कहता सकल कर्मक्षय लक्षण मोक्ष, तिहिकी सिद्धि कहतां प्राप्ति होई। भावार्थ-इसौ जो शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव करतां मोक्षकी प्राप्ति छे। कोई प्रश्न करै छे जो इतनौ ही मोक्षमार्ग छे, कै कांई औरु भी मोक्षमार्ग छे। उत्तरु इसौ जौ इतनौ ही मोक्षमार्ग छे। **न चान्यथा**—च कहतां पुनः, अन्यथा कहतां अन्य प्रकार, न कहतां साध्यसिद्धि नहीं।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि नयद्वारा भेद अभेदरूप चिंतवन करनेसे स्वानुभव नहीं होगा। सर्व विकल्पोंको छोडकर जब एक अपने ही शुद्ध आत्मस्वरूपको श्रद्धा व ज्ञानपूर्वक स्वादमें लिया जायगा व आत्म सन्मुख हुआ जायगा, परसे मोह रागद्वेष हटाया जायगा, समता भावमें तन्मय होजायगा तब ही स्वानन्दामृत रसका पान होगा। यही स्वानुभव है, यही मोक्षमार्ग है इसको छोड़कर और कोई भी मोक्षका साधन नहीं होसक्ता है।

श्री योगेन्द्राचार्य परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

पिच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पे अप्पउ जोजि। दंसण णाण चरित्त जिउ, मोक्खहिं कारण सोजि॥१३८॥

भावार्थ—जो आप अपनेका श्रद्धान, ज्ञान व आचरण करता है वह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई आत्मा मोक्षका कारण है।

दोहा—एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर। समल विमल न विचरिये, यहै सिद्धि नहि और॥ २०॥

मालिनीछंद—कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया, अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम। सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नम् न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः॥२०

खंडान्वयसहित अर्थ—इदं आत्मज्योतिः सततं अनुभवामः—इद कहतां प्रगट छे, आत्मज्योतिः कहतां चैतन्य प्रकाश, सततं कहतां निरतरपनै, अनुभवामः कहता प्रत्यक्षपनै आस्वाद करां छा। किसौ छे आत्मज्योति, कथमपि समुपात्तत्रित्वं अपि एकतायाः अपतितम्—कथमपि कहतां व्यवहारदृष्टि करि, समुपात्त कहता ग्रह्यो छै, त्रित्वं कहतां तीनि भेद जिहि इसौ छे तथापि एकताया कहता शुद्धपनै थकी, अपतितं कहतां नहीं परै छे। और किसौ छे आत्मज्योति, उद्गच्छत् कहता प्रकाशरूप परिणवै छे, औरु किसौ छे, अच्छं—कहता निर्मल छे, और किसौ छे, अनंतचैतन्यचिन्हं—अनंत कहता अति बहुत, चेत-

न्य कहतां नान मोई छे चिह्न कहता लक्षणनिहिकों इसों छे। कोई आशका करे छे जो अनुभव वस्तु करि दिखायों सो कायों कारण। यस्मात् अन्यथा साध्यसिद्धि न खलु न खलु-यस्मात् कहता जिहि कारण तहि, अन्यथा कहता अन्य प्रकार, साध्यसिद्धि कहता स्वरूपकी प्राप्ति, न खलु न खलु कहता नाहीं नाहीं इसी निहचौ छे।

भावार्थ-यहां फिर भी दृढ़ किया है कि यद्यपि भेदरूप कथन करनेवाली व्यवहार दृष्टिसे आत्माको दर्शनरूप, ज्ञानरूप व चारित्ररूप देखा जाता है तथापि यह आत्मा इन तीनोंसे अभेद एक ही अखंड, ज्ञान समुदाय, परम निर्मल पदार्थ है। ऐसा ही अनुभव उचित है। इसी तरह हम भी आत्माका स्वाद लेते हैं यदि तुम मोक्षार्थी हो तो तुम भी आत्माका इसी तरह स्वाद लो। क्योंकि मोक्षकी सिद्धिका यही उपाय है अन्य कोई उपाय नहीं होसक्ता है। श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

जइ इच्छहि कम्मखय सुण्ण धरेहि णियमणो झत्ति। सुण्णीकयम्मि चित्ते णूणं अप्पा पयासेइ ॥ ७४ ॥

भावार्थ-यदि कर्मका नाश करना चाहते हैं तो अपने मनको शीघ्र ही संकल्प विकल्पोंसे शून्य करो। मनको परभावरहित करनेपर ही निश्चयसे आत्माका प्रकाश होता है।

सवैया ३१ सा—जाके पद सोहत सुलक्षण अनंत ज्ञान विमल विकाशवंत ज्योति लह लही है। यद्यपि त्रिविधिरूप व्यवहारमें तथापि एकता न तजे यों नियत अंग कही है॥ सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके ध्यान करवेकूं मेरी मनसा उमगी है। जाते अविचल रिद्धि होत और भांति सिद्धि, नाहीं नाहीं नाहीं यामें धोखो नाहीं सही है॥ २१॥

मालिनी छंद कथमपि हि लभन्ते भेदविज्ञानमूलामचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा।
प्रतिफलननिमग्नानन्तभावस्वभावैर्मुकुरवदविकाराः सततं स्युस्त एव ॥ २१ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ-ये अनुभूतिं लभन्ते-ये कहता जे केई निकट संसारी जीव, अनुभूतिं कहतां शुद्ध जीव वस्तुको आस्वाद। लभन्ते कहतां पावहि छे। किसी छे अनुभूति, भेदविज्ञानमूला-भेद कहता स्वस्वरूप परस्वरूप दोइ करिवौ इसौ छे विज्ञान कहता जानपनो सोइ छे, मूल कहता सर्वस्व जिहिको इसौ छे, और किसी छे। अचलित कहता थिरतारूप छे। इसी अनुभूति क्यों पाइजे छ। कथमपि स्वतो वा अन्यतो वा-कथमपि कहता अनन्त संसार भ्रमता क्यों ही करि काललब्धि प्राप्त होइ छे तब सम्यक्त उपजै छे, तब अनुभव होइ छ, स्वतो वा कहता मिथ्यात्व कर्मके उपशमतां विना ही उपदेश अनुभव होइ छे, अन्यतो वा कहता अतरंग मिथ्यात्व कर्मको उपशम होइ छे बहिरंग गुरु समीप सूत्रको उपदेश पाइ करि अनुभव होइ छे। कोइ प्रश्न करे छे। जे अनुभव पावे छे ते अनुभव पायाथकी किसा छे। उत्तर इसो जो निर्विकार छे, सोइ कहिजै छ। त एव सततं मुकुरवत् अविकाराः स्युः-त एव कहता तेई जीव, सततं कहता निरंतरपनै,

कहतां आरीसाकी नाई, अविकाराः कहतां रागद्वेष तहि रहित, स्युः कहतां छे। किभाव निर्विकार छे। प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावैः—प्रतिफलन कहतां प्रतिबिम्बरूप निमग्न कहतां गर्भित छे, अनंतभाव कहतां सकल द्रव्य तिहिके, स्वभाव कहतां गुणपर्याय, तिहिकरि निर्विकार छे। भावार्थ—इसौ जो, जिहि जीवकौ शुद्ध सरूप अनुभवै छे ताका ज्ञान सकल पदार्थ उद्दीपै छे, भाव कहतां गुणपर्याय तिहिकरि निर्विकाररूप अनुभव छे त्यांहके ज्ञानमांहे सकल पदार्थ गर्भित छे॥ २१ ॥

भावार्थ—यहां बताया है कि स्वात्मानुभव होनेका उपाय भेदविज्ञानकी प्राप्ति है। आत्माका असली स्वभाव अलग है अनात्माका स्वभाव अलग है, इस ज्ञानको भेदविज्ञान कहते है। जब सम्यग्दर्शनरूपी गुण आत्मामें प्रकाशमान होता है तब यह भेदविज्ञान यथार्थ होता है तब ही स्वानुभव होता है। अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वके उपशम होनेसे अनादिकालीन मिथ्यादृष्टीको सम्यक्त होजाता है उसमें कारण दो है—यातो स्वयं विना उपदेशके जातिस्मरणसे, वेदनाको अनुभव करते हुए, व देवविभूति देखकर व समवशरण व मूर्ति देखकर इत्यादि कारणोंसे होता है या आत्मज्ञानी गुरुके उपदेश व शास्त्राभ्याससे होता है। जिसको स्वानुभव होता है। उसका ज्ञान बडा ही निर्मल होता है, जैसे दर्पणमें पदार्थ जैसे हैं वैसे झलकते हैं परन्तु दर्पण उनसे विकारी व अन्यरूप नहीं होता है—जैसाका तैसा बना रहता है तैसे स्वानुभवीके ज्ञानमें अन्य द्रव्योके गुणपर्याय जैसेके तैसे झलकते हैं परन्तु वह ज्ञानी उनसे रागद्वेष मोह नही करता है। अपने स्वच्छ वीतराग स्वभावको भिन्न ही अनुभव करता है। व्यवहारमें कार्य करते हुए, राज्यपाट करते हुए भी भरत चक्रवर्तीकी तरह अतरंग मनको नहीं जोड़ता है। जैसे कि पूज्यपादस्वामीने समाधिशतकमें कहा है—

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्। कुर्यादर्थवशात्किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥ ५० ॥

भावार्थ—आत्मज्ञानके सिवाय अन्य कार्यका चितवन बुद्धिमें दीर्घकालतक ज्ञानी नहीं रखता है। प्रयोजनवश कुछ काम करना पडे तो वचन और कायसे करता है उनमें मनको आशक्त नहीं करता है। कर्मोके उदयसे साताकारी व असाताकारी पदार्थोंके सम्बन्ध होने पर भी न तो वह ज्ञानी उन्मत्त होता है और न खेदखिन्न होता है। स्वानुभवीके ज्ञानमें यह जगत नाटकतुल्य भासता है। वह ज्ञाता दृष्टा रहता है—उनमें स्वामित्व नहीं रखता है।

सवैया २३ सा—जे अपनो पद आप सम्हारत, के गुरुके मुखकी सुनि बानी॥ भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके, प्रगटी सुविवेक कला रजधानी॥ भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवन मोक्षदशा ठहरानी॥ ते नर दर्पण ज्यों अविकार, रहै थिररूप सदा सुख दानी॥ २२ ॥

मालिनीछंद—त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्।
इह कथमपि नात्माऽनात्मना साकमेकः किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

धातु पाषाणमांहि ही मिल्यो आयो छे तथापि आगिको संजोग पाया थै पाषाण तहिं सोनो भिन्न होइ छे ॥ २२ ॥

भावार्थ-यहां यह बताया है कि ऐ जगतके प्राणियों! जिस मिथ्याबुद्धिसे तुमने पर द्रव्योंको अपना मानकर रागद्वेष करके कर्मका बन्धनकर संसारमें वारवार जन्ममरण करके घोर संकट उठाए है उस मोहमई भावको बिलकुल भी न रक्खों तुर्त निकाल दो और उस अपने आत्माके निर्मल ज्ञानमई स्वरूपका स्वाद लो जिसका स्वाद स्वय अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुगण सदा लेते हुए परमानन्दका लाभ करते हैं। क्या तुम नहीं समझते कि दो द्रव्योंका मिश्रण ससार है, ये दोनों द्रव्य अपने अपने स्वभावसे बिलकुल भिन्न हैं। जीवका स्वभाव अन्य है अजीवका अन्य है इनमें कभी भी एकपना नहीं होसक्ता। जीवकी जाति शुद्ध ज्ञानानद मई सिद्ध समान है। इसी स्वरूपका अनुभव आत्माको अपने कार्यका साधन करनेवाला है। ऐसा ही अनुभव करना योग्य है। जैसा-श्री देवसेनाचार्यने आराधनासारमें कहा है—

सुन्खमओ अहमेको सुद्धप्पाणाणदंसणसमग्गो अण्णे जे परभावा ते सव्वे कम्मणा जणिया ॥१०३॥

भावार्थ-मैं एक हूं, शुद्ध आत्मा हूं, आनन्दमई हूं, ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण हूं। अन्य जो रागादि भाव व अवस्थाएं हैं सो सर्व कर्म द्वारा पैदा होती हे मेरा स्वरूप नहीं है।

सवैया २३ सा—याही वर्तमानसमै भव्यनको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्ममलसो। उदै करे भेदज्ञान महा रुचिको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुद दलसो ॥ जाते थिर रहे अनुभौ विलास गहे फिरि कबहू अपना यों न कहे पुदगलसो। यह करतूती यो जुदाइ करे जगतसो, पावक ज्यों भिन्न करे कचन उपल सो ॥ २३ ॥

मालिनीछंद—अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्ननुभव भवमूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहं ॥२३॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अयि मूर्त्तेः पार्श्ववर्ती भव, अथ मुहूर्त्तः पृथग् अनुभव-अयि कहतां भो भव्यजीव, मूर्तेः कहतां शरीरतहिं, पार्श्ववर्ती कहता भिन्न सरूप, भव कहतां होहु। भावार्थ-इसौ जो अनादिकालतहिं जीव द्रव्य एक संस्काररूप चल्यो आयो। सो जीव इसौ कहि प्रतिबोधिजै छे, जो भो जीव, एता छे जे शरीरादि पर्याय ते समस्त पुद्गल कर्मका छे, थारा नहीं। तिहितै एता पर्याय यैं आपनपो भिन्न जानि। अन्य कहतां भिन्न जानि करि, मुहूर्त्त कहतां थोरो ही काल, पृथक् कहतां शरीरतहिं भिन्न चेतन द्रव्य, अनुभव कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद करहु। भावार्थ-इसौ जो शरीर तो अचेतन छे, विनशर छे, शरीरतहिं भिन्न कोई तो पुरुष छे इसौ जानपनो इसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवहंको [illegible]नि होइ छे परि साध्यसिद्धि तौ कांई नहीं। जब जीवद्रव्यकी द्रव्यगुण पर्याय स्वरूप प्रत्यक्ष

पनौ आस्वाद आवै तब सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र छै, सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष पुनि छै। किसो छै अनुभवशील जीव, तत्त्वकौतूहलीसन्-तत्त्व कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहिकौ, कौतूहली कहतां स्वरूप देख्यो चाहै छै, इसौ सन् कहतां होतौ सन्तो, अहं किसौ होय करि कथमपि मृत्वा-कथमपि कौन ही प्रकार करि कौन ही उपाय करि मृत्वा कहतां मरि करि शुद्ध जीव स्वरूपकौ अनुभव करहु। भावार्थ-इसौ जो शुद्ध चैतन्यको अनुभव तौ सहज साध्य छै, जतन साध्य तो नहीं छै। यदि इतनी कहना अत्यन्त उपादेयपनौ दिखायौ। इहां कोई प्रश्न करै छै, जो अनुभव तौ ज्ञानमात्र छै तिहिं करि जो कछु कार्यसिद्धि छै सो कुनि उपदेश करि कहियै छै। यन मूर्छा साकं एकत्वमोह झगिति त्यजसि-येन कहतां जिहिं शुद्ध चैतन्य अनुभवकरि, मूर्छा कहतां भरतु छै द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म कर्मरूप पर्याय, साकं कहतां त्यहसौ छै, एकत्वमोह कहतां एक संस्कार रूप, अहं देव, अहं मनुष्य, अहं तिर्यंच, अहं नारक, इत्यादि अहं सुखी अहं दुःखी इत्यादि, अहं क्रोधी अहं मानी इत्यादि, अहं यति, अहं गृहस्थ इत्यादि रूप है प्रतीति इसौ छै। मोह कहतां विपरीतपनौ, तिहिकौ, झगिति कहतां अनुभव होत मात्र, त्यजसि कहतां भो जीव! आपणी ही बुद्धि करि तूही छाडिसै। भावार्थ-इसौ जो अनुभव ज्ञानमात्र वस्तु छै, एकत्व मोह मिथ्यात्व द्रव्यको विभाव परिणाम छै, तौ पुनि इनकहु आपुसमाहिं कारण कार्यपनौ छै। तिहिकौ ब्यौरौ-जिहिकाल जीवकौ अनुभव होय छै, तिहिंकाल मिथ्यात्व परिणमन मिटै छै, सर्वथा अवश्य मिटै छै। जिहिकाल मिथ्यात्व परिणमन मिटै छै, तिहिंकाल अवश्य अनुभवशक्ति होय छै। मिथ्यात्व परिणमन ज्यों मिटै छै त्यों कहिजे छै स्व समालोक्य-स्व कहतां आपणो शुद्ध चैतन्य वस्तुकहु, समालोक्य कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै आस्वाद करि। किसी छै शुद्ध चेतन, विलसत-कहतां अनादि निधन प्रगटपनै चेतनारूप परिणवै छै॥ २३॥

भावार्थ-यहां बताया गया है कि हरएक स्वहित वांछकको प्रमाद छोड़कर व हर प्रकारका पुरुषार्थ करके आत्मतत्त्वका रुचिवान होना चाहिये। आत्माके मननके लिये पठन व सुसंगति आदि उपायोंको करना चाहिये। दो घड़ी नित्य एकांतमें बैठकर भेदविज्ञानके बलसे सब आत्मासे भिन्न द्रव्य, गुणपर्यायोंसे व रागादि वैभाविक भावोंसे उदासी लाकर मात्र अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय होकर स्वात्मानुभवका अभ्यास करना चाहिये। इसी अभ्याससे अनादिकालका मिथ्यात्वमई अज्ञान मिटेगा-शुद्ध सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगी। जो आत्मस्वतंत्रताके लिये रामबाण उपाय है। श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं-

जम्हा दंसण णाणं चारित्तं तह तवो य सो अप्पा। चइऊण रायदोसे आराहउ सुद्धमप्पाणं॥ १०॥

भावार्थ-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप ये चारों ही निश्चयसे आत्मारूप हैं। इसलिये सबसे रागद्वेष छोड़के शुद्ध आत्माकी ही आराधना करो।

धातु पाषाणमाहै ही मिल्यो आयो छे तथापि आगिको संजोग पाया थैं पाषाण तहिं सोनौ भिन्न होइ छे ॥ २२ ॥

भावार्थ–यहां यह बताया है कि ऐ जगतके प्राणियों ! जिस मिथ्याबुद्धिसे तुमने पर द्रव्योंको अपना मानकर रागद्वेष करके कर्मका बन्धनकर संसारमें वारवार जन्ममरण करके घोर संकट उठाए हैं उस मोहमई भावको बिलकुल भी न रक्खो तुर्त निकाल दो और उस अपने आत्माके निर्मल ज्ञानमई स्वरूपका स्वाद लो जिसका स्वाद स्वयं अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुगण सदा लेते हुए परमानन्दका लाभ करते हैं। क्या तुम नहीं समझते कि दो द्रव्योंका मिश्रण संसार है, ये दोनों द्रव्य अपने अपने स्वभावसे बिलकुल भिन्न हैं। जीवका स्वभाव अन्य है अजीवका अन्य है इनमें कभी भी एकपना नहीं होसक्ता। जीवकी जाति शुद्ध ज्ञानानद मई सिद्ध समान है। इसी स्वरूपका अनुभव आत्माको अपने कार्यका साधन करनेवाला है। ऐसा ही अनुभव करना योग्य है। जैसा–श्री देवसेनाचार्यने आराधनासारमें कहा है—

सुक्खमओ अहमेक्को सुद्धप्पाणाणदंसणसमग्गो अण्णे जे परभावा ते सव्वे कम्मणा जणिया ॥१०३॥

भावार्थ–मैं एक हूं, शुद्ध आत्मा हूं, आनन्दमई हूं, ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण हूं। अन्य जो रागादि भाव व अवस्थाएं हैं सो सर्व कर्म द्वारा पैदा होती है मेरा स्वरूप नहीं है।

सवैया २३ सा—याही वर्तमानसमै भव्यनको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्ममलसो। उदै करे भेदज्ञान महा रुचिको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसो॥ जाते थिर रहे अनुभौ विलास गहे फिरि कबहू अपना यो न कहे पुदगलसो। यह करतूती यो जुदाई करे जगतसो, पावक ज्यो भिन्न करे कंचन उपल सो॥ २३ ॥

मालिनीछंद–अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्ननुभव भवमूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहं ॥२३॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अयि मूर्त्तेः पार्श्ववर्ती भव, अथ मुहूर्त्तेः पृथग् अनुभव–अयि कहतां भो भव्यजीव, मूर्ते कहतां शरीरतहिं, पार्श्ववर्ती कहतां भिन्न सरूप, भव कहतां होहु। भावार्थ–इसौ जो अनादिकालतहिं जीव द्रव्य एक संस्काररूप चल्यो आयौ। सो जीव इसौ कहि प्रतिबोधिजे छे, जो भो जीव, एता छे जे शरीरादि पर्याय ते समस्त पुद्गल कर्मका छे, थारा नहीं। तिहितै एता पर्याय थैं आपनपो भिन्न जानि। अन्य कहतां भिन्न जानि करि, मुहूर्त्त कहतां थोरो ही काल, पृथक् कहतां शरीरतहिं भिन्न चेतन द्रव्य, अनुभव कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद करहु। भावार्थ–इसौ जो शरीर तो अचेतन छे, विनश्वर छे, शरीरतहिं भिन्न कोई तौ पुरुष छे इसौ जानपनौ इसी प्रतीति मिथ्यादृष्टि जीवहंको पनि होइ छे परि साध्यसिद्धि तौ कांई नहीं। जब जीवद्रव्यको द्रव्यगुण पर्याय स्वरूप प्रत्यक्ष

पनौ आस्वाद आवै तव सम्यग्दरान ज्ञानचारित्र छै, सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष पुनि छै। किसो छै अनुभवशील जीव, तन्वकौतूहलीसन्-तत्व कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु, तिहिकौं, कौतूहली कहता स्वरूप देख्यो चाहै छै, इसी सन् कहता होतौ सतो, अर किसी होय करि कथमपि मृत्वा-कथमपि कौन ॥ प्रकार करि कौन ॥ उपाय करि, मृत्वा कहता मरइ करि शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव करहु। भावार्थ-इसौ जो शुद्ध चैतन्यको अनुभव तौ सहज साध्य छै, जतन साध्य तौ नहीं छै। परि इतनौ कहता अत्यन्त उपादेयपनौ दिखायो। इहा कोई प्रश्न करै छै, जो अनुभव तौ ज्ञानमात्र छै तिहि करि जो कछु कार्यसिद्धि छै सो फुनि उपदेश करि ॥ कहिजे छै। येन मूर्या साकं एकत्वमोह झगिति त्यजसि-येन कहता जिहि शुद्ध चैतन्य अनुभवकरि, मूर्या कहता भावन छै द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म कर्मरूप पर्याय, साकं कहतां त्याह सौ छै, एकत्वमोह कहता एक संस्कार रूप, अह देव, अह मनुष्य, अह तिर्यंच, अह नारक, इत्यादि, अह सुखी, अह दुःखी इत्यादि, अह क्रोधी, अह मानी इत्यादि, अह यति, अह गृहस्थ इत्यादि रूप छै प्रतीति इसी छै। मोह कहता विपरीतपनौ, तिहिकौं, झगिति कहतां अनुभव होत मात्र, त्यजसि कहता भो जीव! आपणी ही बुद्धि करि तूही छाडिसे। भावार्थ-इसौ जो अनुभव ज्ञानमात्र वस्तु छै, एकत्व मोह मिथ्यात्व द्रव्यको विभाव परिणाम छै, तौ फुनि इनकहु आपुसमाहै कारण कार्यपनौ छै। तिहिकी व्यौरो-जिहिकाल जीवको अनुभव होय छ, तिहिकाल मिथ्यात्व परिणमन मिटै छै, सर्वथा अवश्य मिटै छै। जिहिकाल मिथ्यात्व परिणमन मिटै छै, तिहिकाल अवश्य अनुभवशक्ति होय छै। मिथ्यात्व परिणमन ज्यों मिटै छै त्यों कहिजे छै स्व समालोच्य-स्व कहता आपणो शुद्ध चैतन्य वस्तुकहु, समालोच्य कहता स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै आस्वाद करि। किसी छै शुद्ध चेतन, विलसंत-कहतां अनादि निधन प्रगटपनै चेतनारूप परिणवै छै ॥ २३ ॥

भावार्थ-यहां बताया गया है कि हरएक स्वहित बाछकको प्रमाद छोड़कर व हर प्रकारका पुरुषार्थ करके आत्मतत्वका रुचिवान होना चाहिये। आत्माके मननके लिये पठन व सुसगति आदि उपायोंको करना चाहिये। दो घड़ी नित्य एकांतमें बैठकर भेदविज्ञानके बलसे सर्व आत्मासे भिन्न द्रव्य, गुणपर्यायोंसे व रागादि वैभाविक भावोंसे उदासी लाकर मात्र अपने ही आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय होकर स्वात्मानुभवका अभ्यास करना चाहिये। इसी अभ्याससे अनादिकालका मिथ्यात्वमई अज्ञान मिटेगा-शुद्ध सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होगी। जो आत्मस्वतंत्रताके लिये रामबाण उपाय है। श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं-

दंसण णाणं चारित्त तह तवो य सो अप्पा। चइऊण रायदोसे आराहउ सुद्धमप्पाणं ॥ १० ॥

भावार्थ-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप ये चारों ही निश्चयसे आत्मारूप हैं। इसलिये सबसे रागद्वेष छोड़के शुद्ध आत्माकी ही आराधना करो।

तिहिकरि, पातालं कहतां अधोलोक, पिबति कहतां पीवै छे। इव कहतां इसी ऊंड़ी खाई छे। किसौ छे नगर। प्राकारकवलिताम्बरं–प्राकार कहतां कोट, तिहिंकरि कवलित कहतां निगिल्यो छे, अंबर कहतां आकाश जिहिं इसौ नगर छे। भावार्थ–इसौ जो कोट अति ही ऊंचो छे। औरु किसौ छे नगर। उपवनराजीनिगीर्णभूमितलं–उपवन कहतां नगर समीप बाग, तिहिकी राजी कहतां नगरके चहुंदिशि बाग, निगीर्ण कहतां तिहिकरि रुंध्यौ छे, भूमितलं कहतां समस्त भुइ जहां इसौ छे नगर। भावार्थ–इसौ जो नगरके बारै घनाबाग छे। इसी नगरकी स्तुति करतां राजाकी स्तुति नहीं होय छे। इहां खाई कोट बागकौ वर्णन कीयौ। सो तौ राजाकौ गुण नहीं। राजाकौ गुण छै दान पौरूष ज्ञानपनौ त्यहंकी स्तुति करतां राजाकी स्तुति होय छै।

भावार्थ–इस श्लोकसे दृष्टांत दिया है कि यद्यपि नगरकी प्रशंसासे व्यवहारसे राजाकी प्रशंसा होती है तथापि निश्चयसे नहीं होती है; क्योंकि राजाके गुण राजाके ही पास है वे उसके बाहर नहीं मिल सक्ते।

सवैया ३१ सा–ऊंचे ऊचे गढके कागुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक गीलिवेको दात दियो है॥ सोहे चहुओर उपवनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है॥ गहरी गभीर खाई ताकी उपमा बताई, नीचो करि आनन पाताल जल पियो है॥ ऐसा है नगर यामें नृपको न अग कोउ, योंही चिदानदसों शरीर भिन्न कियो है॥ २६॥

आर्या–नित्यमविकारसुस्थितसर्वांगमपूर्वसहजलावण्यं।
अक्षोभमिव समुद्रं जिनेन्द्ररूपं परं जयति॥ २६॥

खंडान्वय सहित अर्थ–जिनेन्द्ररूपं जयति–जिनेन्द्र कहतां तीर्थंकर तिहिंकौ रूप कहतां शरीरकी शोभा, जयति कहतां जयवंत होउ, किसौ छै, नित्यं–कहतां आयुपर्यंत एक रूप छै, औरु किसौ छै। अविकारसुस्थितसर्वांगं–अविकार कहतां नहीं छै विकार बालपनौ तरुणपनौ वृद्धापणौ जिहिंकै। तिहिंकरि सुस्थित कहतां समाधान छै सर्वांग कहतां सर्व प्रदेश जिहिका इसा छै। औरु किसौ छे जिनेन्द्ररूप, अपूर्वसहजलावण्यं–अपूर्व कहतां आश्चर्यकारी छै, सहज कहतां विनाही यतन किया शरीरसौं मिल्या छै लावण्य कहतां शरीरका गुण जिहिका इसौ छै। औरु किसौ छै, समुद्रमिव अक्षोभं–समुद्रमिव कहतां समुद्रकी नाईं, अक्षोभं कहतां निश्चल छै। भावार्थ–इसौ जो यथा वायु तहिं रहित समुद्र निश्चल छै तथा तीर्थंकरकौ शरीर निश्चल छै। इसौ प्रकार शरीरकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति नहीं होय छै। जिहितहि शरीरका गुण आत्माविषैं नहीं। आत्माकौ ज्ञान गुण छै। ज्ञान गुणकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति होय छै।

भावार्थ-यहां भी तीर्थंकरकी शरीरकी महिमा बताकर यह दिखाया है कि यह निश्चय स्तुति नहीं है।

सवैया ३१ सा—जामें बालपनो तरुनापो वृद्धपनो नाहिं आयु परजंत महारूप महाबल है॥ बिनाही यतन जाके तनमें अनेकगुण अतिशै विराजमान काया निरमल है॥ जैसे विन पवन समुद्र अविचलरूप तैसे जाको मन अरु आसन अचल है॥ ऐसे जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाके सुभगति महा सुकृतिको फल है॥ २७॥

दोहा—जिनपद नांहि शरीरको जिनपद चेतनमांहि।
जिनवर्णन कछु और है यह-जिनवर्णन नांहि॥ २८॥

शार्दूलविक्रीडितछन्द-एकत्वं व्यवहारतो न तु पुनः कायात्मनो निश्चया
न्नुः स्तोत्रं व्यवहारतोऽस्ति वपुषः स्तुत्या न तत्तत्त्वतः।
स्तोत्रं निश्चयतश्चितो भवति चित्स्तुत्यैव सैवं भवे
न्नातस्तीर्थकरस्तवोत्तरबलादेकत्वमात्माङ्गयोः॥ २७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-अतस्तीर्थंकरस्तवोत्तरबलात् आत्मांगयो एकत्व न भवेत्–अत कहता इहिकारणतहिं, तीथकर कहता परमेश्वर, तिहिकी स्तव कहता शरीरकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति इसी कहै यों मिथ्यामति जीव तिहिकी उत्तरु कहता शरीरकी स्तुति करता आत्माकी स्तुति नहीं। आत्माका ज्ञानगुणकी स्तुति करतां आत्माकी स्तुति छै। इसी उत्तरु तिहिंको बल कहतां गयौ छै संदेह तिहिंपकी, आत्मा कहता चेतन वस्तु। अग कहतां भावत कर्मकी उपाधि, त्यहकी एकत्व कहतां एक द्रव्यपनौ न कहतां नहीं, भवेत् कहताहोय छै। आत्माकी स्तुति ज्यों होय छै त्यों कहिजे छै। सा एव-सा कहतां जीवस्तुति, एव कहता ज्यों मिथ्यादृष्टी कहै थो त्यों नहीं। ज्यों अब कहिजे छै त्योंही छै। कायात्मनो एव हरत एकत्वं तु न निश्चयात्–काय कहता शरीरादि, आत्मा कहता चेतन द्रव्य त्यह दुवे कछु, व्यवहारत कहता कथन मात्र करि, एकत्व कहता एकपनौ छै। भावाथ–इसी यथा सुवर्ण रूपी दोऊ ओटिकरि एक रैणी कीजे छै। सो कहता तो सगळो सुवर्ण ही कहिजे छै। तथा जीव कम अनादितहिं एक क्षेत्र सबंधरूप मिल्या आया छै तिहितहिं कहतां भी जीव ही कहिजे छै, तु कहतां दूजे पक्ष, न कहता जीवकम एकपनौं नहीं। सी किसी पक्ष, निश्चयात् कहता द्रव्यका निज स्वरूपकी विचारता। भावार्थ–इसौ यथा सुवणरूपी यद्यपि एक क्षेत्र मिल्या छै, एक पिंडरूप छै। तथापि सुवण पीरी, भारी, चिकणी इसा आपणा गुण लियो छै। रूपौ पुनि आपनौ श्वेतगुण लीयां छै। तिहितैं एकपनौ कहिवौ झूठौ छै तथापि जीवकर्म यद्यपि अनादितहिं एक बंध पर्यायरूप मिल्या आया छै एक पिंडरूप छै तथापि जीवद्रव्य आपणा गुण ज्ञान विराजमान छै। कर्म पुनि पुद्गल

द्रव्य आपणा अचेतन गुण लीया छे। तिहितहि एकपनौ कहिवौ झूठौ छै। तिहिंतै स्तुति होतां भेद छै। **व्यवहारतः वपुषः स्तुत्यानुः स्तोत्रं अस्ति न तत् तत्त्वतः**-व्यवहारतः कहतां बंध पर्याय रूप एक क्षेत्रावगाह दृष्टि देखतां, वपुषः कहतां शरीरकी, स्तुत्या कहतां स्तुति करि, नुः कहतां जीवकौ, स्तोत्रं कहतां स्तुति, अस्ति कहतां होय छै, न कहतां दूजे पक्ष नही होय छै, तत् कहतां स्तोत्र किसातहिं नहीं होय छे। तत्वतः कहतां शुद्ध जीव-द्रव्य स्वरूप विचारतां। भावार्थ-इसौ यथा श्वेत सुवर्ण इसौ यद्यपि कहिवावालौ छे तथापि श्वेत गुणरूपकौ छै। तिहिंतै सुवर्ण श्वेत इसौ कहिवौ झूठौ छै। तथा "वे रत्ता ये सांवलां वे नीलुप्पलदन्न। मरगजपन्ना दोवि जिन, सोलह कंचन वन्न। भावार्थ-दो तीर्थंकर रक्त-वर्ण दो कृष्ण, दो नील दो पन्ना व १६ सुवर्णरंग हैं। यद्यपि इसौ कहिवाकौ छै। तथापि श्वेत रक्त पीतादि पुद्गल द्रव्यकौ गुण छे जीवकौ गुण न छै। तिहिंतै श्वेत रक्त पीत कहतां जीव नहीं, ज्ञानगुण कहतां जीव छै। कोई प्रश्न करै छै-शरीरकी स्तुति करता तौ जीवकी स्तुति क्यों होय छै, उत्तरु इसौ चिद्रूप कहतां होय छे। **निश्चयतः चित्स्तुत्या एव चित स्तोत्रं भवति**-निश्चयतः कहतां शुद्ध जीव द्रव्यरूप विचारतां, चित् कहतां शुद्ध ज्ञानादि तिहिंकी स्तुति कहतां वारंवार वर्णन स्मरण अभ्यास तिहिं करतां, एक कहतां निःसंदेह, चितः कहतां जीव द्रव्यकौ, स्तोत्रं कहतां स्तुति, भवति कहतां होय छे। भावार्थ-इसौ यथा पीरौ भारौ चीकणौ सुवर्ण इसौ कहतां सुवर्णकी स्वरूप स्तुति छै। तथा केवली किसा छै-इसा छै जहां प्रथमहीं शुद्ध जीव स्वरूपकौ अनुभव कहतां इंद्रिय विषय कषाय जीत्या छे पीछै मूलतिहि क्षिपाया छै। सकल कर्म क्षय कहतां केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल वीर्य, केवल सुख विराजमान छता छै, इसौ कहतां जानतां अनुभवतां केवलीकी गुणस्वरूप स्तुति होय छै, तिहिंतै इसौ अर्थ ठहरायौ जो जीवकर्म एक नहीं भिन्न २ छे। व्यौरौ-जीवकर्म एक होता तौ इतनौ स्तुति भेद किसा है होतौ।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि यदि कोई यह सुनकर जैसा कि टीकाकारने वेरत्ता आदि गाथामें कहा है कि २४ तीर्थंकरोंमेंसे दो रक्तवर्ण दो कृष्णवर्ण दो नीलवर्ण व दो हरित पन्नेके रंग व १६ सुवर्ण रंग थे, ऐसा मानने लगे कि शरीर ही आत्मा है आत्मा कोई भिन्न पदार्थ नहीं है उसके लिये यह बताया है कि शरीरकी स्तुति व्यवहारस्तुति है। व्यवहारमें एक वस्तुको दूसरे रूप कह दिया जाता है जैसे घीका घड़ा, सोनेकी तलवार। ऐसा कहनेसे मट्टीका घड़ा न घीका बना होसक्ता है न लोहेकी तलवार सोनेकी बनी होसक्ती है परन्तु घड़ेमें घीका सम्बन्ध होनेसे घीका घड़ा व तलवारमें सोनेकी म्यानका सम्बन्ध होनेसे सोनेकी तलवार ऐसा लौकिक जनोंका कहना है। इसीतरह तीर्थंकरोंकी प्रशंसामें उनके शरीरोंका व बाहरी विभूतिका वर्णन भी मात्र लौकिक व्यवहार है। तीर्थंकरकी

आत्माके साथ उनका सम्बन्ध होनेसे वे भी उसी तरह आदरणीय होजाते हैं। जैसे राजाके बैठनेसे राज्य सिंहासन, मुनिके तप करनेसे तपोभूमि। परन्तु इस स्तुतिसे तीर्थंकरोंकी आत्माकी प्रशंसा नहीं समझनी चाहिये। निश्चय व सच्ची स्तुति तब ही होगी जब यह वर्णन किया जायगा कि तीर्थंकर वीतराग, सर्वज्ञ, व अनन्त सुखी व अनन्त वीर्यवान हैं। आत्मा व शरीरका बिल्कुल पृथक्पना है। आत्मा बिलकुल शुद्ध परम वीतराग ज्ञान घन, अखण्ड व अविनाशी है। शरीर जड़, नाशवन्त, पुद्गल परमाणुओंके समुदायसे रचा है। वास्तवमें शुद्ध आत्मा ही तीर्थंकर भगवान हैं। जितने जीव हैं सब स्वभावसे शुद्ध हैं ऐसा ही योगेन्द्राचार्यने श्री परमात्मप्रकाशमें कहा है —

जीवा सयलवि णाणमय जम्मणमरणविमुक्क जीवपएसहिं सयल सम सयलवि सगुणहिं एक्क ॥२२४॥

भावार्थ-सबही जीव ज्ञानमई हैं, जन्म मरणसे रहित हैं-प्रदेशोंमें भी सब बराबर हैं व अपने सर्व गुणोंकी अपेक्षा भी सब एकरूप हैं।

सवैया ३१ सा—जामें लोकालोकके स्वभाव प्रतिभासे सब जगी ज्ञान शकति विमल जैसी आरसी ॥ दर्शन उद्योत लियो अंतराय अंत कियो गयो महा मोह, भयो परम महा ऋषी ॥ सन्यासी सहज जोगी जोगसूं उदासी जामें प्रकृति पचासी लगरही जरि छारसी ॥ सोहै घट मंदिरमें चेतन प्रगटरूप ऐसो जिनराज ताहि बन्दत बनारसी ॥ २९ ॥

कवित्त—तनु चेतन व्यवहार एकसे निहचै भिन्न भिन्न है दोई ॥ तनुकी स्तुति विवहार जीवस्तुति नियतदृष्टि मिथ्या थुति सोई ॥ जिन सो जीव जीव सो जिनवर तनु जिन एक न माने कोई ॥ ता कारण तनकी जो स्तुति, सो जिनवरकी स्तुति नाहीं होई ॥ ३० ॥

मालिनीछंद इति परिचिततत्त्वैरात्मकायैकतायां नयविभजनयुक्त्यात्यन्तमुच्छादितायाम्।
अवतरति न बोधो बोधमेवाद्य कस्य स्वरसरभसकृष्टः प्रस्फुरन्नेक एव ॥२८॥

खंडान्वय सहित अर्थ-इति कस्य बोधः बोधं अद्य न अवतरति-इति कहतां इसै प्रकार भेद करि समझाए सतें, कस्य कहता त्रैलोक्य माहे ऐसौ कौनु जीव छे जिहिकौं, बोध कहता ज्ञानशक्ति, बोधं कहता स्वस्वरूपकहु प्रत्यक्षपनें अनुभवशील, अद्य कहतां आजताइ पुन, न कहता नहीं, अवतरति कहता परिणमनशील होय। भावार्थ-इसौ जो जीवकर्मकौ भिन्नपनौ अति ही प्रगट करि दिखायो ऐसौ सुनता जिहि जीव कहु ज्ञान उपजै नहीं, तिहिकौं उलहनौ। कहतिं, किसे प्रकार भेदकरि समझाए सतें। सोइ भेद प्रकार दिखाइजे छे। आत्मकायैकतायां परिचिततत्त्वैः[1] नयविभजनयुक्त्या अत्यन्त उच्छादितायां-आत्मा कहता चेतन द्रव्य, काय कहतां कर्मपिंड तिहिंकी, एकता कहतां एकत्वपनौं। भावार्थ-इसौ जो जीवकर्म अनादि बंध पर्यायरूप एक पिंड छे, परिचिततत्त्वै कहता सर्वज्ञे, क्योंरे-परिचित कहता प्रत्यक्षपनें जाण्या छे, तत्त्व कहता जीवादि सकल

१-मात्सादितयो।

द्रव्य त्यहका गुण पर्याय, ज्यहते कहिजै परिचित तत्व, नय कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक पक्षपात, तिहिकौ विभजन कहतां विभाग भेद निरूपन, युक्त्या कहतां भिन्न स्वरूप वस्तुकौ साधिवौ, तिहिकरि, अत्यन्त कहतां अति ही निःसंदेहपनै, उच्छादितायां कहतां यथा ढांकी निधि प्रगट कीजै तथा जीवद्रव्य छतो ही छे परिकर्म संयोग करि ढांक्याकौं मरण उपजै थो सो भ्रांति परम गुरुश्री तीर्थंकरकौ उपदेश सुनतां मिटै छे, कर्मसंयोग तहिं भिन्न शुद्ध जीव स्वरूपकौ अनुभव होय छै, इसौ अनुभव सम्यक्त छे। किसौ छे बोध, स्वरस रभसकृष्टः–स्वरस कहतां ज्ञान स्वभाव तिहिको रभस कहतां उत्कर्ष अति ही समर्थपनौ तिहिकरि कृष्ट कहतां पूज्य छे, औरु किसौ छे, प्रस्फुटन् कहतां प्रगटपनै छे, औरु किसौ छे, एक्क एव–एक कहतां चैतन्यरूप, एव कहतां निहचाइसौ छे।

भावार्थ–यहां बताया है कि सर्वज्ञ भगवानने व उनके द्वारा परम गुरुओंने जब द्रव्यार्थिक नय व पर्यायार्थिक नयसे आत्माका व अनात्माका भिन्न २ स्वरूप बता दिया तब कौन ऐसा मूर्ख है जिसके हृदयमें भेदज्ञान न पैदा होवे और स्वानुभवकी प्राप्ति न होजावे ? जैसे किसीके घरमें निधि गड़ी थी उसको पता न था, किसी जानकारने दया करके उसको पता बता दिया तब वह क्यो नहीं खोदकर अपनी निधिको देखेगा व पाकर प्रसन्न होगा ? इसी तरह श्री गुरुके द्वारा समझाए जानेपर अवश्य आत्माका सच्चा स्वरूप हृदयमें झलक जायगा तब यह स्पष्ट रूपसे अनुभव होगा कि मैं एक शुद्ध परमज्ञान ज्योतिमय अविनाशी आत्मद्रव्य हूं जैसा श्री देवसेनाचार्य आराधनासारमें कहते हैं—

णिच्चो सुक्खसहावो जरमरणविवज्जिओ सयारूवी णाणी जम्मण रहिओ इक्कोह केवलो सुद्धो ॥ १०४ ॥

भावार्थ–मैं अविनाशी, सुख स्वभाव मई, जन्म जरा मरण रहित, सदा ही अमूर्तिक ज्ञान स्वरूप असहाय, एक शुद्ध पदार्थ हूं।

सवैया ३३ सा—ज्यों चिरकाल गड़ी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूठी ॥ कोउ उखारि धरे महि ऊपरि, जे दृगवंत तिने सब सूठी ॥ त्यों यह आतमकी अनुभूति, पडी जड़भाव अनादि अरूझी ॥ नै जुगतागम साधि कही गुरु, लक्षन वेदि विचक्षण बूझी ॥ ३१ ॥

मालिनीछंद–अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥२९॥

खंडान्वय सहित अर्थ–इयं अनुभूतिः तावत् झटिति स्वयं आविर्बभूव–इयं कहतां विद्यमान छे, अनुभूति कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुकौ प्रत्यक्षपनै जानपनौ, तावत् कहतां तितनै काल वांई, झटिति कहतां तेही समय, स्वयं कहतां सहज ही आपनै ही परिणमन रूप, आविर्भूव कहतां प्रगट हुई। किसी छे अनुभूति, अन्यदीयैः सकलभावैः विमुक्ता–अन्य कहतां शुद्ध चैतन्यस्वरूप तहिं भिन्न छे। ये द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म तिहि

र्भचा छे। जावत सकलभावे, सकल कहता जावत छे गुणस्थान मार्गणास्थान रूप राग द्वेष मोह इत्यादि अति बहुत विकल्प छे, इसा जे भाव कहता विभाव रूप परिणाम तिहिं करि विमुक्त कहता सर्वथा रहित छे। भावार्थ-इसो जो जावत छे विभाव परिणाम विकल्प अथवा मन वचन उच्चार करि द्रव्य गुण पर्याय भेद, उत्पाद व्यय ध्रौ अभेद तिहिं विकल्प तेहिं रहित शुद्ध चेतना मात्रको आस्वाद रूप ज्ञान तिहिंको नाम अनुभव कहिजे छै। सो अनुभव ज्यों होय छै त्यों कहिजे छै। यावत् अपरमात्र यात्सद्यावद्' द्य असन योगात् अनवतर्ति न अवतरति। यावत् कहता जेतेकाल तिहिंकाल अपर कहता शुद्ध चैतन्य मात्र तिहिं भिन्न छै जे समस्त भाव कहता द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म तिहिंको त्याग कहतां समस्त त्याग छे, जीवको स्वरूप नहीं छै इसो प्रत्यक्षपनें आस्वादरूप ज्ञान तिहिंको दृष्टांत कहता कोई पुरुष धोबीका घर तिहिं आगणा वस्त्रके धोवे परायो वस्त्र आयो त्योंही बिना चौंप कीया पहेर करि आपनी मानयो पछे न कोई यो वस्त्रको धणी नेहनै अगुलि पकड़ करि इसो कहयो जो यह तो वस्त्र म्हारो छै और कह्यो म्हारो ही छै। इसो सुनतां तेन चीन्हा, देख्या, जानौ, म्हारो तो चीन्हा मिल्या नहीं। तिहिंनैं निहचामायौ वस्त्र म्हारो तो नहीं परायो छै, इसो प्रतीति होता त्याग हुओ घटे छे। वस्त्र पहरा ही छै तथापि त्याग घटे छे। सिर्दिते स्वामित्वपनो छुट्यो। तथा अनादिकाल तहिं जीव मिथ्यदृष्टी छे तिहिंते कर्म संयोग जनित छै। जे शरीर दुःख सुख रागद्वेषादि विभाव पर्याय त्या हैं अपुनौही करि मानें छे और तेही रूप प्रवर्ते छ। हेय उपादेय न हीं जानें छे। इसो प्रकार अनंतकाल भमता थोरो संसार आनि रहे और परम गुरुको उपदेश पावै। उपदेश इसौ जो भो जीव एता छै जे शरीर सुख दुःख राग द्वेष मोह ज्यह यौं तू आपनी करि जानें छ और रत हुओ छे ते तौ सगला ही पारा नहीं। अनादि कर्मसंयोगको उपाधि छे इसौ वारवार सुनता जब वस्तुको विचार उपज्यो, जो जीवको लक्षण तो शुद्ध चिद्रूप छे, तिहित इतनो उपाधि तो जीवको नहीं। कर्म संयोगको उपाधि छे। इसो निश्चो जिहिं काल आयो तिहिं काल सकल विभावभावको त्याग छे शरीर सुख दुःख ज्योंही था त्योंही छे परिणामइ करि त्याग छे। तिहिं स्वामित्वपनें छुट्यो, इहिको नाम अनुभव छै, इहिको नाम सम्यक्त छै। इसा दृष्टांतको नाम ऊर्जी छे, दृष्टि कहता शुद्ध चिद्रूपको अनुभव तिहिंको इसो छै कोई जीव जनव कहता अनादिकाल तहिं चली आई छे, वृत्ति कहता कर्मपर्याय सों एकत्वपनो संस्कार न कहता नहीं अवतरति कहतां प्रगट परिणवे छे। भावार्थ इसो जो कोई जानिसे जेता छे शरीर सुख दुःख रागद्वेष मोह स्वरूपको त्यागबुद्धि किसु अन्य छे कारणरूप छै, शुद्ध चिद्रूपमात्रको अनुभव किछु अन्य छे कार्यरूप छे। तीहिं प्रति उत्तर इसो जो रागद्वेष मोह शरीर सुख दुःखादि

विभाव पर्यायरूप परिणंत्र थो जीव, जेही काल इसौ अशुद्ध परिणमन संस्कार छूट्यो तेंही काल इहिंकौ अनुभव छे। तिहिकौ व्यौरो–जो शुद्धचेतना मात्रकौ आस्वाद आया पाछैं अशुद्ध भाव परिणाम छुटे नहीं। औरु अशुद्ध संस्कार छुट्यो पाछै शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव होय नहीं। तिहि तै जो कयौं छे सो एक ही काल, एक ही वस्तु एक ही ज्ञान, एक ही स्वादु छे, आगे जिहकौं शुद्ध अनुभव छे सो जीव जिसो छे तिसौही कहिजै छे ॥२९॥

भावार्थ–यहां यह झलकाया है कि जिस समय शुद्ध आत्मस्वरूपसे भिन्न रागादि भावोंको, द्रव्यकर्मोंको व शरीरादिको पहचाना जाता है उसी समय अपने स्वरूपका सच्चा सच्चा श्रद्धान ज्ञान व अनुभव होजाता है। जैसे अंधकारके अभाव व प्रकाशके सद्भावका एक समय है, वैसे अज्ञान व मिथ्यात्वके हटनेका व सच्चे ज्ञान व सम्यक्त भावके उपजनेका एक ही समय है। यद्यपि परसे एकत्वकी बुद्धि अनादिकालसे चली आरही है परंतु एक दफे भी अपने असल स्वभावकी पहचान हुई कि वह झट मिट जाती है। जैसे अंधेकी आंख खुल जाती है वैसे उसकी भेद ज्ञानकी आख खुल जाती है। यह अपना जीव अभी कर्मोंके मध्य व शरीरके मध्य व कर्मजनित अवस्थाओंके मध्य बैठा है तौभी ज्ञान चक्षुद्वारा यह अपना जीव विलकुल भिन्न शुद्ध चैतनामात्र झलक जाता है–स्वात्मानुभव होजाता है तब ही परका स्वामित्व मिट जाता है। अपने स्वरूप रूपी धनका स्वामीपना दृढ़ होजाता है। उस समय यह निश्चयज्ञान पैदा होजाता है जैसा श्री आराधनासारमें कहा है–

णय अत्थि कोवि वाहीण य मरण अत्थि मे विसुद्धस्स। वाही मरण काए तम्हा दुक्खं ण मे अत्थि ॥१०२॥

भावार्थ–मैं शुद्ध स्वरूप सदा रहनेवाला हूं न मुझे कोई रोग होता है न मेरा मरण होता है, यह रोग व मरण तो शरीरमें है इसलिये मुझे कोई दुःख नहीं है, मैं सदा आनन्दमई हूं।

सवैया ३१ सा—जैसे कोऊ जन गयो धोबीके सदन तिनि, पहर्यो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है। धनी देखि कह्यो भैया यह तो हमारो वस्त्र, चीन्हो पहचानत ही त्यागभाव लह्यो है॥ तैसे ही अनादि पुद्गल सों संजोगी जीव, संगके ममत्व सों विभाव तामें बह्यो है। भेद ज्ञान भयो जब आपो पर जान्यो तब, न्यारो परभावसों सुभाव निज गह्यो है॥

दोटकछंद–सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकं।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥ ३० ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–इह अहं एकं च स्वयं चेतये–इह कहता विभाव परिणाम छूट्या छे, अहं कहतां हौं छौं जो अनादि निधन चिद्रूप वस्तु, एकं कहतां समस्त भेद बुद्धि तिहिं रहित शुद्ध वस्तु मात्र इसौ छे, स्वं कहता शुद्ध चिद्रूप मात्र वस्तु निहिं, स्वय कहतां परोपदेश विना ही अपुनवै स्वसंवेदन प्रत्यक्ष रूप, चेतये कहता हम हे, फुनि इसी स्वादु

आवे छे। किसौ छे शुद्ध चिद्रूप वस्तु। सकल स्वरसनिर्भरभाव–सकल कहता असंख्यात प्रदेशनि विषे, स्वरस कहता चेतनपनौ, तिहिकरि निर्भर कहता सम्पूर्ण छै, भाव कहता सर्वस्व जिहिको इसौ छै। भावार्थ–इसौ जो कोई जानिसे जिनसिद्धांतको बारबार अभ्यास करतां दृढ़ प्रतीति होय छै तिहेको नाम अनुभव छै सो यौनो नहीं–मिथ्यात्व कर्मको रस पाक मिटता मिथ्यात्व भावरूप परिणमन मिटै छै तब वस्तुस्वरूपको प्रत्यक्षपने आस्वाद आवे छे तिहिको नाम अनुभव छै। और अनुभवशील जीव ज्यौं अनुभवै छै त्यौं कहिजै छै। मम कश्चन मोहो नास्ति नास्ति–मम कहता म्हारे, कश्चन कहता द्रव्यपिंडरूप अथवा जीव सम्बन्धी भाव परिणमनरूप मोह कहता सकल विभावरूप अशुद्ध परिणाम, नास्ति नास्ति कहता सर्वथा नाहीं नाहीं–इसौ ही जिसौ छै तिसौ कहिजै छै। शुद्ध नाहीं, चिद्घनमहोनिधिरस्मि–शुद्ध कहता समस्त विकल्प तहिं रहित इसौ, चित् कहता चेतनपनौ तिहिकौ, घन कहता समूह इसौ जे महः कहता उद्योत तिहिकौ निधि कहता समुद्र, अस्मि कहता इसौ हौं छौं। भावार्थ–इसौ जो कोई जानिसे सबहीको नास्तिपनौ होय छै। तिहितै इसौ कह्यो जो शुद्ध चिद्रूप मात्र वस्तु छतो छ॥

भावार्थ–इसका भाव यह है कि भेदज्ञानी जब आत्माका अनुभव करता है तब उसके भीतर शुद्ध आत्मीक स्वरूपका स्वाद ही आता है उसको यह झलकता है कि न मोहनीय कर्म न रागादि मोहभाव अन्य विकल्प मेरा स्वभाव है, मैं तो ज्ञानानन्द मय एक अखंड पदार्थ शांतरससे परिपूर्ण हूं। इसी दशाका वर्णन आराधनासारमें है–

गुणजलावर्तो सोऽहं समतारसपूर्णगर्भो । परमानन्दो सोऽहं निराकारो शुद्ध ह्वा ॥ ७७ ॥

भावार्थ–जो योगी शुद्ध निर्विकल्प ध्यानमें प्रवेश करता है अर्थात् स्वानुभव करता है वह अपने आत्मीक स्वभावरूपी सुखमें मगन होता हुआ गुणरूपी पूर्ण कलशकी तरह परमानन्दसे भरा हुआ होता है।

सवैया इकतीसा–कहै विचक्षण पुरुष सदा हूं एक हौं। अपने रससूं भर्यो आपही टेक हौं॥
मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमकूप है। शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ॥ ३१ ॥

मालिनीछंद–इति सति सह सर्वैरन्यभावैर्विवेके स्वयमयमुपयोगो बिभ्रदात्मानमेकं।
प्रकटितपरमार्थैर्दर्शनज्ञानवृत्तैः कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः ॥ ३१ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–एव अयं उपयोग स्वयं प्रवृत्त –एव कहतां निश्चयसौ, अनादि निधन छे अयं कहता यह उपयोग कहतौ जीवद्रव्य, स्वयं कहतां शुद्ध पर्याय रूप जैसो द्रव्य हुतौ तैसो, प्रवृत्त कहता प्रगट हुओ। भावार्थ–इसौ जो जीवद्रव्य शक्ति रूप तो शुद्ध थो परि कर्म संयोगतैं अशुद्धरूप परिणयौ थो अशुद्धपनाकै गया जिसौ थो तिसौ हुओ, किसौ होता शुद्ध हुओ। इति सर्वैरन्यभावैः सह विवेके सति–

इति-कहता पूर्वोक्त प्रकार, सर्वैः कहता शुद्ध चिद्रूप मात्र तहि भिन्न छे, जावंत समस्त इसा छे जे, अन्य भावैः कहतां द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, सह कहता त्यइ सौ, विवेके कहता शुद्ध चेतन्य तहिं भिन्नपनौ, सति कहता होत सते। भावार्थ-इसौ, यथा सुवर्णका पन्ना पकाए तहिं, कालिमा गया थै सहज ही सुवर्णमात्र रहे छे तथा मोह रागद्वेष विभाव परिणाम मात्रके गए सते सहज ही शुद्ध चेतन मात्र रहे छे। किसौ होतो सतो प्रगट होय छे जीव वस्तु, एकं आत्मानं विभ्रत्-एकं कहता निर्भेद निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु इसौ छे। आत्मान कहता आत्मस्वभाव तिहिकौ, बिभ्रत् कहता तिहिंरूप परिणयौ छे। और किसौ छे आत्मा-दर्शनज्ञानवृत्तैः कृतपरिणतिः-दर्शन कहता श्रद्धा रूचि प्रतीति, ज्ञान कहता जानपनौ, चारित्र कहतां शुद्ध परिणति, इसो जो रत्नत्रय तिहिसौं, कृत कहतां कीना छे, परिणति कहता परिणमन जिहि इसौ छे। भावार्थ-इसौ जो मिथ्यात्वपरिणतिकौ त्यागु होतां शुद्ध स्वरूपकौ अनुभव होतां साक्षात रत्नत्रय घटे छे। किसा छे दर्शन ज्ञान चारित्र, प्रकटितपरमार्थैः-प्रकटित कहतां प्रगट कियौ छे, परमार्थ कहता सकल कर्म क्षय लक्षण मोह जयह इसा छे। भावार्थ-इसो जो "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" इसौ कहिवौ तो सर्व जैन सिद्धांत मांहि छे। औरु योही प्रमाण छे। औरु किसौ छे शुद्ध जीव-आत्मारामं-आत्मा कहतां अपुनपौ सोई छे। आराम कहतां क्रीड़ावन जिहिकौ इसौ छे। भावार्थ-इसौ जो अशुद्ध अवस्था चेतन पर सहु परिणवै थो। सो तौ मिटयो। साम्प्रत स्वरूप परिणमन मात्र छे।

भावार्थ-यहां कहा है कि जब सब प्रकार आत्मासे भिन्न जो भाव है उनसे भेदविज्ञान होजाता है तब अपने आत्माके ज्ञानमें आप एक आत्मा ही झलकता है। अर्थात एक आत्मा ही अनुभव गोचर होता है। उस अनुभवरसमें निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों ही गर्भित है। इसीसे स्वानुभव मोक्ष मार्ग है। तब आत्मा अपने ही आत्मारूपी उपवनमें रमण करके आनन्द लिया करता है। दूसरा अर्थ यह होसक्ता है कि इस तरह स्वानुभव करते करते सर्व विभावोंसे व परद्रव्योंसे छूटकर यह आत्मा परमात्मा होजाता है तब सदाकाल आप आपमें ही कल्लोल किया करता है। स्वानुभव ही ध्यानकी अग्नि है। जैसा आराधनासारमें है:-

लवणव्व सलिलजोए झाणे चित्तं विलीयए जस्स। तस्स सुहासुहडहणो अप्पा अणलो पयासेइ ॥८४॥

भावार्थ-जैसे पानीमें निमक घुल जाता है उसी तरह जिसका चित्त आत्मध्यानमें लय होजाता है उसीके वह ध्यानाग्नि पैदा होती है जो शुभ व अशुभ कर्मोंको जला देती है।

सवैया ३१ सा—परकी प्रीतिसौं न्यारो है निजगुण, दृग ज्ञान चरन त्रिविधी परिणयो है। [illegible] विमल [illegible], आतमीक आतमो [illegible] मोखि [illegible] है ॥ कहत

बनारसी सहज पुण्यात्मको सहज सुभावसों विभाव मिटि गयो है । जैसे पवन जल कंचन विमल होत तैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है ।

उपेन्द्रवज्रछंद–मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोका आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः ॥ ३२ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–एष भगवान् प्रोन्मग्न एष कहता सदाकाल प्रत्यक्षपने छै चेतन स्वरूप इसौ, भगवान कहता जीवद्रव्य, प्रोन्मग्न कहता शुद्धांग स्वरूप दिखाय करि प्रगट हुओ । भावार्थ–इसौ जो इहि ग्रंथको नाम नाटक कहता अखाडे तहां पुनि प्रथम ही शुद्धांग नाचै छै तथा यहां पुनि प्रथम ही जीवको शुद्ध स्वरूप प्रगट हुओ । किसौ छै भगवान् । अवबोधसिंधु–अवबोध कहता ज्ञान मात्र तिहिको, सिन्धु कहता पात्र छै । अखाडा विषै पुनि पात्र नाचै छै यहां पुनि ज्ञानपात्र जीव छै । ज्यों प्रगट हुओ त्यों कहिजे छै । भरेण विभ्रमतिरस्करिणीं आप्लाव्य भरेण कहता मूल तहिं उखाडि दूर कीनी सो कौन विभ्रम कहता विपरीत अनुभव मिथ्यात्वरूप परिणाम सोई छै, तिरस्करिणी कहता शुद्ध स्वरूप आच्छादन शील अंतर्जवनिका तिहिको आप्लाव कहता मूल तहिं दूरिकरि । भावार्थ–इसौ जो अखाडा विषै पुनि प्रथमही अन्तर्जवनिका कपडाको होय छे तिहे दूरिकरि शुद्धांग नाचै छै । इहां पुनि अनादिकाल तहिं मिथ्यात्व परिणति छै तिहिके छूटता शुद्ध स्वरूप परिणवै छै । शुद्ध स्वरूप प्रगट होता जो क्यों छै सोइ कहिजे छै । अमी समस्तलोका शांतरसे सममेव मज्जन्तु अमी कहता विद्यमान छै । जे समस्त कहता त्रावत, लोका जीवराशि, शांतरसे कहता अतींद्रिय सुख गर्भित छै । शुद्ध स्वरूपको अनुभव तिहि विषै, सममेव कहता एक ही बार ही, मज्जन्तु कहता मग्न होहु तन्मय होहु । भावार्थ–इसौ जो अखारे विषै पुनि शुद्धांग दिखावै छै तहां जेता केता देखनहारा एक ही बार मग्न होइ देखहि छै तथा जीवको स्वरूप शुद्धरूप दिखावो हातो सर्व ही जीवहिको अनुभव करिवा योग्य छै । किसो छे शांत रस आलोकमुच्छलति आलोक कहता समस्त त्रैलोक्य महि उच्छलति कहता सर्वोत्कृष्ट छे, उपादेय छे अथवा लोकालोकको ज्ञाता छे, अनुभव ज्यों छै त्यों कहिजे छै । निर्भर–कहता अति ही मग्नपनो छै ।

भावार्थ–इस श्लोकका यह भाव है कि जैसे कोई नाटकमें कोई खेलनेवाला पात्र किसी श्रृंगार या वीर रसको ऐसा दिखाता है कि सारी सभा मुग्ध होजाती है । वह पात्र पहले परदेको हटाकर बाहर आता है तब सभा उसके मनोहर रूपको देखकर प्रसन्न होजाती है । वैसे ही आचार्यने इस अध्यात्म नाटक समयसारमें भगतके लोगोंके सामने जो मिथ्या त्वका परदा पड़ा था जिसके कारण शुद्धात्माका दर्शन नहीं होता था उसको हटाकर

१–परदा । २–मग्नकर्ता पद ।

सर्व प्रकार अशुद्धतासे रहित परम शुद्ध ज्ञाता दृष्टा आत्माका असली स्वरूप यकायक दिखा दिया। तथा उस शुद्धात्माके स्वरूपमें ऐसा शांत रस भरा है कि वह समस्त लोकमें फैल गया है। इसलिये सर्व लोक भी इस ही शात रसके आनदको लेकर तृप्त होवें। कहनेका तात्पर्य यह है कि शुद्धात्मानुभव करते ही अपने भीतर ज्ञानमय परमात्माका दर्शन होजाता है और ऐसा अनुपम शांत भाव झलकता है कि फिर उसको सर्वत्र शांति ही शांति मालूम होती है। ऐसा स्वात्मानुभव हरएकको करके परमानंदका लाभ लेना चाहिये। इस नाटक समयसार ग्रन्थके द्वारा मिथ्यात्वका परदा दूर करना चाहिये। वास्तवमें शुद्धात्माके समान और कोई सुन्दर वस्तु नहीं है। जैसा परमात्मप्रकाशमें कहा है:—

अप्पा मिल्लिवि णाणियहं अण्णु ण सुन्दरु वत्थु। तेण ण विसयहंमणु रमइ जाणतह परमत्थु ॥२०४॥

भावार्थ—ज्ञानियोंको आत्माके सिवाय और कोई वस्तु सुन्दर नहीं भासती है, इसी लिये परमार्थको अनुभव करते हुए उनका मन विषयोंमें नही रमता है।

सवैया ३१-सा—जैसे कोउ पातर वनाय वस्त्र आभरण, आवत आखारे निसि आडोपट करिके ॥ दुहओर दीवटि सवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोक देखे दृष्टि धरिके ॥ तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेदि करी, उमग्यो प्रगट रह्यो तिहु लोक भरिके ॥ ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगत जीव, शुद्धता संभारे जग जालसों निकरिके ॥ ३५ ॥

इति श्री नाटक समयसार कलसा राजमल्लि टीकाको जीवद्वार समाप्त। इति प्रथमो अध्याय।

अजीव अधिकार ॥ २ ॥

मालिनीछंद—जीवाजीवविवेकपुष्कलदृशा प्रत्याययत्पार्षदा—
नासंसारनिबद्धबन्धनविधिध्वंसाद्विशुद्धं स्फुटत ॥
आत्मारामनन्तधाममहसाध्यक्षेण नित्योदितं।
धीरोदात्तमनाकुलं विलसति ज्ञानं मनोह्लादयत ॥ १ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानं विलसति—ज्ञानं कहता जीव द्रव्य, विलसति कहता जिसौ छे तिसौ प्रगट होय छे। भावार्थ—इसौ जो विधिरूप करि शुद्धांग तत्वरूप जीव निरूप्यो सोई जीव प्रतिषेध रूप कहिजे छे। तिहिको ब्यौरो—शुद्ध जीव छे, टंकोत्कीर्ण छे, चिद्रूप छे इसौ कहिवौ विधि कहिजे छे। जीवको स्वरूप गुणस्थान नहीं, कर्म नोकर्म जीवका नहीं, भावकर्म जीवका नहीं, इसौ कहिवौ प्रतिषेध कहिजे। किसौ होतो ज्ञान प्रगट होय छे। मनो आल्हादयत्—मनः कहता अंतःकरणेंद्रिय तिहिकौं, आल्हादयत् कहता आनन्द करतो संतो। और किसौ होतो। विशुद्धं—कहता आठ कर्म नहि मिलतके स्वरूप सहु परिणयो छै। और किसौ होतो, स्फुटत्—कहतां स्व

भेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी, सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है॥ करमको नाश करि अनुभौ अभ्यास धरि, हियेमें हरखि निज उद्धता संभारी है॥ अंतराय नाश गयो शुद्ध परकाश भयो, ज्ञानको विलासताकों वंदना हमारी है॥ २॥

मालिनीछंद-विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकं। हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः॥२॥

खंडान्वयसहित अर्थ-विरम अपेरण अकार्यकोलाहलेन किं-विरम कहतां भो जीव विरक्त होहु हठांत मति करहि, अपरेण कहतां मिथ्यात्वरूप छे, अकार्य कहतां कर्मबंध कहुं करहि छे, इसो जे, कोलाहलेन कहतां झूठा विकल्प तिहिंको व्यौरो-कोई मिथ्यादृष्टी जीव शरीर कहु जीव कहै छे, केई मिथ्यादृष्टी जीव आठ कर्म कहु जीव कहैं छै, केई मिथ्यादृष्टी जीव रागादि सूक्ष्म अध्यवसाय सो जीव कहै छे-इत्यादि नाना प्रकार बहुत विकल्प करे छे। भो जीव ते समस्त ही विकल्प छोडि, जातहि झूठा छे। निभृतः सन् स्वयं एकं पश्य-निभृत कहतां एकाग्ररूप, सन् कहतां होतो संतो, एकं कहता शुद्ध चिद्रूप मात्र, स्वय कहतां स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै, पश्य कहता अनुभव करहु। षण्मासं-कहतां विपरीतपनों ज्यों छुटे त्यौंही छोडि करि। अपि-कहतां वारंवार बहुत कहा कहैं। इसौ अनुभव करतां स्वरूप प्राप्ति छे। इसौ कहिजै छे। ननु हृदयसरसि पुंसः अनुपलब्धिः किं भाति-ननु कहतां भो जीव, हृदय कहतां मन सोई छे, सरसि कहतां सरोवर तिहि विषै छे। पुंसः कहतां जीवद्रव्य तिहिकी, अनुपलब्धि: कहतां अप्राप्ति। कि भाति कहतां शोभै छै कां यौ। भावार्थ-इसौ जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव करतां स्वरूपकी प्राप्ति न होय योंतो नहीं च उपलब्धिः-च कहतां छे तो यों छै उपलब्धिः कहतां अवश्य प्राप्ति होय, किसौ छे पुंसः। पुद्गलात् भिन्नधाम्नः-पुद्गलात् कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म तिहिं तिहिं भिन्न छे चेतनरूप छे, धाम कहंता तेजपुंज जिहिंको इसौ छे।

भावार्थ-यहां कहा है कि हे भाई! तू बहुत बकवादमें न पड़, वृथा ही समय व शक्तिको खोना है जिससे कर्मका बंध करता है। आत्माका स्वरूप तो जैसा श्री गुरुने चेतनरूप बताया है सो ही है। यह कभी भी शरीररूप व कर्मरूप व रागादिरूप नहीं होसक्ता है। यदि तुझे आत्माका लाभ करना है तो तुझे कहीं दूर नहीं जाना है। तेरे ही घटरूपी सरोवरमें वह चेतनराम परम परमात्मा विराजमान है। यदि तू छ: मास या कम व अधिक कालतक नित्य सब ओरसे मुह मोड़ अपने ही शुद्ध चेतन स्वरूपसे नाता जोड़ व अन्य सबसे उपयोगको तोड़नेका अभ्यास करेगा तो तेरेको अवश्य अवश्य अपने ही शुद्ध ज्ञान चेतनधारी आत्माका दर्शन हो जायगा। जो लोग बहुत बकबक करते हैं व शास्त्रोंको उलटते पलटते हैं परन्तु आत्माका अभ्यास निश्चिन्त होकर नहीं करते

हैं उनको कभी भी आत्मराम नहीं होसक्ता है। आत्मध्यान ही आत्माका स्वरूप प्रगट करनेवाला है, सोही नित्य कर्तव्य है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

अप्पा झायहि णिम्मलउ किं बहुए अण्णेण। जो झायंतहं परमपउ लब्भइ एक्कखणेण ॥९८॥

भावार्थ-तू अपनी निर्मल आत्माका ध्यानकर जिसके ध्यानसे क्षणमात्रमें परमपदकी प्राप्ति होती है। अन्य बहुत विकल्पोंसे क्या मतलब।

सवैया ३१ सा—भेद ज्ञानकी तू अभ्यासी कैसे आतमको ... महीमा ... मेरा लाल रे। औरे चञ्चल विकल्प विचार तजि बैठिके एकांत मन ... होय अन र ॥ तो घट प्राप्ति तेरो कमल खाइ, तुही मधुकर ह सुवास पहिचान रे। प्राप्ति न ... है कछु ऐसा तू बखानत है यही यह है प्राप्ति करत थोरी जान रे ॥३॥

अनुष्टुप्छंद-चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयं।

अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥ ३ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-अयं जीव इयान्–अयं कहता विद्यमान छे जीव कहतां चेतनद्रव्य इयान् कहता इतनो ही छे, किसो छे चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसार'–चिच्छक्ति कहतां चेतना मात्र तिहिंमों, व्याप्त कहता मिल्यो छे सर्वस्वसार कहता दर्शन ज्ञान चारित्र सुख वीर्य इत्यादि अनन्तगुण जिहिके इसो छे। अमी सर्वे अपि पौद्गलिका भावा अतः अतिरिक्ता'–अमी कहता विद्यमान छे, सर्वे अपि कहता द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रूप भावत छे, तावत पौद्गलिका कहता अचेतन पुद्गल द्रव्य तहिं उपज्याछे। इसा जे भावा अशुद्ध रागादि विभाव परिणाम ते समस्त अतः कहता शुद्ध चेतना मात्र जीववस्तु तहिं, अतिरिक्ता कहतां अति ही भिन्न छे। इसा जानवो नाम अनुभव कहिजे।

भावार्थ यहां बताया है कि जब कोई आत्मार्थी निश्चिंत होकर अनुभव करे तब उसे यह अनुभव करना चाहिये कि मेरा आत्मा चैतन्य शक्तिका धारी है, जिसमें सब ही सार गुण विद्यमान हैं। मैं अनन्त सुखी हूं, मैं अनन्त बलधारी हूं मैं परमवीतराग हूं, मेरे शुद्ध आत्माके शुद्ध गुणोंको छोड़कर अन्य सब ही अशुद्धभाव व जो जो कुछ सूक्ष्म व स्थूल शरीरका मेरे साथ सम्बन्ध है व सब मेरेसे भिन्न अचेतन जड़ पदार्थसे रचे होनेके कारण मुझसे अत्यंत भिन्न हैं। श्री नागसेन मुनि तत्वानुशासनजीमें कहते हैं—

न स्थोऽहं न कृशो न ... [illegible] ... किंतु चिन्मात्रम् ॥ ५ ॥
[illegible] ... ॥ १ ॥

भावार्थ–न मैं स्थूल हूं, न मैं कृश हूं, न मैं मनुष्य हूं न मैं देव हूं न मैं ब्राह्मण हूं, न मैं मोटा हूं, न पतला हूं, किन्तु मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं ऐसा विचार निर्मोह एवं ममत निरहंकार भाव है। यही भाव शुद्धचैतन्य स्वरूपके लाभका एक उत्कृष्ट उपाय है।

दोहा—चेतनवंत अनंत गुण, सहित सु आतमराम। याते अनमिल और सब पुद्गलके परिणाम ॥४॥

मालिनीछंद—सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रं। इममुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात् कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनन्तं ॥४॥

खंडान्वय सहित अर्थ—आत्मा आत्मनि इम आत्मानं कलयतु—आत्मा कहतां जीवद्रव्य, आत्मनि कहतां अपने विषै, इमं आत्मान कहतां आपकहुं, कलयतु कहतां निरंतरपनें अनुभवहु, किसौ छे आत्मानं। विश्वस्य साक्षात उपरि चरंतं—विश्वस्य कहतां समस्त त्रैलोक्यमांहि, उपरि चरत कहतां सर्वोत्कृष्ट छे, उपादेय छे, साक्षात् कहतां योंही छे, बडाई करि नहीं कहिजै छै। औरु किसौ छे। चारु कहतां सुख स्वरूप छे, औरु किसौ छे। परं कहता शुद्ध स्वरूप छे, औरु किसौ छे। अनंत कहतां शास्वतो छे। ज्यों अनुभव होय त्यो कहिजै छै। चिच्छक्तिरिक्तं सकलं अपि अन्हाय विहाय—चिच्छक्ति कहतां ज्ञान गुण तिहि तहि रिक्त कहतां शून्य छै, इसाजो सकलं अपि कहतां समस्त द्रव्यकर्म्म भावकर्म्म नोकर्म्म तिन कहु, अन्हाय कहतां मूलतहि, विहाय कहता छोडि करि। भावार्थ—इसौ जो जेता केता कर्म्म जाति छै तेता समस्त हेय छै। तिहि माहि कोई कर्म्म उपादेय न छै। और अनुभव ज्यौ होय त्यौं कहिजै छै। चिच्छक्तिमात्रं स्वं च स्फुटतरं अवगाह्य चिच्छक्ति कहतां ज्ञानगुण तिहिं, मात्रं कहतां सोई छै स्वरूप जिहिंकौ इसौ, स्वं च कहतां आपुणपौ तिहिंकौ, स्फुटतरं कहता प्रत्यक्षपनें, अवगाह्य कहतां आस्वाद करि। भावार्थ-इसौ जो जावत विभाव परिणाम छै। तावंत जीवका नहीं, शुद्ध चैतन्य मात्र जीव इसौ अनुभव कर्तव्य छै।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि स्वानुभव करनेवालेको उचित है कि एक अपने द्रव्यस्वरूपको शुद्धस्वरूप रूप जानकर उसीके स्वादमें डूब जावे, अपने आत्मद्रव्यको समस्त द्रव्योंमें सार समझे तथा अपनेसे भिन्न सर्वही जगतके द्रव्य गुण पर्यायोंको व अपनेमें भी परद्रव्यके निमित्तसे होनेवाले विभावभावोंको त्याग करे। आप ही आपमें आपको देखे जाने, श्रद्धे व भावे व तनमय होजावे। जैसा नागसेन मुनि तत्वानुशासनमें कहते हैं—

जीवादिद्रव्ययाथात्म्यज्ञातात्मकमिहात्मना, पश्यन्नात्मानमुदासीनोस्मि वस्तुषु ॥[illegible]॥

भावार्थ-मैं अपने हीमें अपनेमें जीवादि वस्तुओंको यथार्थ जाननेवाले अपने ही यथार्थ आत्माको जैसेका तैसा अनुभव करता हुआ सर्व परवस्तुओंसे उदासीन हूं, यह अनुभवका उदय है।

कवित्त—जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसौं निज मर्म। तब सुखरूप विमल अविनाशिक, जानै जगत शिरोमनि धर्म ॥ अनुभव करै शुद्ध चेतनको रमै स्वभाव वमै सब कर्म। इहि विधि सधै मुकतिको मारग, अरु समीप आवै शिव शर्म ॥

वसंततिलकाछंद-वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा भिन्ना भावा सर्व एवास्य पुंसः ।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥ ५ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अस्य पुंसः सर्वे एव भावाः भिन्नाः -अस्य कहता विद्यमान छे, पुंस कहतां शुद्ध चैतन्य द्रव्य तिहितिहि, सर्वे कहतां जेता छे तेता, एव कहता निहचा सौं, भावा कहता अशुद्ध विभाव परिणाम, भिन्ना कहता जीव स्वरूपतहिं निराला छे, ते भाव किसा। वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा-वर्णाद्या कहतां एक कर्म अचेतन शुद्ध पुद्गल पिंडरूप छे तेता जीवस्वरूप तहिं निराला ही छे वा कहता एकता इसा छे। रागमोहादय कहता विभावरूप अशुद्धरूप छे, देखता चेतनासा दीसे छे। इसा जे रागद्वेष मोहरूप जीव सम्बन्धी परिणाम ते पुनि शुद्ध जीव स्वरूप अनुभवता जीव स्वरूप तहिं भिन्न छे। इहां कोई प्रश्न करे छे जो विभाव परिणाम जीव स्वरूप तहि भिन्न कहा सो भिन्नको भावार्थ तो म्हा समझ्या नहीं, भिन्न कहता भिन्न छे, वस्तुरूप छ, के भिन्न छे अवस्तुरूप छे। उत्तर इसा-जो अवस्तुरूप छे, तेन एव अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः अमी दृष्टा नो स्युः- तेन एव कहतां तिहि कारण तहि अन्तस्तत्त्वतः पश्यतः कहता शुद्ध स्वरूपको अनुभवन शील छे जो जीव तिहि कहुं अमी कहता विभाव परिणाम, दृष्टा कहता दृष्टिगोचर, नो स्युः कहता नहीं होय छे। परं एकं दृष्टं स्यात् परं कहता उत्कृष्ट छे इसो एक कहता शुद्ध चैतन्य द्रव्य, दृष्ट कहता दृष्टिगोचर स्यात् कहता होय छे। भावार्थ-इसो जो वर्णादिक व रागादिक छता दीसिजे छे, तथापि स्वरूप अनुभवता स्वरूप मात्र तो विभाव परिणति, वस्तु तो क्यों नहीं ॥ ५ ॥

भावार्थ-ज्ञानी फिर मनन करता है कि वर्णादिक तो प्रत्यक्ष पुद्गलके गुण हैं, वे तो मुझसे निराले हैं ही, परन्तु जो मेरे भीतर मेरे शुद्ध आत्मस्वरूपसे भिन्न झलकनेवाले राग द्वेष मोह आदिक व गुणस्थान आदि नानाप्रकारके भाव हैं वे भी मेरे स्वभाव नहीं हैं, कर्मोदयसे प्रगट होनेवाले औपाधिक भाव हैं। जब मैं शुद्ध निश्चय नयकी दृष्टिसे अपने भीतर देखता हूं तो इन सबका कहीं पता ही नहीं चलता। मुझे तो मेरे सिवाय और कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता। जैसा आराधनासारमें कहा है—

उज्झसु णिरविसेसं सहाव मुणिस्सरु भेतु। जइ ता चिन्तहि अप्पा तगाणो करलो सुद्धो ॥७५॥

भावार्थ हे योगी तू अपने चित्तको अन्य सब पर पदार्थोंसे भिन्न कर यदि अपने ही निर्मल स्वभावमें जाकर ठहरेगा तो तू वहां अपने ही आपको परम असहाय शुद्ध व ज्ञान स्वरूप ही देखेगा।

दोहा—वर्णादिक रागादि जड़, रूप हमारो नाहिं। एक ब्रह्म नहि दूसरो, दीसै अनुभव माहिं ॥५॥

उपजाति छन्द–निर्वर्त्यते येन यदत्र किंचित्तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत्।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिं ॥८॥

खण्डान्वय सहितार्थ–अत्र येन यत् किंचित् निर्वर्त्यते तत् तत् एव स्यात् कथंचन न अन्यत्–अत्र कहता वस्तुको स्वरूप विचारता, येन कहता मूल कारण रूप वस्तु तिहिं करि, यत्किंचित् कहता जो कछु कार्य निष्पत्तिरूप वस्तुको परिणाम, निर्वर्त्यते कहतां पर्याय रूप निपजै छे, तत् कहता जो निपज्यो छे, पर्याय तत् एव स्यात् कहतां निपज्यो होतो जिहिं द्रव्यतहि निपज्यो छे सोई द्रव्य छे। कथचन न अन्यत् कहतां निह्चा सो अन्य द्रव्यरूप नही हुओ। तिहिंको दृष्टांत–यथा इह रुक्मेण असिकोशं निर्वृत्तं-इह कहतां प्रत्यक्ष छे, रुक्मेन कहतां रूपो धातु तिहिकरि, असि कहतां खाडो तिहिको, कोश कहता म्यानु निर्वृत्त कहता घडि मौजूद कियो छे। रुक्मं पश्यंति कथंचन न असिं–रुक्म कहतां मौजूद हूओ छे ज्यो म्यान सो वस्तु तो रूपो ही छे, पश्यंति कहतां इसो प्रत्यक्षपनै सब लोक देखै छे, मानै छे, कथंचन कहता रूपाको खाजे इसी कहता कहवतिछे। तथापि न कहता नहीं, असि कहता रूपाको खाड़ो। भावार्थ–इसो जो रूपाका म्यान माहि खाडो रहै छे इसी कहावत छे, तिहिते रूपाको खाडो कहतां इसो कहिजे छे। तथापि रूपाको म्यान छे, खाडो लोहेको छे, रूपाको खाडो नहीं।

भावार्थ–यहां दृष्टांत दिया है कि जैसे चांदीकी म्यानमें तलवार रक्खी है तब लोग उसे चांदीकी तलवारके नामसे पुकारते हैं। यह मात्र व्यवहार है। तलवार जुदी है, वह लोहेकी है व कभी चांदीकी नहीं। चांदीका तो बना कोष है जिसमें वह रहती है। इसी तरह दृष्टांत यह है कि जीवके साथ पुद्गल कर्म व नोकर्म व कर्मके रस भावकर्मका ऐसा सम्बंध है कि जहां आत्मा है वहीं ये हैं–इसलिये व्यवहारमें जीवको एकेंद्रिय, द्वेन्द्रिय आदि व रागद्वेषी, क्रोधी आदि व श्रावक मुनि केवली आदि कहते हैं। यदि भीतर घुसकर देखा जावे तो शुद्ध चैतन्य द्रव्य इन सबसे बिलकुल निराला झलक रहा है। ये सब म्यानके समान पुद्गल द्रव्यके रचे हुए विकार हैं। अतएव सब पुद्गल ही हैं, जीवसे बिलकुल भिन्न हैं।

ऐसा ही तत्वसारमें देवसेनाचार्य कहते हैं—

फासरसरूवगंधा सद्दादीया य जस्स णत्थि पुणो। सुद्धो चेयणभावो णिरंजणो सो अहं भणिओ॥

भावार्थ–जिसमें स्पर्श रस गंध वर्ण नहीं, शब्द आदि कोई पौद्गलिक भाव नहीं हैं फक्त एक शुद्ध चैतन्य भाव है, जिसमें कोई रागादि मैल नहीं है वही मैं हूं। ऐसा मानकर अनुभव करना उचित है।

जैसे [illegible] दाखिये, [illegible] म्यान। [illegible] लोह वहै खड्ग ॥७॥

उपजातिछन्द वर्णादिसामग्र्यमिदं विदन्तु निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-हि इदं वर्णादिसामग्री एकस्य पुद्गलस्य निर्माणं विदन्तु-हि कहतां निहचासौं, इदं कहता विद्यमान छे, वर्णादिसमग्र कहतां गुणस्थान, मार्गणा स्थान, द्रव्य कर्म, भावकर्म, नोकर्म इत्यादि छे जे अशुद्ध पर्याय तेता समस्त ही, एकस्य पुद्गलस्य कहता एकलो पुद्गल द्रव्य तिहिंको निर्माण कहता पुद्गल द्रव्यका चितेरो मिलो छे, विदन्तु सो जीव नि पन्देहपने जानहु। ततः इदं पुद्गल एव अस्तु न आत्मा ततः कहतां तिहि कारण तहिं, इदं कहता शरीरादि सामग्री, पुद्गल एव कहता जिहि पुद्गल द्रव्य तहिं हूओ छे सोई पुद्गल द्रव्य छे। एव कहता निहचासौं अस्तु कहतां यो ही छे, न कहता आत्मा अजीव द्रव्यरूप नहीं हुयो। यतः स विज्ञानघनः यतः कहतां जिहि कारण तहिं स कहता जीव द्रव्य, विज्ञान कहता ज्ञान गुण तिहिंको घन कहता समूह छे। ततः अन्यः ततः कहतां तिहि कारण तहिं अन्य द्रव्य कहता जीव द्रव्य भिन्न छे शरीरादि पद्रव्य भिन्न छे। भावार्थ-इसौं जो लक्षण भेद तहिं वस्तुको भेद होइ छ। तिहितैं चैतन्य लक्षण तहिं जीव वस्तु भिन्न छे अचेतन लक्षण तहिं शरीरादि भिन्न छे। इहां कोई आशंका करै छे जो कहता तो यौंही कहिजे छे जो एकेंद्रिय जीव, बेंद्रिय जीव, इत्यादि। देव जीव, मनुष्य जीव इत्यादि रागी जीव, द्वेषी जीव इत्यादि। उत्तर इसौं जो कहता व्योहार करि यौंही कहिजे छे, निहिचासौं इसौं कहिवो झूठा छे, इसौं कहिजे छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जितनी अशुद्ध पर्यायें जीवोंके साथ होती हैं उनका निमित्त कारण मुख्यतासे पुद्गल कर्मका संयोग है। मिथ्यात्व सासादन आदि गुणस्थान भी कर्मकृत विकार हैं। इसीलिये सिद्धोंमें ये नहीं हैं। गति इंद्रिय काय आदि चौदह मार्गणाएं भी पौद्गलिक सामग्री है। इसीसे सिद्धोंमें उनका पता नहीं। आत्माको निश्चय दृष्टिसे देखने हुए एक पूर्ण ज्ञानमय वीतराग आनन्द स्वरूप ही झलकता है। इस अपने आत्मामें और सिद्धात्मामें कुछ भी अन्तर नहीं मानना चाहिये। परमात्मप्रकाशमें कहा है —

अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि णवि सामिउ णवि भिच्चु सूरउ कायरु होइ णवि, णवि उत्तमु णवि णिच्चु ॥९०॥
अप्पा माणुसु देउ णवि अप्पा तिरिउ ण होइ अप्पा णारउ कहिंवि णवि णाणिउ जाणइ जोइ ॥९१॥

भावार्थ-यह आत्मा न तो गुरु है, न शिष्य है, न स्वामी है, न रंक है, न शूरवीर है, न कायर है, न उच्च है, न नीच है, न यह मनुष्य है, न देव है न पशु है, न नारकी है। यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानी ऐसा मानते हैं।

दोहा—वर्णादिक पुद्गल दशा धरै जीव बहु रूप। वस्तु विचारत करमसौं, भिन्न एक चिद्रूप ॥८॥

अनुष्टुपछंद—घृतकुम्भाभिधानेऽपि कुम्भो घृतमयो न चेत।
जीवो वर्णादिमज्जीवो जल्पनेऽपि न तन्मयः ॥ ८ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—दृष्टांत कहिजै छै चेत् कुंभः घृतमयः न—चेत् कहतां जोयौ छै, कुम्भः कहता घड़ो, घृतमयो न कहता घीउकौ तौ नही माटीकौ छै। घृतकुम्भाभिधानेपि—घृतकुम्भ कहता घीउकौ घड़ो, अभिधानेपि कहतां यद्यपि इसौ जिहं घडामांहे घीउ मेल्हिजै छै सो घडो यद्यपि घीउकौ घडौ इसौ कहिजै छै तथापि घड़ो माटीकौ छै, घीउ भिन्न छे, तथा वर्णादिमत् जीवः जल्पनेपि जीवः तन्मयो न—वर्णादिमत् कहतां शरीर सुख दुःख रागद्वेष संयुक्त इसौ, जीव जल्पनेपि कहता यद्यपि इसौ जीवकहिजै छे, तथापि जीव कहतां चेतन द्रव्य, तन्मयो न कहतां जीव तो शरीर नहीं, जीव तो मनुष्य नहीं, जीव चेतन स्वरूप भिन्न छे। भावार्थ—इसौ जो आगम विषै गुणस्थानकौ स्वरूप कह्यो छे तहां इसो कह्यो छे—देव जीव, मनुष्य जीव, रागी जीव, दोषी जीव इत्यादि बहुत प्रकार कह्यो छे। सो सगरो ही कहिवौ व्यौहार मात्र करि छे। द्रव्य स्वरूप देखतां इसौ कहिवो झूठा छे। कोई प्रश्न करै छे, जीव किसौ छे, जिसौ छे तिसौ कहिजै छे।

भावार्थ—यहां बताया है कि व्यवहारमें एक वस्तुको दूसरेके सम्बन्धसे अन्य नामसे पुकारा जाता है, जैसे तेलकी हांडी लाओ। हाडी मिट्टीकी है, परन्तु तेलके संयोगसे तेलकी हाडी कहलाती है, तौभी तेल भिन्न है, मिट्टीकी हाडी भिन्न है। ऐसा ही समझना बुद्धिमानी है। इसी तरह शरीर व कर्म इनके सम्बन्धसे इस जीवको देव, मनुष्य, साधु, श्रावक रागी, द्वेषी, दयावान आदि नामसे कहते हैं। परन्तु ये सब अवस्थाएँ कर्मोंके निमित्तसे हैं। आत्माका द्रव्य स्वरूप न मनुष्य है, न देव है, न रागी है, न द्वेषी है, न दयावान है; वह तो जैसा है वैसा है। किसीका भी द्रव्य स्वभाव पलटता नहीं है। आत्मा अपने स्वभावमें परम शुद्ध स्फटिककी मूर्ति समान निर्विकार है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

बधुवि मोक्खुवि सयलु जिय जीवह कम्मु जणेइ अप्पा किंपिवि कुणइ णवि णिच्छउ एउ भणेइ ॥६५॥

भावार्थ—बंध व मोक्ष यह सब कर्मोंके निमित्तसे होते हैं। निश्चयसे देखो तो यह आत्मा बंध न मोक्ष कुछ भी नहीं करता है। यह तो स्वयं सिद्ध परमात्मा है।

दोहा—ज्यों घट कहिये घीवको, घटको रूप न घीव। त्यों वरणादिक नामसों, जड़ता लहै न जीव ॥८॥

अनुष्टुपछंद—अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम्।*
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥ ९ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—तु जीवः चैतन्यं स्वयं उच्चैः चकचकायते—तु कहतां

* कहीं 'स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम्' ऐसा पाठ भी है।

द्रव्यकौ स्वरूप विचारता, जीव कहतां आत्मा, चैतन्य कहतां चैतन्य स्वरूप छै। स्वय कहतां आपणों सामर्थ्यपनें, उच्चै कहता अतिशयपनें चकचकायनें कहतां अति ही प्रकाशै छै, किसौ छै चैतन्य। अनाद्यनन्त-अनादि कहता आदि नहीं छै जिहकौ, अनन्त कहतां नहीं छै अन्त कहता विनाश जिहकौ इसौ छै। और किसौ छै चैतन्य। अचल कहतां नहीं छै चलता प्रदेश रूप जिहिकौ इसौ छै। और किसौ छै, स्वसंवेद्य-कहता अपुनपै ही अपुनौ जानिजै छै। और किसौ छै अबाधित कहता अमिट छै जीवकौ स्वरूप इसौ छै।

भावार्थ-यहां बताया है कि शुद्ध दृष्टिसे देखने हुए यही आत्मा जो अपने शरीरमें है वह बिलकुल सिद्ध परमात्माके समान है, निश्चल अबाधित, चैतन्यस्वरूप प्रकाशमान है तथा जिसका स्वाद आप ही अपनेको आपकता है। अन्य कोई उसके स्वाद देनेमें सहायक नहीं है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

अप्पा णाण मुणि हे तुहुं जो जाणइ अप्पाणु। जीव पएसहिं तित्तिडु णाणे गयणपवाणु ॥ १०६ ॥

भावार्थ-आत्माको तू ज्ञानमई जान, वह आप ही अपनेको जानता है। इस जीवके प्रदेश यद्यपि असंख्यात हैं तथापि तेरे शरीर प्रमाण हैं। ज्ञान अपेक्षा यह आत्मा आकाशके समान अनंत है।

दोहा-निराबाध चेतन अलख जाने सहज सुकीव। अचल अनादि अनंत नित प्रगट जगतमें जीव ॥१०॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो।

नामूर्त्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्त्वं ततः ॥

इत्यालोच्य विवेचकैः समुचितं नाव्याप्त्यतिव्यापि वा।

व्यक्तं व्यञ्जितजीवतत्त्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यताम् ॥ १० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-विवेचकैः इति आलोच्य चैतन्य आलम्ब्यतां-विवेचकै कहतां भेदज्ञान छै जिन्हकौ इसा जे पुरुष, इति कहता जिसा कहिसेगो तिसो, आलोच्य कहता विचारि करि, चैतन्य कहता चेतन मात्र, आलम्ब्यतां कहता अनुभव करिवौ। किसौ छै चैतन्य, समुचित कहता अनुभव करिवा योग्य छै, और किसौ छै अव्यापिन कहता जीव द्रव्य सौं कबहू भिन्न नहीं होय छै अतिव्यापिन कहता जीवसौं अन्य छै जे पांच द्रव्य त्यहसौं अन्य छ, और किसौ छै व्यक्त कहतां प्रगट छै, और किसौ छै, व्यञ्जित जीवतत्त्व व्यञ्जित कहता प्रगट, किसौ छै जीवतत्व कहतां जीवकौ स्वरूप जिहि इसौ छै और किसौ छै अचल कहतां प्रदेशकंपपनाहिं रहित छै। ततः जगत् जीवस्य तत्त्वं अमूर्त्तं उपास्य न पश्यति-ततः कहता जिहि कारणतहिं जगत कहता सब जीव राशि, जीवस्य कहता जीवकी, तत्त्व कहता निज स्वरूप अमूर्त्तत्व कहता स्पर्श रस गंध वर्ण गुण तहिं रहितपनों, उपास्य कहता इसौ मानिकरि, न पश्यति कहतां नहीं अनुभवै छै। भावार्थ

इसौ जो कोई जानिसैं जीव अमूर्त्त इसौ जानि अनुभवकीजै छै सो यौं तो अनुभव नहीं। जीव तो अमूर्त्त छै परि अनुभवकाल इसौ अनुभवै छे जींव चैतन्य लक्षण। यतः अजीवः द्वेधा अस्ति—यतः कहता जिह कारण तहि, अजीवः कहतां अचेतन द्रव्य, द्वेधा अस्ति कहता दोय प्रकार छे। सो कौन दोय प्रकार। वर्णाद्यैः सहितः तथा विरहितः वर्णाद्यैः कहतां वर्ण रस गंध स्पर्श तिहिकरि सहित कहतां संयुक्त छे एक पुद्गल द्रव्य इसौ फुनि छे। तथा विरहितः कहतां वर्ण रस गंध स्पर्श तहिं रहित फुनि छे, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, आकाशद्रव्य, इसा चार द्रव्य, फुनि छे तिहिं सों अमूर्त्त द्रव्य कहिजै छे, तिहिं अमूर्तपनौं अचेतन द्रव्यकै फुनि छे। तिहितैं अमूर्त्तपनो जानि करि जीवकौं अनुभव न कीजै, चेतन जानि अनुभव कीजै।

भावार्थ यहां बताया है कि जीवका लक्षण खास चेतनारूप है, यह गुण अन्य पांच द्रव्योंमें नहीं है। यदि अमूर्तीक मानै तो अतिव्याप्ति दोष आवैगा। क्योंकि आकाशादि अमूर्तीक हैं। यदि रागादिरूप मानै तो अव्याप्त दोष आएगा, क्योंकि रागादि रहित सिद्ध जीव हैं। इसलिये शुद्ध ज्ञान चेतनामय जीव है। ऐसा ही अनुभवशील महात्माओंने अनुभव किया है। यही चेतनापना बिलकुल प्रगट है। इसीको लेकर हरएक मुमुक्षुको अनुभव करना योग्य है। योगसारमें कहा है—

जेहउ सुद्ध आयासु जिय तेहउ अप्पा वुत्तु, आयासुवि जड जाणि जिय अप्पा चेयणुवंतु ॥५८॥

भावार्थ—जैसा शुद्ध आकाश है वैसा ही आत्मा है। अंतर यह है कि आकाश जड़ है आत्मा चेतनवंत है।

सवैया ३१ सा—रूप रसवंत मूरतीक एक पुद्गल रूपबिन और यौं अजीव दर्व द्विधा है च्यारि हैं अमूरतीक जीव भी अमूरतीक, याहीतैं अमूरतीक वस्तु ध्यान मुधा है॥ औरसौं न कबहूं प्रगट आप आपुहीसौं, ऐसो थिर चेतन स्वभाव सुद्ध सुधा है॥ चेतनकौ अनुभौ आराधैं जग तेई जीव, जिन्हकैं अखंड रस चाखिवेकी छुधा है॥ ११॥

वसंततिलका छंद—जीवादजीवमिति लक्षणतो विभिन्नं, ज्ञानी जनोऽनुभवति स्वयमुल्लसंतं
अज्ञानिनो निरवधिप्रविजृम्भितोऽयं मोहस्तु तत्कथमहो बत नानटीति ॥१

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानीजनः लक्षणतः जीवात् अजीवं विभिन्नं इति स्व अनुभवति—ज्ञानीजन कहतां सम्यग्दृष्टि जीव लक्षणतः कहतां जीवकौ लक्षण चेतन अजीवकौ लक्षण जड इसा घणा भेद छे, तिहिँतैं जीव तु कहता द्रव्य थकी अजीव कहत पुद्गल आदि विभिन्नं कहतां सहज ही भिन्न छे, इति कहता इसौ प्रकार स्वयं कहतां स्वानु भव प्रत्यक्षपनै अनुभवति कहता आस्वाद करै छे। तिसौ छे जीव, उल्लसन्तं कहता आपग ुण पर्याय करि प्रकाशमान छे। तत् तु अज्ञानिनः अयं मोहः कथं नानटीति—त

छे। श्वेत शंखकौं पीलौ देखे छे सो वस्तु विचारता इसी दृष्टि सहजकी तौ नहीं, दृष्टि
छे। दृष्टिदोष कहु धतूरौ उपाधि फुनि छे। तथा जीवद्रव्य अनादितहिं कर्म संयोग
मिल्यौ ही चल्यौ आयौ छे। मिल्या थकी विभावरूप अशुद्ध पणै परिणायौ छै। अ
पनाके लिये ज्ञानदृष्टि अशुद्ध छे, तिहि अशुद्ध दृष्टि करि चेतनद्रव्यकौ एकत्व संस्कार
अनुभवै छे। इसौ सस्कार तौ छनौ छे, सो वस्तु स्वरूप विचारतां इसी अशुद्ध दृष्टि सह
जकी तौ नहीं, अशुद्ध छे, दृष्टिदोष छे। दृष्टिदोष कहुं पुद्गलपिंडरूप मिथ्यात्व
उदय फुनि उपाधि छै। आगे यथा दृष्टिदोष थकी श्वेत शंखकों पीलौ अनुभवै छै
तौ फुनि दृष्टि माहै दोष छै, शख तौ श्वेत ही छै, पीलौ देखतां
तौ पीलौ हूवो नहीं। तथा मिथ्यादृष्टि करि चेतन वस्तु अचेतन वस्तु एक करि अनु
भवै छे। तो फुनि दृष्टिकौ दोषकौ, वस्तु ज्यों भिन्न छे त्योंही छे, एक करि अनुभवतां
एक होइ नहीं। जातहि घणो अन्तर छे। किसौ छे अविवेक नाट्य, **अनादिनि**, कहतां
अनादितहि एकत्व संस्कार बुद्धि चली आई छे, औरु किसौ छे अविवेक नाट्य,
कहतां थोरौसो विपरीतपनौं न छे, घनौं विपरीतपनो छे। किसौ छे पुद्गल।
कहतां स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण करि सयुक्त छे। च **अयं जीवः रागादिपुद्गलविकार**
विरुद्धशुद्धचैतन्यधातुमयमूर्तिः—च कहतां जीव वस्तु फुनि छे। अयं कहतां रागादि
क्रोध, मान, माया, लोभ इसा असख्यात लोक मात्र अशुद्ध रूप जीवकै परिणाम, पुद्गल
विकार कहतां अनादि बंध पर्याय थकी विभाव परिणाम तिहतहि, विरुद्ध कहतां रहित
इसौ शुद्ध कहतां निर्विकार, इसौ छे, चैतन्यधातु कहतां शुद्ध चिद्रूप वस्तु तिहिं, मय कहतां
तिहिंरूप छे मूर्ति कहतां सर्वस्व जिहिंकौ इसौ छै। भावार्थ—इसौ जो यथा पानी कादौ
मिलता मैलो छे सो मैलपनौ रंग छे, सो रग अगीकार न करिये, वाकी जो रह्यो छे सो पानी
ही छे। तथा जीवकौ कर्मबंध पर्याय अवस्था रागादिपनौ रग छे। सो रंग अगीकार न करि
वाकी जो रह्यौ छे सो चेतन धातु मात्र वस्तु छे इहिकौ नाम शुद्ध स्वरूप अनुभव जानिज्यो
सम्यग्दृष्टिकहुं होई।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अनादिकालसे यह जीव कर्मकी संगतिमें प
है। मिथ्यात्व कर्मके उदयसे अज्ञानी होकर इसी तरह वस्तुको औरका और देखता
जैसा धतूरा पीनेवाला औरका और देखे। ऐसा देखनेसे वस्तु और रूप नहीं होजाती।
वस्तु जैसीकी तैसी है। इसी तरह यह अपने आत्माको सदा पर्यायरूप जानता चला आ
है। मैं नारकी, मैं देव, मैं मनुष्य, मैं धनी, मैं दुर्बल, मैं सुन्दर, मैं बलवान, मैं विद्वा
मैं तपस्वी इत्यादि। कभी भी इसकी दृष्टि शुद्ध नहीं हुई। इस अज्ञानके नाटकमें कारण

... जीवके साथ मिथ्यात्वमई पुद्गल कर्म है। वास्तवमें यही पुद्गल इस संसारके नाटकमें नाच ... नचता रहा है। जब ज्ञानदृष्टि होजावे, मिथ्यात्वका उदय हटे, तब यही ... झलके कि जीव तो परम शुद्ध ज्ञानानन्दमय परमात्मा है उसमें कोई भी रागादि ... विकार नहीं है। जीव और कर्मको मिले होते हुए भी व कर्मके उदयसे विभाव भावरूप ... परिणमते हुए भी शुद्ध निश्चयनयमई द्रव्य दृष्टिसे देखते हुए जीव भिन्न ही झलकेगा। —जैसे पानीमें मिट्टी होनेपर पानी मैला दिखाता है परन्तु जो बुद्धिसे पानीके असल स्वभाव पर विचार करो तो यह झलकेगा कि पानी मैला व मटीला नहीं पानी तो निर्मल ही है। आत्माको आत्मारूप ही मानकर उसका वैसा ही स्वाद लेना यही अनुभव तत्वज्ञानी ... महात्माको हुआ करता है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है—

... चिद्रूपे केवले शुद्ध नित्यानन्दमये य। स्वे निवृत्तिं तत्र स्वस्थं वदन्ति परमार्थत ॥१२।६॥

भावार्थ—जब यह आत्मा अपने ही केवल शुद्ध नित्य आनन्दमई स्वभावमें ठहरता है तब ही इसको निश्चयसे स्वस्थ व स्वात्मानुभवी कहते हैं—

सवैया ३३ सा—या घट भ्रमरूप अनादि विलास महा अविवेक अखारो॥ तामहि और स्वरूप न दीसत पुग्गल नृत्य कर अति भारो॥ फेरत भेष दिखावत कौतुक सौज लिये वरनादि पसारो॥ मोहसु भिन्न जुदो जड़सों चिन्मूरति नाटक देखन हारो॥ ३३॥

एनी छंद—इत्थं ज्ञानक्रकचकलनापाटनं नाटयित्वा।
जीवाजीवौ स्फुटविघटनं नैव यावत्प्रयातः॥
विश्वं व्याप्य प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या।
ज्ञातृद्रव्यं स्वयमतिरसात्तावदुच्चैश्चकाशे॥ ३३॥

खंडान्वय सहित अर्थ—ज्ञातृद्रव्य तावत् स्वयं अतिरसात् उच्चै चकासे—ज्ञातृ द्रव्य कहतां चेतन वस्तु, तावत् कहतां वर्तमानकाल स्वयं कहतां आपुणवै अतिरसात् कहतां अत्यन्त अपने स्वादको लिये हुए उच्चै कहतां एवंप्रकार, चकासे कहतां प्रगट भयो, किं कृत्वा—कायों करिके। विश्वं व्याप्य—विश्व कहतां सकलज्ञेय व्याप्य कहतां प्रत्यक्षपने प्रतिबिंबित करि, किसीकरि जाने छे ज्ञेयसकल, प्रसभविकसद्व्यक्तचिन्मात्रशक्त्या—प्रसभ कहतां बलात्कारपने, विकसत् कहतां प्रकाशमान छे, व्यक्त कहतां प्रगटपनै इसी छे। चिन्मात्रशक्ति कहतां ज्ञान गुण स्वभाव तिहि करि जानी छे ज्ञेय तिन्है, इसी छे, पुनः किं कृत्वा और कायों करि—इत्थं ज्ञानक्रकचकलनात् पाटनं नाटयित्वा—इत्थं कहतां पूर्वोक्त विधि करि, ज्ञान कहतां भेद बुद्धि, क्रकच कहतां करौत, तहँ, कलनात् कहतां बारम्बार अभ्यास तिहिंकरि, पाटन कहतां जीव अजीवकी भिन्नरूप दोइ फार

स्वात्मध्यानामृतं स्वच्छं विकल्पानपसार्य सत्, पिबति क्लेशनाशाय जलं शैवालवत्सुधीः ॥४८॥

भावार्थ—जैसे बुद्धिमान् पानीपर पडी हुई काईको हटाकर निर्मल जल पीता है व अपनी प्यास बुझाता है इसी तरह तत्वज्ञानी भेदविज्ञानके बलसे सर्व रागादि विकल्पों हटाकर अपने निर्मल आत्माका ध्यान करते हुए ज्ञानानन्दमय अमृतका पान करते जिससे सर्व दुःखोंसे छूट जाते हैं।

सवैया ३१ सा—जगमें अनादिको अज्ञानी कहे मेरो कर्म, करता मे याको किरिय प्रतिपाखी है॥ अन्तर सुमति भासी जोगसूं भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है॥ निर्भै स्वभाव लीनो अनुभौको रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचेमें राखी है॥ भरम डोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीत जोरी करमको साखी है॥४॥

शार्दूलविक्रीडित छंद—व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेन्नैवातदात्मन्यपि
व्याप्यव्यापकभावसम्भवमृते का कर्तृकर्मस्थितिः।
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण भिन्दंस्तमो
ज्ञानीभूय तदा स एष लसितः कर्तृत्वशून्यः पुमान् ॥ ४ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ—तदा स एव पुमान् कर्तृत्वशून्यः लसितः—तदा कहतां तिहि काल स एव कहतां सोई जीव अनादिकालतहिं मिथ्यात्वरूप परिणयो थो सोई जीव कर्तृत्वशून्यः लसितः—कहतां कर्म करिवानहिं रहित हूओ। किसौ छै जीव ज्ञानीभूय तमः भिंदन्- ज्ञानीभूय कहतां अनादितहिं मिथ्यात्व रूप परिणवतां जी कर्मनैं एक पर्याय स्वरूप परिनवै थो सो छूटचो, शुद्ध चेतन अनुभव हूवो, इसौ होत तमः कहतां मिथ्यात्व रूप अन्धकार, भिंदन् कहतां छेदतो होतो। किसं करि मिथ्यात अंधकार छूटचो-इति उद्दामविवेकघस्मरमहो भारेण—इति कहतां जो कह्यो छे, उद्दा कहतां बलवन्त छे, विवेक कहतां भेद ज्ञान, सोई छे घस्मर कहतां सूर्य तिहिको मह कहतां तेज, तिहिकौ भरेण कहतां समूह तिहि करि। आगे जो विचारतां भेद ज्ञान होय छे, सोई कहिये छे। व्याप्यव्यापकता तदात्मनि भवेत्—व्याप्य कहतां जावंत गुणरूप व पर्याय रूप भेद विकल्प, व्यापक कहतां एक द्रव्य रूप वस्तु, तदात्मनि कहतां एक सत्व रूप वस्तु तिहिविषै भवेत् कहतां होय छे। भावार्थ इसौ—यथा सुवर्ण पीरो भारी चीकनो इसौ कहिवाको छे, परंतु एक सत्व छे, तथा जीव द्रव्य ज्ञाता दृष्टा इसौ कहिवाको छे परन्तु एक सत्व छे, इसौ एक सत्वविषै व्याप्यव्यापकता भवेत् कहतां भेद बुद्धि कीजै तो व्याप्य व्यापकता होय। क्योंकि व्यापक कहिये द्रव्य परिणामी अपना परिणामको कर्त्ता होइ। व्याप्य कहता सोई परिणाम द्रव्यको कीयो नाहिं इसौ भेद कीजै तो होइ न कीजै तौ न होइ। अतदात्मनि अपि न एव—अतदात्मनि कहतां यथा जीव सत्व तहिं पुद्गल

द्रव्यकी सत्वभिन्न छे। अपि कहता निश्चासों, न एव कहता व्याप्य व्यापकता न होइ। भावार्थ इसौ-यथा उपचार मात्र करि द्रव्य आपणा परिणामकौ कर्त्ता छे, सोई परिणाम द्रव्यकी कीयौ छे, तथा अन्य द्रव्यकौ कर्त्ता अन्य द्रव्य उपचार मात्र करि ने न होइ। जातहि एक सत्व नहीं, भिन्न सत्व छे। व्याप्यव्यापकभावसंभवमृते कतृकर्मस्थिति का-व्याप्यव्यापकमाव कहता परिणाम परिणामी मात्र भेद, तिहिंका सभव कहतां उत्पत्ति तिहिंका ऋते कहता विना कर्तृकर्मस्थिति का कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मकौ कर्त्ता जीव द्रव्य इसौ अनुभव घटै नहीं जिहितें जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्य एक सत्ता नहीं-भिन्न सत्ता छै इसा ज्ञान सूर्य करि मिथ्यात्वरूप अन्धकार मिटै छे, सम्यग्दृष्टि होय छे।

भावार्थ-यहां बताया है कि पुद्गल या पौद्गलिक भावका कर्ता किसी भी तरह जीव द्रव्य नहीं होसकता है। हरएक द्रव्यकी सत्ता भिन्न२ है, हरएक द्रव्य उपादान रूपसे अपनी ही परिणतिका कर्ता तो होसकता है। परन्तु दूसरे द्रव्यका व दूसरेके गुणका कर्त्ता नहीं होसकता है। गुण गुणीमें व्याप्य व्यापकता होसकती है-आत्मा गुणी द्रव्य है, ज्ञान दर्शन उसके गुण हैं। व्यापक आत्मामें ज्ञान दर्शन व्याप्य है। भेदबुद्धिसे यह तो हम कह सकते हैं कि ज्ञान दर्शनका कर्ता यह आत्मा है। परन्तु जिनके साथ सदाका सम्बन्ध नहीं ऐसे जो रागादि व क्रोधादि व पुद्गल पिंडरूप मोहकर्म आदि उनका कर्ता यह जीव कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि इनमें व जीवमें कोई एकसत्तापना नहीं है। जीव उनसे बिल्कुल पृथक् है-ऐसा भेद विज्ञान रूपी सूर्य जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाता है वह कभी भूलकर भी पुद्गलादि द्रव्यका व रागादि विकारका मैं कर्ता हूं, ऐसा नहीं मानता है। पुद्गल द्रव्य तो प्रगट जुदा ही है। रागादि भाव अपने ही दीखने हैं परन्तु ये अपने नहीं-जैसे रक्त जलमें रक्तपना जलका नहीं किंतु रक्त पदार्थका है जो जलमें मिला है, वैसे ही रागादि जीवमें मिल रहा है इनसे जीवको रागीद्वषी कहते हैं, परन्तु वह रागद्वेष मोहनीय कर्मका अनुभागरूपी मैल है, आत्माका गुण नहीं आत्माका अपना निजका परिणमन नहीं, ऐसा जो अनुभवे वही सम्यग्दृष्टि है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं-

नाहं किंचिन्न मे किंचिद् शुद्धचिद्रूपकं विना। तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा तत्र लयं भजे ॥१॥

भावार्थ-शुद्ध चैतन्य स्वभावके सिवाय मैं और कुछ नहीं हूं और न मेरा कोई और है, इसलिये मैं दूसरी चिंता करना वृथा समझकर एक शुद्ध चिद्रूपमें ही लय होता हूं।

सवैया इकतीसा—जैसे उरणराज हंसके घटतमें पयको सुभाव भिन्न नीर सौं मिलै न काहू जानसौं ॥ आप बातु माउन चरन छाड़ जाति अपेक्षा एव अछिन्न जो निजरूप हुए ज्ञानसौं ॥ ऐसो सुविवेक जाके हिरदै प्रगट भयो ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भग भानसौं ॥ सोइ जीव करमको करतासो दीसै पै अकरता कह्यो शुद्धताके परमानसौं ॥ ५ ॥

स्रग्धरा छन्द—ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमन्तः कलयितुमसहौ नित्यमत्यन्तभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न याव-
द्विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥ ५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यावत् विज्ञानार्चिः न चकास्ति तावत् अनयोः कर्तृकर्मभ्रममतिः अज्ञानात् भाति—यावत् कहतां जेतो काल, विज्ञानार्चिः कहतां भेद ज्ञानरूप अनुभव न चकास्ति कहतां नहीं प्रगट होय छे तावत् कहतां तेतो काल, अनयोः कहतां जीव पुद्गल विषे, कर्तृकर्मभ्रममतिः कहतां ज्ञानवरणादिको कर्ता जीव द्रव्य इसो छे। मिथ्याप्रतीति अज्ञानात् भाति कहतां अज्ञानपने छे, वस्तुको स्वरूप यो तो न छे। कोई प्रश्न करे छे, ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता जीवको इसो अज्ञानपनो छे सो क्यों छे। ज्ञानी पुद्गलः च व्याप्तृव्याप्यत्वं अन्तःकलयितुं असहौ—ज्ञानी कहतां जीव वस्तु, पुद्गल कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पिंड, व्याप्तृ व्याप्यत्व कहता परिणामी परिणाम भाव, अन्तःकलयितु कहता एक संक्रमण रूप होवाको असहौ कहतां असमर्थ छे। नित्यं अत्यन्तभेदात्—नित्यं कहतां द्रव्य स्वभाव थकी अत्यन्तभेदात् कहतां अति ही भेद है। व्योरो—जीव द्रव्यके भिन्न प्रदेश चैतन्य स्वभाव, पुद्गल द्रव्यके भिन्न प्रदेश अचेतन स्वभाव इसा भेद घणा छे। किसो छे ज्ञानी, इमां स्वपरपरिणतिं जानन् अपि—इमां कहतां प्रसिद्ध छे, स्व कहता आपनपो पर कहतां यावत ज्ञेय वस्तु तिहिकी परणति कहतां द्रव्य गुण पर्याय, अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य, तिहिंको जानन् कहता ज्ञाता छे। अपि कहता इसो छे, तो फुनि किसो छे पुद्गल। इमां स्वपरपरणति अजानन्—इमा कहतां प्रगट छे स्व कहता आपुणरू, पर कहतां यावत छे, परद्रव्य तिहिंको परिणतिं कहतां द्रव्य गुण पर्याय आदि तिहिंको, अजानन् कहता नहीं जाने छे। इसो छे पुद्गल द्रव्य। भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य ज्ञाता छे, पुद्गल कर्म ज्ञेय छे। इसो जीव कहु ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध है। तथापि व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नहीं, द्रव्यहको अत्यन्त भिन्नपनो छे एकपनो न छे। किसा छे भेदज्ञानरूप अनुभव, अयं क्रकचवत् सद्यः भेदं उत्पाद्य—जिहिने करोतकी नाई शीघ्र ही जीव व पुद्गलको भेद उत्पन्न किया छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि अनादिकालसे चली आई हुई यह मिथ्या प्रतीति कि मैं पुद्गलका कर्ता हूं पुद्गल मेरा कार्य है, मैं रागी हूं राग मेरा कार्य है, मैं दयालु हूं दया मेरा कार्य है, मैं धनी हूं धन मेरा कार्य है, मैं स्वामी हूं स्वामीपना मेरा कार्य है, मैं सेवक हूं सेवकपना मेरा कार्य है, मैं पशु हूं पशुपना मेरा कार्य है, मैं मानव हूं मान-

रता मेरा कार्य है। यह पर्यायबुद्धि उसी समय तक रहती है जिस समय तक भेद-ज्ञान रूपी शस्त्रसे बुद्धिको छेदकर यह न समझ लिया जाय कि मैं आत्मा मात्र ज्ञातादृष्टा परम वीतरागी हूं तथा यह ज्ञानावरणादि मोहनीयादि कर्म पुद्गलपिंड अचेतन हैं व उनके अनुसार जो अज्ञान व मोह व रागादि भाव हैं सो भी अचेतन हैं। शरीरादि सब पर अचेतन हैं, इनसे मेरा मात्र ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध है, मैं ज्ञाता हूं यह ज्ञेय है। मेरेमें मेरा स्वभाव ऐसा है जो शुद्ध चैतन्य रूप है। इनमें इनका स्वभाव ऐसा है जो अचेतन रूप अशुचि रूप है। मैं किस तरह चेतनसे अचेतन रूप होसकता हूं? मैं अपनी परिणतिका कर्ता हूं, ये जड़ अपनी परिणतिके कर्ता हैं। मैं जब अपने ज्ञान स्वभावसे अपनेको भी जानता हूं व परको भी जानता हूं तब पुद्गल न अपनेको जानते हैं न परको जानते हैं। इसलिये मुझे ऐसा अनुभव है कि मैं मैं ही हूं। मैं मैं एक शुद्ध चेतन द्रव्य हूं, मेरा कोई सम्बन्ध अन्य द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे नहीं है। वास्तवमें यह भेद ज्ञान ही अनुभव का बीज है। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है —

मिलितानेकवस्तूनां स्वरूपं हि पृथक् पृथक् स्पर्शादिभिर्विदग्धेन निःशंकं ज्ञायते यथा।
तथैव मिलितानां हि शुद्धचिद्देहकर्मणां अनुभूत्या कथं शुद्धि स्वरूपं न पृथक् पृथक् ॥२०/८॥

भावार्थ-जैसे चतुर पुरुष अनेक वस्तुओंके परस्पर मिलने हुए भी अपने स्पर्श आदिसे भिन्न २ जान लेता है कि ये भिन्न अनेक पदार्थ हैं, उसी तरह तत्वज्ञानी जीव अपने स्वात्मानुभवके अभ्याससे अनादि कालसे मिले हुए रहनेपर भी शुद्ध चैतन्य रूप आत्माको भिन्न व शरीर व कर्म आदिको भिन्न जान लेता है। इसमें धोखा हो ही नहीं सक्ता है।

छप्पय छन्द—जीव ज्ञानगुण सहित आपगुण परगुण ज्ञायक ॥ आपा परगुण लखे, नांहि पुग्गल इहि लायक ॥ जीवद्रव्य चिद्रूप सहज पुद्गल अचल जड़ ॥ जीव अमूरति मूरतीक पुद्गल अन्तर बड़ ॥ जबलग न होइ अनुभौ प्रगट तबलग मिथ्यामति लसै ॥ करतार जीव जड़ कर्मको सुबुद्धि विकास यह भ्रम नसै ॥ ६ ॥

आर्या छन्द—यः परिणमति स कर्ता यः परिणामो भवेत्तु तत्कर्म।
या परिणतिः क्रिया सा त्रयमपि भिन्नं न वस्तुतया ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यः परिणमति स कर्ता भवत्—यः कहता जो कोई सत्ता मात्र वस्तु, परिणमति कहतां जो कोई अवस्था है तिहरूप आपुहीज है तिहि तहिं स कर्ता भवत् कहतां तिहि अवस्थाका सत्ता मात्र वस्तु कर्ता होइ। इसा कहता विरुद्ध पुनि नहीं जिहितैं अवस्था पुनि है। यः परिणामः तत् कर्म—यः परिणामः कहता तिहि द्रव्यको जो कछु स्वभाव परिणाम, तत् कर्म कहतां सो ही परिणाम कर्म इसो नाम कहिये। या परिणतिः सा क्रिया—या परिणतिः कहता जो कछु द्रव्यकी पूर्व अवस्था तहिं इसर

अवस्था रूप होवौ सो क्रिया कहतां तिहिकौ नाम क्रिया कहिजै। यथा-मृत्तिका घट रूप होय छे, तिहिनैं मृत्तिका कर्ता कहिजै, निपज्यो घडो, कर्म कहिजै मृत्तिका पिण्ड तहि घटरूप होवो क्रिया कहिजे तथा सत्व रूप वस्तु कर्ता कहिजै, तिहिं द्रव्यको निपज्यो परिणाम कर्म कहिजे तिहिं क्रियारूप होवो क्रिया कहिजे। वस्तुतया त्रयो अपि न भिन्न-वस्तुतया कहतां सत्ता मात्र वस्तुकौ स्वरूप अनुभव करतां, त्रयं कहता कर्ता कर्म क्रिया इसा तीनि भेद अपि कहता निहचासौ न भिन्नं कहतां तीनि सत्व तो नहीं, एक ही सत्व छे। भावार्थ-इसो जो कर्त्ताकर्म क्रियाको स्वरूप तो ऐसे प्रकार छे। तिहिंनै ज्ञानावरणादि द्रव्य पिंडरूप कर्मको कर्ता जीवद्रव्य छे, इसो जाणिवो झूठो छे। जिहिंनै जीव द्रव्यसौ एक सत्व नही, कर्ताकर्म क्रियाकी कौन घटना।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता किसी भी तरह जीव द्रव्य नहीं होसक्ता है। क्योंकि वे पुद्गल है जीव चेतन है-निश्चयसे उपादान कारण रूप ही कार्य होता है। इससे उपादान कारण कर्ता है उसका जो कार्य है सो कर्म है व उस कारणका कार्यरूप होना सो क्रिया है-तीनों एक ही द्रव्यकी सत्तामें होते है। जैसे सुवर्ण एक पिण्डरूपमें था, उसका जब एक कडा बनाया गया तब सुवर्ण उपादान कारणने अपनी अवस्था पलटी अर्थात् वह पिंडसे एक कड़ेकी अवस्थामें होगया। विचार करो तो कड़ा भी सुवर्ण ही है पिंड भी सुवर्ण ही था-यह जगत्का नियम है तब यह कैसे सिद्ध होसक्ता है कि चेतन जडको करे-यह मानना अज्ञान है। इसलिये भेद ज्ञान द्वारा इस अज्ञानको मेट देना चाहिये। तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहा है—

चिद्रूपछादको मोहरेणुराशिर्न बुध्यते। क्व यातीति शरीरात्मभेदज्ञानप्रभञ्जनात् ॥ १६ ॥

भावार्थ-शरीर और आत्माको भेद ज्ञान रूपी पवनके द्वारा आत्मस्वरूपको ढकने-वाली मोहकी रज कहां चली जाती है सो पता नहीं। वास्तवमें कर्मोंका नाशक भेदज्ञान है।

दोहा—करता परिनामी दरब करमरूप परिनाम। किरिया परजयकी फिरनी, वस्तु एक त्रय नाम ॥७॥

शिखरिणी-एकः परिणमति सदा परिणामो जायते सदैकस्य।
एकस्य परिणतिः स्यादनेकमप्येकमेव यतः ॥ ७ ॥

क्रिया, एकस्य स्यात् सो पुनि सत्ता मात्र वस्तुकी छै। भावार्थ इसो-जो क्रिया पुनि वस्तु मात्र छै, वस्तुतहिं भिन्न सत्त्व नहीं। यत अनेकं अपि एक एव-यत कहता जिहिं कारण तहिं, अनेक कहता एक सत्त्व कहु कर्ता कर्म क्रिया इसा तीनि भेद, अपि कहता यद्यपि यो कहिं छै, तथापि एक एव कहता सत्ता मात्र वस्तु मात्र छै। तीनि ही विकल्प झूठा छै। भावार्थ इसो-जो ज्ञानावरणादि द्रव्यरूप पुद्गल पिंड कर्मको कर्ता जीव वस्तु छै, इसो जानपनो मिथ्याज्ञान छै, जिहिं तहिं एक सत्त्व विषै कर्ता कर्म क्रिया उपचार करि कहिंजे छै, भिन्न सत्त्वरूप छै जे जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य त्यहको कर्ता कर्म क्रिया कहातहिं घटसे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि एक द्रव्यमें भी जो कर्ता कर्म व क्रियाका कथन करना सो व्यवहार है तब एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता व एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्म किस तरह होसकता है। द्रव्यका स्वभाव परिणमनशील है-जो परिणमन जिस द्रव्यका होता है वह उस द्रव्यसे भिन्न नहीं है, वही है। गोरसकी दही मलाई खोया आदि वस्तु बनी हैं, गोरसकी ही सत्ता इनमें है। इनका कर्ता गोरस ही है, गोरस कभी खाडका व खाड कभी गोरसका कर्ता नहीं होसक्ता। अपना अपना परिणमन अपने अपने द्रव्यके साथ है, इससे यह जीव कभी भी पुद्गलका कर्ता नहीं हो सक्ता। इसी भेद विज्ञानका अभ्यास सदा करना योग्य है। त०३० में कहा है—

भेदज्ञानबलात् शुद्धचिद्रूपं प्राप्य केवली, भवेद्देवाधिदेवोपि तीर्थकर्ता जिनेश्वरः ॥२२/८॥

भावार्थ-भेद ज्ञानके ही बलसे अपने शुद्ध चैतन्य स्वभावको प्राप्त करके यह आत्मा केवलज्ञानी, देवाधिदेव, तीर्थंकर व जिनेश्वर होजाता है।

कर्ता कर्म क्रिया करे क्रिया कर्म कर्तार। नाम भेद बहुविधि भयो वस्तु एक निर्धार ॥८॥

अथा-नोभौ परिणमतः खलु परिणामो नोभयोः प्रजायेत।
उभयोर्न परिणतिः स्याद्यदनेकमनेकमेव सदा ॥ ८ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-खलु उभौ न परिणमतः-खलु कहता इसो निहचो छै, उभौ कहता एक चेतनालक्षण जीवद्रव्य, एक अचेतन कर्म पिंडरूप पुद्गलद्रव्य, न परिणमतः कहतां मिलिकरि एक परिणामरूप नहीं परिणवै छै। भावार्थ इसो-जो एक जीवद्रव्य आपणी शुद्धचेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप व्याप्य व्यापकरूप परिणवै छै। पुद्गलद्रव्य पनि आपणो अचेतन लक्षणरूप, शुद्ध परमाणुरूप अथवा ज्ञानावरणादि कर्म पिंडरूप आपुनैं व्याप्य व्यापकरूप परिणवै छै। परन्तु जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य दुवे मिलिकरि अशुद्धचेतनारूप छै, रागद्वेषरूप परिणाम, तिहिंरूप परिणवै छै यों तो न छै। उभयोः परिणामः न प्रजायेत उभयो कहतां जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य त्यहको परिणाम कहता दुवे मिलि करि एक पर्यायरूप

परिणाम. न प्रजायते कहता न होइ। उभयोः परिणतिः न स्यात-उभयोः कहता जीव पुद्गल दुहकी, परिणति कहतां मिलि करि एक क्रिया, न स्यात् कहता न होइ। वस्तुको स्वरूप इसो ही छे। यतः अनेकं अनेकं एव सदा-यत कहतां जिहि कारण तहिं अनेकं कहता भिन्न सत्तारूपछे जीव पुद्गल, अनेकं एव सदा कहतां तेतो जीव पुद्गल सदा ही भिन्नरूप छे, एक रूप क्यो होहि। भावार्थ इसो जो जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्य भिन्न सत्तारूप छे सो जो पहले भिन्न सत्तापनो छोडि एक सत्तारूप होहिं तो पाछे कर्त्ताकर्म क्रियापनो घटै। सो तो एक रूप होहिं नाहीं, तातैं जीव पुद्गलको आपुसमांहि कर्त्ताकर्म क्रियापनो घटै नहीं।

भावार्थ—यहां यह भाव है कि दो द्रव्य मिलकरके एक ही परिणति नहीं बना सके। यदि हम सोने चांदीको मिलाकर आभूषण बनावें तोभी सुवर्णका परिणमन सुवर्णरूप व चांदीका चांदीरूप होगा, दोनों मिलके कभी भी एकरूप नहीं होंगे—हम जब चाहें तब सोनेको चांदीसे अलग कर सक्ते हैं। इसी तरह यद्यपि आत्माका और मोह आदि कर्मोंका परिणमन एक साथ एक ही प्रदेशमें होता है और उन दोनोंकी परिणतिसे जो रागद्वेष हुआ है सो मानो एक ही अवस्था दिख रही है परन्तु वहां दो द्रव्योंका भिन्न२ रूप ही परिणमन हुआ—एक क्रोध भावमें देखें तो क्रोध नाम कषायकी वर्गणाएं उदय होती हुई अपना कलुष अनुभाग झलकाती हैं, उसी समय ज्ञानका परिणमन भी होरहा है तथा ज्ञानमें उस क्रोधके परिणमनके निमित्तसे नैमित्तिक विकार इसी तरह होता है जैसे स्फटिकमणिके साथ लाल डाक लगनेसे उस मणिका श्वेत रंग ढक जाता है और जबतक उस लाल डाकका सम्बन्ध है तबतक ललाई प्रगट होजाता है। हम यद्यपि व्यवहारमें लाल मणि कहदें परन्तु वह लाल मणि नहीं है, वह तो सफेद ही है. ललाई तो लाल डाककी है, स्फटिकमणि की लाल नहीं होती। इसी तरह मोहकर्मके उदयसे आत्मा कभी भी मोही नहीं होता यद्यपि व्यवहारमें मोही सा दिखता है, तोभी आत्मा ज्ञानदर्शनमय ही है—मोहकी कलुषता मात्र मोहनीयकर्मकी है। रागद्वेषमय प्रतिभासको आत्माका समझना अज्ञान है। ऐसा ही पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव। प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्

होनेसे आत्माका चारित्रगुण तिरोहित अर्थात् ढक जाता है और क्रोधादि विकार झलकने लगता है, जैसे स्फटिककी निर्मलता ढक जाती है व लाली प्रगट होजाती है। रागादि भावोंमें चेतन व कर्म दोनोंका भिन्न२ अपने अपने रूप परिणमन है। दोनोंका मिलके एक परिणमन नहीं हुआ न ऐसा होसक्ता है। वे दो द्रव्य हैं, उनका परिणमन भी दो रूप है व दो ही सदा रहेंगे, एक कभी नहीं होंगे।

दोहा—एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्ता दोय। दुधा द्रव्य सत्ता सु तो एक भाव क्यों होय ॥९॥

आर्या छंद—नैकस्य हि कर्तारौ द्वौ स्तो द्वे कर्मणी न चैकस्य।
नैकस्य च क्रिये द्वे एकमनेकं यतो न स्यात् ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यथा कोई मतान्तर निरूपसे जो द्रव्यकी अनन्त शक्ति है सो एक शक्ति पुनि इसी होइसे जो एक द्रव्य दोइ द्रव्यका परिणामकर्तु करै। यथा जीव द्रव्य आपणा अशुद्ध चेतनारूप रागद्वेष मोह परिणामको व्याप्य व्यापकरूप करै, त्योंही ज्ञानावरणादि कर्म पिंड कर्तु व्याप्य व्यापक रूप करै। उत्तर इसी जो द्रव्यके अनन्तशक्ति तो छै पर इसी शक्ति तो कोई नहीं जो ज्यों आपणा गुणसों व्याप्य व्यापक है त्यों ही पर द्रव्यका गुण सेती व्याप्य व्यापक रूप होइ। हि एकस्य द्वौ कर्तारौ न—हि कहतां निहचापौं, एकस्य कहता एक परिणामकौं, द्वौ कर्तारौ कहतां दोइ द्रव्य कर्ता नहीं। भावार्थ इसौ—जो यथा अशुद्ध चेतना रूप रागद्वेष मोह परिणामका ज्यों व्याप्य व्यापक रूप जीव कर्ता त्यों ही पुद्गल द्रव्य पुनि पुनि अशुद्ध चेतना रूप रागद्वेष मोह परिणामकौ कर्ता यों तो नहीं। जीव द्रव्य आपणा रागद्वेष मोह परिणामको कर्त्ता, पुद्गल द्रव्यकर्त्ता नहीं छै। एकस्य द्वे कर्मणी न स्त—एकस्य कहता एक द्रव्यकै, द्वे कर्मणी नस्त कहतां दोइ परिणाम न होहि। भावार्थ इसौ—जो यथाजीव द्रव्य रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध चेतना परिणामकौ व्याप्य व्यापक रूप कर्ता तथा ज्ञानावरणादि अचेतन कर्मको कर्त्ता जीव यों तो न छै। आपणा परिणामकौ कर्ता छै, अचेतन परिणाम रूप कर्मको कर्ता न छै। च एकस्य द्वे क्रिये न—च कहता पुनि, एकस्य कहता एक द्रव्यके द्वे क्रिये न दोइ क्रिया नहीं भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य ज्यों चेतन परिणति रूप परिणवै छै, त्यों ही अचेतन परिणति रूप परिणवै यों तो नहीं। यतः एकं अनेकं न स्यात्—यत कहता जिहि कारणतहिं एक कहतां एक द्रव्य, अनेकं न स्यात् कहतां दोय द्रव्य रूप क्यों होइ। भावार्थ इसौ—जो जीव द्रव्य एक चेतन द्रव्यरूप छै सो जो पहिले अनेक द्रव्यरूप होइ तौ ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता पुनि होइ। आपणा रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध चेतन परिणामको पुनि होइ सो यों तो नहीं—अनादि निधन जीव द्रव्य एकरूप ही छै, तिहि तहिं आपणा अशुद्ध चेतन परिणामको कर्ता होइ। अचेतन कर्मको कर्ता न होइ। इसौ वस्तु स्वरूप छै।

आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः ।
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-आत्मा आत्मभावान् करोति-आत्मा कहतां जीव द्रव्य, आत्म भावान् कहता आपणा शुद्ध चेतनारूप अथवा अशुद्ध चेतनारूप रागद्वेष मोहमा तिहिकौं, करोति कहता तिहिरूप परिणवै छै । परः परभावान् सदा करोति-परः कहता पुद्गल द्रव्य, परभावान् कहतां पुद्गल द्रव्यको ज्ञानावरणादिरूप पर्याय । सदा कहतां त्रिकाल गोचर, करोति कहतां करहि छै। हि आत्मनो भावाः आत्मा एव-हि कहतां निहचासौं, आत्मनो भावाः कहता जीवका परिणाम आत्मा एव जीव ही छै। भावार्थ-इसौ जो चेतन परिणामको जीव करै ते चेतन परिणाम फुनि जीव ही छै, द्रव्यांतर नहीं हुओ। परस्य भावाः पर एव-परस्य कहतां पुद्गल द्रव्यका, भावाः कहतां परिणाम, पर एव कहतां पुद्गल द्रव्य छै, जीव द्रव्य नहीं हुओ। भावार्थ-इसौ जो ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता पुद्गल छै, और वस्तु फुनि पुद्गल छै, द्रव्यांतर नहीं।

भावार्थ-यहां स्पष्ट कह दिया है कि हरएक द्रव्य अपनी २ अवस्थाका आप ही उपादान कारण है। जैसा उपादान कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। सुवर्णकी डलीसे सुवर्णकी वस्तु, लोहेकी डलीसे लोहेकी वस्तु बनेगी। इसी तरह अचेतन जड़ अपनी अचेतन पर्यायका चेतन द्रव्य अपनी चेतन परिणतिका कर्ता है, ऐसा समझना ही यथार्थज्ञान है।

सवैया ३१ सा—शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन, दुहूको करतार जीव और नहिं मानिये। कर्मपिंडको विलास वर्ण रस गन्ध फास, करता दुहूको पुद्गल परवानिये ॥ ताते वरणादि गुण ज्ञानावरणादि कर्म, नाना परकार पुद्गल रूप जानिये ॥ समल विमल परिणाम जे जे चेतनके ते सब अलख पुरुष यों बखानिये ॥ १२ ॥

वसंततिलका छंद-अज्ञानतस्तु स तृणाभ्यवहारकारी ज्ञानं स्वयं किल भवन्नपि रज्यते यः
पीत्वा दधीक्षुमधुराम्लरसातिगृध्यां गां दोग्धि दुग्धमिव नूनमसौ रसालम् ॥१२

खण्डान्वय सहित अर्थ-यः अज्ञानतः तु रज्यते-यः कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव, अज्ञानतः तु कहतां मिथ्यादृष्टि थकी ही, रज्यते कहता कर्मकी विचित्रता विषै आपा जानि रंजइ छै सो जीव किसौ छै। सतृणाभ्यवहारकारी-सतृण कहता घास सेती अभ्यवहार कहतां आहार, कारी कहतां करै छै। भावार्थ इसो जो यथा हस्ती अन्न घासि मिला ही बराबरी जान खाइ छै, घासको नाजको विवेक नहीं करै छै। तथा मिथ्यादृष्टि जीव कर्मकी सामग्री आपणी जानै छै, जीवको कर्मको विवेक नहीं करे छ। किसौ छै। किल स्वयं ज्ञानं भवन् अपि-किल स्वयं कहता निश्चयसे स्वरूप मात्र अपेक्षा, ज्ञान भवन् अपि कहता यद्यपि ज्ञान स्वरूप छै। और जीव किसौ छै। असौ नूनं रसालं पीत्वा गां दुग्धं दोग्धि

इव-असौ कहतां यह छे यो विद्यमान जीव, पुन कहता निश्चयसौं, रसात् कहता दिपरणि, पीत्वा कहता पीकरि इसी माने छे या दोग्धि इव कहतां गायका दूधकौं पीवै छे। मानौं किसे करि, दधीमधुराम्लरसातिगृद्ध्या-दधीमधुरा कहतां सिखरनी माहिं मीठो, आम्ल कहता खाटो, रस कहता इसो स्वाद तिहिकी, अति गृध्या कहता अति ही आसक्ति सो। भावार्थ इसौ जो स्वाद लपट होता सिखरणी पीवै छे, स्वाद भेद नहीं करै छे। इसो निर्भेदपनो माने छे, जिसो गाइको दूध पीवता निर्भेदपनो मानिजे।

भावार्थ-यहां मिथ्यादृष्टी जीवकी अज्ञान दशाका दृष्टांत है, जैसे हाथी अन्न व घास मिला हुआ ही खाता है भेद नहीं करता है, वम सिखरणी खाता हुआ भी खाटे मीठे रसका भेद न करके मानौं मैंने दूध ही पिया ऐसा जानता है। वैसे अज्ञानी जीव, जीव और कर्म पुद्गलका भेद न करके दोनोंको एक रूप ही अनुभव करता है।

सवैया ३१ सा—जैसे गजराज नाज घासके गरास करि भक्षत सुभाय नहीं भिन्न रस लियो है। जैसे मतवारो नहि जानै सिखरणि स्वाद जुगमें मगन कहै गऊ दूध पियो है॥ तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव पग्यो पाप पुण्यसों सहज सुन हियो है। चेतन अचेतन दुहूको मिश्र पिंड लखि एकमेक मानै न विवेक कछु कियो है॥ १३॥

शार्दूलविक्रीडितछंद अज्ञानान्मृगतृष्णिकां जलधिया धावन्ति पातुं मृगा।
अज्ञानात्तमसि द्रवन्ति भुजगाध्यासेन रज्जौ जनाः॥
अज्ञानाच्च विकल्पचक्रकरणाद्वातोत्तरङ्गाब्धिव-
च्छुद्धज्ञानमया अपि स्वयममी कर्त्रीभवन्त्याकुलाः ॥ १३ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-अमी स्वयं शुद्धज्ञानमया अपि अज्ञानात् आकुला: कर्त्री भवन्ति-अमी कहता सब संसारी मिथ्यादृष्टी जीव, स्वयं कहता सहज थकी, शुद्धज्ञानमया अपि कहतां शुद्ध स्वरूप छे अज्ञानात् कहता मिथ्यादृष्टि थकी, आकुला कहता आकुलित होत हुए, कर्त्रीभवंति कहता बलात्कार ही कर्ता होहि छे। किसायकी विकल्पचक्रकरणात्-विकल्प कहता अनेक रागादि तिहिकी, चक्र कहता समूह तिहिके, करणात् कहतां करिबा थकी। कौनकी नाईं, वातोत्तरंगाब्धिवत्-वात कहता बहालि तिहिकरि, उत्तरंग कहता डोल्यो छे, उछल्यो छे, अब्धि कहता समुद्र तिहिकी नाईं। भावार्थ इसौ-जो यथा समुद्र स्वरूप निश्चल छे, वायुकि प्रेरयो उछले छे, उछल्याका कर्ता पुनि होइ छे। तथा जीव द्रव्य स्वरूपतहि अकर्ता छे। कर्मसंयोग थकी विभाव रूप परिणवे छे, तिहिंतें विभावपणाकौ कर्ता पुनि होइ छे, परि अज्ञान थकी, स्वभाव तो नाहीं, दृष्ट तो नहीं। मृगाः मृगतृष्णिकां अज्ञानात् जलधिया पातुं धावन्ति-मृगा कहता हरिण, मृगतृष्णिका कहतां मरीचिकाको, अज्ञानात् कहतां मिथ्या भ्रांति थकी, जलधिया कहतां पानाकी बुद्धिकरि, पातुं

धावंति कहतां पीवा कुं दौडि छे। जनाः रज्जौ तमसि अज्ञानात् भुजंगाध्यासेन द्रवंति-जनाः कहतां मनुष्य जीव, रज्जौ कहता जेवरी मांहि, तमसि कहता अंधकार विषे, अज्ञानात् कहतां भ्रांति थकी, भुजंगाध्यासेन कहतां सर्पकी बुद्धि करि, द्रवंति कहतां डरपे छे ॥१३॥

भावार्थ-यहां भी यही बताया है कि जैसे मृग अज्ञानसे मरीचिकाको जल जान व मूर्ख मानव रस्सीको सर्प जान आकुलित होता है, वैसे ही अज्ञानी जीव कर्मजनित अव-स्थाको अपनी मानि क्षोभित समुद्रकी तरह अनेक रागद्वेष विकल्प करता है। अपने निश्च शुद्ध स्वभावके ज्ञानसे भ्रष्ट है। तत्त्वज्ञान० में कहा है-

व्यक्ताव्यक्तविकल्पानां वृन्दैरापूरितो भृशं । लब्धतत्त्वोऽपि बालो न शुद्धचिद्रूपचिन्तने ॥ २२।५ ॥

भावार्थ-यह अज्ञानी जीव प्रगट व अप्रगट अनेक संकल्प विकल्पोंमे खूब घिरा हु रहता है और मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूं इस विचारके लिये कभी भी समय नहीं निकलता है

सवैया-३१ सा.-जैसे महा धूपकी तपतिमैं तिसायौ मृग, भरमसौं मिथ्याजल पीवनेकौं धा है। जैसे अंधकार मांहि जेवरी निरखि नर, भरमसौं डरपि सरप मानि आयौ है ॥ अपने स्वभ जैसे सागर है थिर सदा, पवन संयोगसौं उछरि अकुलायौ है। तैसे जीव जड़सौं अव्यापक स रूप, भरमसौं करमकौ करता कहायौ है ॥ १४ ॥

वसंततिलकाछंद-ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो, जानाति हंस इव वाःपयसोर्विशे
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो, जानीत एव हि करोति न किंचनापि ॥१

खंडान्वय सहित अर्थ-यः तु परात्मनोः विशेषं जानाति-यः तु कहतां जो व सम्यग्दृष्टी जीव, पर कहतां द्रव्यकर्म पिंड, आत्मा कहतां शुद्ध चैतन्य मात्र, तिहिकौ वि कहतां भिन्नपनो, जानाति कहता अनुभवे छे, किसै करि अनुभवे छे, ज्ञानात् विवेचकतय ज्ञानात् कहतां सम्यग्ज्ञान थकी, विवेचकतया कहतां लक्षणभेद करि, ताकौ व्यौरो-शुद्ध चै न्य मात्र जीवकौ लक्षण, अचेतनपनौ पुद्गलकौ लक्षण, तिहि तहिं जीव पुद्गल भिन्न भिन्न इसौ भेद भेदज्ञान कहिजै। दृष्टांत कहिजे छे। वाः पयसोः हंस इव-वाः कहतां पानी कहतां दूध, हंस इव कहतां हंसकी नाई। भावार्थ इसौ-जो यथा हंस दूध पानी भिन्न करे छे तथा जो कोई जीव पुद्गल भिन्न भिन्न अनुभवे छे। स जानीत एव किंचनापि करोति स कहतां सो जीव, जानीत एव-ज्ञापक तौ छे, किंचनापि कहता परमाणु मात्र फु न करोति कहतां करता तो न छे। कैसा है ज्ञानी जीव, स सदा अचलं चैतन्यध विरूढः-कहतां वह सदा निश्चल चैतन्य धातुमय आत्माके स्वरूप विषै दृढ़ता करि रह्या

भावार्थ-यहां बताया है कि जैसे हंस दूध व पानीका भेदविज्ञान रखता हुआ दूध पीता है व पानीको छोड़ देता है, वैसे सम्यग्दृष्टी जीव शुद्ध आत्माको ग्रहण करता है परभावोंको छोड देता है-वह परभावोंका ज्ञाताद्रष्टा मात्र रहता है, कर्ताधर्ता नहीं होता

अमुक कर्मने ऐसा फल दिया यह जानता मात्र है कर्मको व कर्मके फलको अपनाता नहीं है। ऐसे ज्ञानीको भेदज्ञानके प्रतापसे अपनापना अपने शुद्ध स्वरूपमें ही प्रगट होता है।

तत्वज्ञान०में कहा है-

ये नरा निरहंकारं वितन्वंति प्रतिक्षणं। अद्भुतं ते स्वचिद्रूपं प्राप्नुवंति न संशयः ॥४।१०॥

भावार्थ-जो ज्ञानी मानव प्रति समय परभावोंमें अहंकार बुद्धि नहीं करते हैं वे विना संशयके अनुपम ऐसे अपने शुद्ध चैतन्य भावका आनन्द पाते हैं।

सवैया ३१ सा-जैसे राजहंसके वदनके सपरसत देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है ॥ तैसे समकितीकी सुदृष्टिमें सहज रूप न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारो ही शरीर है ॥ जब शुद्ध चेतनके अनुभौ अभ्यासे तब भासे आप अचल न दूजो और सीर है ॥ पूरव करम उदै आइके दिखाई दई, कर्ता न होय तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

मंदाक्रांता छंद-ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था,

ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।

ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः,

क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिंदती कर्तृभावम् ॥ १५ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-ज्ञानात् एव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः क्रोधादेः च भिदा प्रभवति-ज्ञानात् एव कहता शुद्ध स्वरूप मात्र वस्तुको अनुभव करता ही, स्वरस कहता चेतना स्वरूप तिहि करि विकसत् कहता प्रकाशमान छे, नित्य कहतां अविनश्वर इसो जो, चैतन्यधातो कहता शुद्ध जीव स्वरूपको, क्रोधादेश्च कहता जावत अशुद्ध चेतना रूप रागादि परिणामको, भिदा कहता भिन्नपनो, प्रभवति कहता होइ छे। भावार्थ इसौ-जो सावत जीव द्रव्य रागादि अशुद्ध चेतना रूप परिणयो छे, सो तो इसौ प्रतिभासे छे, जो ज्ञान क्रोध रूप परिणयो छे, सो ज्ञान भिन्न क्रोध भिन्न इसौ अनुभवता अति ही कठिन छे। उत्तर इसौ जो साचो ही कठिन छै, पर वस्तुको शुद्ध स्वरूप विचारतां भिन्नपनौ स्वाद आवइ छे। किसो छै भिदा। कर्तृभाव भिंदती-कर्तृभाव कहतां कर्मको कर्ता जीव इसी भ्रांति तिहिको, भिंदती कहता मूल सहि दूर करै छे। दृष्टांत कहिजै छे। एव ज्वलनपयसो औष्ण्यशैत्यव्यवस्था ज्ञानात उल्लसति-एव कहता यथा, ज्वलन कहतां आगि, पयसो कहतां पानी त्यहको, उष्ण कहतां उनारो, शैत्य कहतां शीतपनो त्यहकी, व्यवस्था कहतां भेद ज्ञान न कहता निजस्वरूप ग्राही ज्ञान थको, उल्लसति कहतां प्रगट होइ छ। भावाथ इसो यथा आगि संयोग करि पानी तातो कीजै छे, कहता पुनि तातो पानी इसो कहिजे छे तथापि स्वभाव विचारतां उष्णपनो आगिको छे, पानी तौ स्वभाव करि शाजी छे इसौ भेदज्ञान विचारता उपजै छे। और दृष्टांत-एव लवणस्वादभेदव्युदासः,

ज्ञानात् उल्लसति–एन रूढ़ा यथा, लवण कहतां खारो रस तिहकौ, स्वाद भेद कहतां व्यंजनतहिं भिन्नपनौ करि खारो लोणको स्वभाव इसो जानपनो तिह करि, व्युदासः कहतां व्यंजन खारो इसो कहिए जो जानिजे थो सो छूटयो। ज्ञानात् कहतां निज स्वरूपकी जानिपनो तिहि थकी, उल्लसति कहता प्रगट होइ छे। भावार्थ इसो–जो यथा लवणके संयोग व्यंजन समारिजे, खारो व्यंजन इसो कहता कहिजे छे, जानिजे फुनि छे, स्वरूप विचारता खारो लोन, व्यंजन जिसो छे तिसो ही छे।

भावार्थ–यहां भी भेदज्ञानके दो दृष्टांत दिये हैं। आगके संयोगसे पानी गर्म होता है उसे गर्म पानी कहा भी जाता है। परन्तु गरमी जलका स्वभाव नहीं है, जलका स्वभाव शीतल है। साग भाजी नमक डालकर बनाते हैं स्वाद लेते हैं और ऐसा मानते हैं कि यह भाजी बहुत ही स्वादिष्ट है। वास्तवमें जो नमकका स्वाद है वही व्यंजनमें झलकता है। समझदार सागके स्वादको व नमकके स्वादको भिन्न२ जानता है. इसी तरह भेदज्ञानी महात्मा क्रोधके स्वादको और आत्माके ज्ञानानन्दमय स्वभावको भिन्न२ ही अनुभव करते हैं। क्रोधादिका मैं कर्ता इस भ्रांतिको कभी भी नहीं प्राप्त होते हैं। क्रोधादि कर्मजनित विकार है, क्रोध कषायका अनुभाग है, पुद्गल है, मेरा स्वभाव नहीं है, ऐसा भलेप्रकार जानते हैं। तत्वज्ञान०में कहा है–

चेतनाचेतने रागो द्वेषो मिथ्यामतिर्मम। मोहरूपमिदं सर्वं चिद्रूपोऽहं हि केवलः॥ ४५॥

भावार्थ–चेतन व अचेतन पदार्थोंमें राग व द्वेष करना मिथ्या बुद्धि है, यह सब मोहका प्रभाव है, मैं तो शुद्ध चैतन्य रूप हूं, मोहसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

सवैया ३१ सा—जैसे उपणोदकमें उदक स्वभाव सीत, आगकी उपणता फरस ज्ञान लखिये। जैसे स्वाद व्यंजनमें दीसत विविधरूप, लोणको सुवाद खारो जीभ ज्ञान चखिये॥ तैसे घट पिंडमें विभावता अज्ञानरूप ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानसों परखिये। भरमसों करमको करता है चिदानंद दरब विचार करतार नाम नखिये॥ १६॥

श्लोक–अज्ञानं ज्ञानमप्येवं कुर्वन्नात्मानमञ्जसा।
स्यात्कर्तात्मात्मभावस्य परभावस्य न क्वचित्॥१६॥

खंडान्वय सहित अर्थ–एवं आत्मा आत्मभावस्य कर्ता स्यात्–एवं कहतां सर्वथ प्रकार, आत्मा कहतां जीव द्रव्य, आत्मभावस्य कर्ता स्यात् कहतां आपणां परिणामको कर्ता होइ। परभावस्य कर्ता न क्वचित् स्यात्–परभावस्य कहता कर्मरूप अचेतन पुद्गल द्रव्यकौ, कर्ता क्वचित् न स्यात् कहतां कबहू तीनिहू काल कर्ता न होइ। किसो छे आत्मा ज्ञानं अपि आत्मानं कुर्वन्–ज्ञान कहतां शुद्ध चेतन मात्र प्रगट रूप सिद्ध अवस्था, अपि कहता तिहको फुनि, आत्मानं कुर्वन् कहता अपुनपै तद्रूप परिणवै छे। और किसो छे

अज्ञाने अपि आत्मान कुर्वन्-अज्ञान कहता अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम, अपि कहतों तिहिरूप पुनि, आत्मान कुर्वन् कहता आपुनिंप तद्रूप परिणवतो होतो। भावार्थ इसौ जो जीवद्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणवै छै, शुद्ध चेतनारूप परिणवै छै, तिहितै तिहि काल जिसो चेतनारूप परिणवै छै तिहि काल तिसी ही चेतना सहु व्याप्य व्यापकरूप छै, तिहितैं तिहि काल तिसी ही चेतनाको कर्ता छे। तौ पुनि पुद्गल पिंडरूप छे ज्ञानावरणादि कर्म स्यहसी तो व्याप्य व्यापकरूप नहीं। तिहितै स्यहको कर्ता न छे। अनसा-कहतां समस्तपनै इसौ अर्थ छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि आत्मा अपने ही चेतनमई भावोंका कर्ता होसक्ता है, पुद्गलका किसी भी तरह उपादान कर्ता नहीं होसक्ता है। जब पर निमित्त मोहनी कर्मका नहीं होता है तब तो आत्मा अपने शुद्ध आत्मीक ज्ञानरूप भावोंमें ही परिणमन करता है तथा जब मोहनीय कर्मका उदय निमित्त होता है तब अशुद्ध चेतना रूप परिणमन करता है।

दोहा—ज्ञान भाव ज्ञानी करै अज्ञानी अज्ञान। द्रव्यकर्म पुद्गल करै यह निज परमाण ॥१७॥

श्लोक-आत्मा ज्ञान स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किं।

परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ १७ ॥

खडान्वय सहित अर्थ आत्मा ज्ञान करोति-आत्मा कहता चेतन द्रव्य, ज्ञान कहतां चेतना मात्र परिणाम, करोति कहतां करै छे। किसा थकी, स्वयं ज्ञान-कहता जिहिकारण तहि आत्मा आपुनिंप चेतना परिणाम मात्र स्वरूप छे। ज्ञानात् अन्यत् करोति किं-ज्ञान तु अचेतन कहता चेतन परिणाम तहि भिन्न अचेतन पुद्गल परिणाम कर्म तिहिको, किं करोति कहता कर कांगो, अपि तु न करोति-सर्वथा न करै। आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणं मोह -आत्मा कहता चेतन द्रव्य, परभावस्य कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको करै छे अयं कहता इसी जानपनी, इसौ कहिबो, व्यवहारिणां मोह कहता मिथ्यादृष्टि जीवको अज्ञान छे। भावार्थ इसो जो कहिवको इसो-छ जो ज्ञानावरणादि कर्मको कर्ता जीव छे, सो कहिवो पुनि झूठो छे।

भावार्थ-इसमें भी यही बात बताई है कि जब आत्मा ज्ञान स्वरूप है तब उसके चैतन्यमई भावका ही होना सम्भव है, वह किसी भी तरह पुद्गलकी अवस्थाका उपादान कारण नहीं होसक्ता है।

दुहा—ज्ञान स्वरूपी आतमा करै ज्ञान नहि और। द्रव्यकर्म चेतन करै यह व्यवहारी दौर ॥१८॥

वसंततिलका छंद-जीवः करोति यदि पुद्गलकर्म नैव कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।

एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय संकीर्त्यते शृणुत पुद्गलकर्मकर्तृ ॥१८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-पुद्गलकर्मकर्तृ संकीर्त्यते-पुद्गल कर्म कहतां द्रव्य

आठ कर्म त्यइको, कर्त्ता कहतां कर्ता, संकीर्त्यते कहता ज्यों छे त्यों कहिजे छे। शृणुत कहतां सावधान होइ करि तुह सुणहु। प्रयोजन कहिजे छे। एतर्हि तीव्ररयमोहनिवर्हणाय-एतर्हि कहता एतो वेलां, तीव्ररय कहतां दुर्निवार उदय छे जिहि को इसो जो मोह कहतां विपरीत ज्ञान तिहिंकै, निवर्हणाय कहतां मूलतहि दूर करिवाके निमित्त। विपरीतपनो किसे करि जानिजे छे। इति अभिशङ्कया एव-इति कहतां ज्यों करिजे छे, अभिशकया कहतां आशंका करि. एव कहतां निहचासो। सो आशंका किसी छे। यदि जीव एव पुद्गल कर्म न करोति तर्हि कः तत् कुरुते-यदि कहतां जो, जीव एव कहतां चेतन द्रव्य, पुद्गल कर्म कहतां पिंडरूप आठ कर्मको, न करोति कहतां नहीं करइ छे, तर्हि कहतां जो कः तत् कुरुते कहतां कौन करै छे। भावार्थ इसो-जो जीवके करतां ज्ञानावरणादि कर्म होइ छे। इसी भ्रांति उपजै छे। तिहि प्रति उत्तर इसो जो पुद्गलद्रव्य परिणामी छे। स्वयं सहज ही कर्मरूप परिणवे छे।

भावार्थ-यहांपर शिष्यकी इस शंकाका खुलासा है कि यदि ज्ञानावरणादि आठ कर्मका उपादान कर्ता जीव नहीं है तो कौन है, इसीका समाधान करेंगे। ये आठ कर्म पुद्गलमई हैं इसलिये इनका उपादान कर्ता भी पुद्गल है।

सवैया २३ सा—पुद्गल कर्म करे नहिं जीव, कही तुम मैं समझी नहिं तैसी। कौन करे यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी॥ आप ही आप मिले बिछुरे जड़, क्यों करि मो मन संशय ऐसी। शिष्य संदेह निवारण कारण, बात कहे गुरु है कछु जैसी॥१९॥

उपजाति-स्थितेत्यविघ्ना खलु पुद्गलस्य स्वभावभूता परिणामशक्तिः।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यमात्मनस्तस्य स एव कर्त्ता ॥१९॥

खंडान्वयसहित अर्थ-इति खलु पुद्गलस्य परिणामशक्तिः स्थिता-इति कहतां एवं प्रकार, खलु कहतां निहचासों। पुद्गलस्य कहतां मूर्ति द्रव्यको, परिणामशक्तिः कहतां परिणमन स्वरूप स्वभाव, स्थिता कहतां अनादिनिधन छती छे। किसी छे-स्वभावभूता कहतां सहज थकी है, और किसी छे। अविघ्ना कहता निर्विघ्नपने छे। तस्यां स्थितायां सः आत्मनः यं भावं करोति स तस्य कर्ता भवेत्-तस्यां स्थितायां कहतां तिस परिणाम शक्तिके होते संते, स कहतां पुद्गल द्रव्य, आत्मनः कहतां आपणा अचेतन द्रव्य सम्बन्धी, यं भावं करोति कहतां जिहि परिणाम कहुं करे छे, स कहतां पुद्गलद्रव्य, तस्य कर्ता भवेत् कहतां तिहि परिणामको कर्ता होइ। भावार्थ-इसो जो ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलद्रव्य परिणवै छे, तिहि भावको कर्ता फुनि पुद्गलद्रव्य होइ॥ १९॥

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जितने मूल छः द्रव्य हैं वे सब अपने ही गुणोंमें परिणमन करते रहते हैं। पुद्गलद्रव्य कार्मणवर्गणा तीन लोकमें व्याप्त है वे स्वय ही जीवोंके

अशुद्ध भावोंका निमित्त पाकर ज्ञानावरणादि कर्मरूप होजाती हैं। इसलिये द्रव्यकर्मका उपादानकर्ता पुद्गल है यही निश्चय करना चाहिये–मिट्टीसे घड़ा बनता है, वह घड़ा मिट्टीको छोड़कर और कुछ नहीं है। रुईसे कपड़ा बनता है, कपड़ा रुईको छोड़कर और कोई अन्य द्रव्य नहीं है। हरएक द्रव्य स्वयं रूपान्तर होता है, यह शक्ति उसमें अनादिकालसे है।

दोहा—पुद्गल परिणामी स्वयं सदा परणवै सोय। याते पुद्गल कर्मका पुद्गल कर्ता होय ॥२ ॥

उपजाति छंद-स्थितेति जीवस्य निरन्तराया स्वभावभूता परिणामशक्ति ।
तस्यां स्थितायां स करोति भावं यं स्वस्य तस्यैव भवेत्स कर्ता ॥२०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-जीवस्य परिणामशक्तिः स्थिता इति-जीवस्य कहता चेतनद्रव्यको, परिणाम शक्ति कहता परिणमनरूप सामर्थ्य, स्थिता कहतां अनादि तहि छती छे। इति कहता इसी द्रव्यको सहज छे। स्वभावभूता-जो शक्ति, स्वभावभूता कहता सहज तहि छे, औरु किसी छ, निरन्तराया-कहता प्रवाहरूप छे, एक समय मात्र खंड नहीं। तस्यां स्थितायां-कहता तिहि परिणाम शक्तिको होते सते, स स्वस्य यं भावं करोति-स कहतां जीव वस्तु, स्वस्य कहता आप सम्बधी, यं भावं कहता जो कोई शुद्ध चेतना रूप अशुद्ध चेतनारूप परिणाम, करोति कहता करे छे। तस्य एव स कर्ता भवेत्-तस्य कहतां तिहिं परिणामको, एव कहता निहचासों, स कहता जीव वस्तु, कर्ता कहता करण शील, भवेत् कहतां होइ छे। भावार्थ इसो-जो जीव द्रव्यको अनादि निधन परिणमन शक्ति छे ॥ २० ॥

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जीव द्रव्य भी अनादिसे परिणमनशील है-इसका भी यह स्वभाव है, तब ही यह जगतमें झलकरहा है और यह अनेकप्रकार भावोंको करता है। कभी अशुद्ध रागद्वेष भावोंमें परिणमन कर जाता है कभी शुद्ध शांत भावोंमें परिणमन करता है-जब कर्मोदय निमित्त होता है तब अशुद्ध चेतन्य भावोंमें परिणमता है। परन्तु जब कर्मोदय निमित्त नहीं होता है तब अपने शुद्ध ज्ञानानंदमें ही परिणमन करता है।

दोहा—जीव चेतना संजुगत सदा पूरण सब ठौर। तातें चेतन भावको, कर्ता जीव न और ॥२०॥

आर्या छंद-ज्ञानमय एव भावः कुतो भवेद् ज्ञानिनो न पुनरन्यः ।
अज्ञानमयः सर्वः कुतोऽयमज्ञानिनो नान्यः ॥ २१ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-इहां कोई प्रश्न करै छे। ज्ञानिनः ज्ञानमय एव भावः कुतः भवेत् पुनः न अन्यः-ज्ञानिनः कहता सम्यग्दृष्टिको, ज्ञानमय एव भाव कहता भेदविज्ञान स्वरूप परिणाम, कुतो भवेत्-कौन कारण थकी होइ, न पुनः अन्य कहतां अज्ञानरूप न होइ। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टि जीव कर्मको उदय भोगवतां वि-

रागादिरूप परिणवै छे। सो ज्ञान भावको कर्ता छे, और ज्ञान भाव छे अज्ञान भाव नहीं सो किसा छे। इसी कोई पूछे छे। अयं सर्व अज्ञानिनः अज्ञानमयः कुतः न अन्यः- अय कहता परिणाम, सर्वः कहतां जावंत परिणमन, अज्ञानिनः कहतां मिथ्यादृष्टिको, अज्ञानमयः कहतां अशुद्ध चेतनारूप बन्धको कारण होइ, कुतः कोई प्रश्न करे छे, इसी सो किसा छे, न अन्यः कहता ज्ञान जातिको न होय। भावार्थ इसौ–जो मिथ्यादृष्टिको जो कछु परिणाम सो बंधको कारण छे।

भावार्थ-यहां किसीने प्रश्न किया कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है उसके भी रागद्वेष भाव होते हैं तौभी उसको ज्ञानी ही कहते हैं और मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है उसके भी वैराग्यभाव होते हैं तौभी उसको अज्ञानी ही कहते हैं, इसका क्या कारण है?

अडिल्ल—ज्ञानवन्तको भोग निर्जरा हेतु है। अज्ञानीको भोग बन्ध फल देतु है॥
यह अचरजकी बात हिये नहि आवही। पूछे कोऊ शिष्य गुरु समझावही॥२१॥

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वे भावा भवन्ति हि।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिनस्तु ते॥ २२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–हि ज्ञानिनः सर्वे भावाः ज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति–हि कहतां निहचासैं, ज्ञानिन. कहता सम्यग्दृष्टिको, सर्वे भावाः कहतां जेता परिणाम छे, ज्ञाननिर्वृत्ताः भवंति कहता ज्ञान स्वरूप होइ। भावार्थ इसौ–जो सम्यग्दृष्टिको द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणयो छे। तिहितै सम्यग्दृष्टिको जो कोई परिणाम होइ सो ज्ञानमय शुद्धत्व जाति रूप होइ, कर्मको अबंधक होइ। तु ते सर्वे अपि अज्ञानिनः अज्ञाननिर्वृत्ताः भवन्ति–तु कहतां यौं फुनि छे, ते कहतां यावन्त परिणाम सर्वे अपि शुभोपयोग रूप अथवा अशुभोपयोग रूप। अज्ञानिनः कहतां मिथ्यादृष्टिको, अज्ञाननिवृत्ताः कहतां अशुद्धत्व करि निपज्या छे, भवंति कहतां छता छे। भावार्थ इसौ–जो सम्यग्दृष्टि जीवको मिथ्यादृष्टी जीवको क्रिया तो एकसी छे, क्रिया सम्बंधी विषय कषाय फुनि एकसा छै; परि द्रव्यको परिणमन भेद छै। क्यौरो-सम्यग्दृष्टिको द्रव्य शुद्धत्वरूप परिणयौ छे तिहितै जो कोई परिणाम बुद्धिपूर्वक अनुभवरूप छे अथवा विचार रूप छे अथवा व्रत क्रियारूप छे अथवा भोगाभिलाष रूप छे अथवा चारित्रमोहके उदय क्रोध, मान, माया, लोभ रूप छे सो सगलो ही परिणाम ज्ञान जाति माहैं घटै, जिहितै जो कोई परिणाम छे सो संवर निर्जराको कारण छे इसो ही काई द्रव्य परिणमनको विशेष छे। मिथ्यादृष्टिको द्रव्य अशुद्धरूप परिणयो छे तिहितइ जो कोई मिथ्यादृष्टिको परिणाम अनुभव रूप तो छतो ही नहीं तातहिं सूत्र सिद्धांतको पाठ रूप छे, अथवा व्रत तपश्चरण रूप छे अथवा दान पूजा दया शील रूप छै। अथवा

भोगाभिलाष रूप छे अथवा क्रोध, मान, माया, लोभ रूप छे। इसो सगलो परिणाम अज्ञान जातिको छे जातहिं बंधको कारण छे संवर निर्जराको कारण नहीं, इसको इसो ही परिणमन विशेष छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टीके भावोंमेंसे अनंत संसारका कारण बंध करानेवाले मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायका उदय नहीं रहा है। इसलिये उसके भावोंकी जाति ऐसी निर्मल होगई है कि उसके सर्व ही भाव सम्यग्दर्शनके भावसे शून्य नहीं होते—उसके भीतर भेदविज्ञान जगा करता है, वह सदा अपनी शुद्ध परिणतिको ही अपना समझता है। इसके सिवाय कर्मोंके उदयसे—तीव्र या मंदकषायसे जो योगाभिलाषरूप व दान पूजा जप तप रूप भाव होते हैं उनको अपना निज भाव नहीं समझता है। वह कर्मजन भावोंको नाटकके देखनेवालेके समान देख लेता है। उनमें रंजायमान नहीं होता है, हेय ही समझता है, इससे उसके उदय प्राप्त कर्म झड़जाते हैं। उसके संसारको कारणरूप ऐसा कर्मबंध नहीं होता है। मिथ्यादृष्टी जीवके भावोंमें सदा ही मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी कषायका उदय रहता है, जिससे उसके भीतर आत्मानुभवकी गंध भी नहीं—उसके भावोंमें शुद्ध आत्माका ज्ञान श्रद्धान नहीं। उसके विषय कषायके त्यागकी यथार्थ बुद्धि नहीं उपजती है, इससे उसके भोगोंकी आशक्तता होती है। तप जप आदि भी इन्द्रियजनित सुखकी इच्छाको पानेके भावसे ही करता है, उसको शुद्ध अतींद्रिय आनंदकी पहिचान नहीं है। इसलिये उसका ममत्व संसारकी ही ओर है इसलिये उसके उदय प्राप्त कर्म मात्र झड़ते ही नहीं हैं किन्तु नवीन तीव्र बंध भी करा देते हैं। सम्यग्दृष्टीका स्वामित्व संसारसे हट गया है, मिथ्यादृष्टी संसारका अधिपति बना रहता है इसीसे क्रिया एक होनेपर भी सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है मिथ्यादृष्टी अज्ञानी है। तत्व०में कहा है—

> शुद्धचिद्रूपके [illegible] । [illegible] मतो यथा ॥ १२ ॥
> स्मरन् स्वशुद्धचिद्रूपं कुर्यात् [illegible] । तथापि [illegible] ॥१२।१४॥

भावार्थ—जो कोई शुद्ध आत्मानंदमें प्रेमालु है और संसार शरीरभोगोंसे उदास है वह राज्य करता हुआ भी भरत चक्रवर्तीके समान कर्मोंसे बंधता नहीं है। सम्यग्दृष्टी बुद्धिमान ज्ञानी अपने शुद्ध आत्मस्वरूपको स्मरण करते हुए यदि सैकड़ों भी लौकिक कार्य करे तोभी अशुभ कर्मोंसे जो संसारके कारण हैं उनसे नहीं बंधता है।

सवैया ३१ सा—[illegible] ॥ २७ ॥

श्लोक—अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकाः।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुताम ॥ २३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इसो कह्यो छे सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टी जीवकी बाह्य क्रिया तो एकसी छे, परि द्रव्य परिणमन विशेष छे। सो विशेषको अनुसार दिखाइजे छे। सर्वथा तो प्रत्यक्ष ज्ञान गोचर छे। अज्ञानी द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानां हेतुतां एति—अज्ञानी कहतां मिथ्यादृष्टी जीव, द्रव्य कर्म कहतां धारा—प्रवाहरूप निरंतरपनें बंधे छे। पुद्गल द्रव्यको पर्याय रूप कार्मण वर्गणा ज्ञानावरणादि कर्म पिंडरूप बन्धे छे। जीवका प्रदेश सो एक क्षेत्रावगाही छे। परस्पर बध्यबंधक भाव फुनि छे, तिहिको निमित्तानां कहता बाह्य कारण रूप छे। इमा भावाना कहतां मिथ्यादृष्टिको मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणाम। भावार्थ इसौ—जो यथा कलशरूप मृतिका परिणवे छे। यथा कुम्भकारको परिणाम करि वाका बाह्य निमित्त कारण छे, व्याप्य व्यापक रूप न छे तथा ज्ञानावरणादिक कर्म पिंडरूप पुद्गलद्रव्य स्वयं व्याप्य व्यापकरूप छे तथापि जीवका अशुद्ध चेतनरूप मोह रागद्वेषादि परिणाम बाह्य निमित्त कारण छे, व्याप्य व्यापकरूप तो न छे। त्यह परिणामहके हेतुता कहतां कारणपनो, एति कहतां आप परिणवे छे। भावार्थ इसौ—जो कोई जानिसे जीव द्रव्य तो शुद्ध छे उपचार मात्र कर्मबंधको कारण होइ छे सो यों तो नहीं। आपणपे मोह रागद्वेष अशुद्ध चेतना परिणामरूप परिणवे छे, तिहितें कर्मोंको कारण छे। मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्धरूप ज्यों परिणवे छे त्यों कहिजे छे। अज्ञानमयभावानां भूमिकाः प्राप्य—अज्ञानमय कहतां मिथ्यात्व जाति इसा छे, भावानां कहता कर्मके उदयकी अवस्था, त्यहकी भूमिकाः कहतां त्यहके पावतां अशुद्ध परिणाम होइ छे इसी संगति, प्राप्य कहतां पाइ करि मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध परिणामरूप परिणवे छे। भावार्थ इसौ—जो द्रव्य कर्म अनेक प्रकार छे त्यहको उदय अनेक प्रकार छे। एक कर्म इसो छे जिहिंके उदय शरीर होइ छे, एक कर्म इसो छे जिहिंके उदय मन वचन काय होहि छे, एक कर्म इसो छे जिहिके उदय सुख दुःख होइ छे, इसो अनेक प्रकार कर्मको उदय होतां मिथ्यादृष्टि जीव कर्मका उदयको आपो करि अनुभवे छे, तिहितै रागद्वेष मोह परिणाम होहि छे, तिहि करि नूतन कर्मबंध होइ छे। तिहितै मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध चेतन परिणामको कर्ता, जिहितै मिथ्यादृष्टि जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव नही तिहितै कर्मको उदय कार्य आपो करि अनुभवे। यथा मिथ्यादृष्टिके उदय छे कर्म, त्योंही सम्यग्दृष्टिके फुनि छे। परि सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव छे। तिहितै कर्मका उदयको कर्म जाति अनुभवे छे। आपको शुद्ध स्वरूप अनुभवे छे। तिहितै कर्मका उदयको नहीं रजे छे, तिहितै रागद्वेष मोहरूप नहीं

परिणवै छे। निहित कमबंध नहीं होइ छे, तिहितैं सम्यग्दृष्टि अशुद्ध परिणामको कर्ता नहीं छै। इमो विशेष छे।

भावार्थ—यहां बताया है कि मिथ्यादृष्टि जीवके ऐसा कोई मिथ्यात्व व कषायका उदय है जिसके कारण जो जो अवस्था कर्मके उदयके निमित्तसे होती है उनको अपनी ही मान लेता है। उसके यह भेद विज्ञान नहीं है कि आत्माका गुण व परिणमन क्या है। तथा पुद्गल कर्मका गुण व परिणाम क्या है। वास्तवमें संसारके कारणीभूत मोह व रागद्वेष भाव मिथ्यादृष्टि जीवके ही होते हैं। मिथ्यात्व कर्मके उदयके भावको मोह, अनन्तानुबंधी कषायके उदयके भावको रागद्वेष कहते हैं। इनसे मदिराके मदकी तरह मूर्छित होता हुआ मैं कर्ता मैं भोक्ता मैं सुखी मैं दुःखी मैं राजा मैं रंक मैं जीता मैं मरता, मैं रोगी मैं शोकी, इत्यादि परिणामोंको करता रहता है। इसलिये वह अशुद्ध भावोंका करनेवाला स्वामी या अधिकारी हो जाता है। उसको अपने शुद्ध चेतन भावोंकी खबर ही नहीं है। बस ये ही राग द्वेष मोह तीव्र नूतन कर्मबंधके लिये बाहरी कारण होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव बाहरमें उन ही कार्मोंको कदाचित् करता दिखलाई पड़ता है जिनको मिथ्यादृष्टी जीव करता है, तथापि उसके हृदयमें सम्यग्ज्ञानकी दीपिका है जिससे वह कर्मके उदयको कर्मकृत जानता है—उसको अपना नहीं मानता है। इसीसे मिथ्यादृष्टीके जो राग द्वेष मोह होता है वह सम्यग्दृष्टीके बिलकुल नहीं होता है। वह जगतके प्रपंचको नाटक देखता हुआ ज्ञाता दृष्टा रहता है, आसक्त नहीं होता इसीसे स्वात्महितसे वंचित नहीं रहता है—वास्तवमें जीवके अशुद्ध चेतनरूप परिणाम बाहरी निमित्त है, उनको पाकर स्वयं ही कर्म पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं। जैसे कुम्भकारके भावोंका निमित्त पाकर मिट्टीके पुद्गल स्वयं घटरूप परिणमन कर जाते हैं। घट मिट्टीसे व्याप्य व्यापक सम्बन्ध रखता है। जीव अपने परिणामोंसे व्याप्य व्यापक सम्बन्ध रखता है। सम्यग्दृष्टि जीवको अशुद्ध व शुद्ध चेतन भावोंका भी भलेप्रकार ज्ञान है। इसीसे वह मूढ़ नहीं कहलाता है। वह ऐसा पक्का ज्ञान रखता है, जैसा—तत्वज्ञान०में कहा है—

अहं किंचित्र न किंचित् शुद्धचिद्रूपकं विना तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा तत्र लयं भजे ॥ १।४ ॥

भावार्थ—इस जगतमें सिवाय शुद्ध चिद्रूपके मैं अन्य किसी रूप नहीं हूं, न मैं कोई और हूं। इसलिये दूसरे पदार्थोंके लिये चिंता करना वृथा है। मैं एक शुद्ध आत्म-स्वभावमें ही लय होता हूं—

सवैया—ज्यों माटी मांहि कलश होनेकी शक्ति रहै ध्रुव। दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हर ॥ त्यों पुद्गल परमानु पुंज वर्गणा भेष धरि। ज्ञानावरणादिक स्वरूप, विचरन्त

विविध परि ॥ चाहिज निमित्त उहिनगतता, गति नाम ... आनमनि। जगमाहि अदहन भाव कर्मरूप व्है परिणमति ॥ २३ ॥

उपेन्द्रवज्रा छंद-य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं।
विकल्पजालच्युतशान्तिचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४॥

खंडान्वय सहित अर्थ-ये एव नित्यं स्वरूपगुप्ता निवसंति ते एव साक्षात अमृतं पिबंति-ये एव कहतां ये कोई जीव, नित्यं कहतां निरतरपने, स्वरूप कहतां शुद्ध चेतन मात्र वस्तु तिहिविषै, गुप्ता. कहता तन्मय छै। निवसंति कहतां इसा होता तिष्टै छै, ते एव कहता तेई जीव, साक्षात अमृतं कहतां अतीन्द्रिय सुख, पिबंति कहता आस्वाद करै छै, कायोंकरि। नयपक्षपातं मुक्त्वा-नय कहता द्रव्य पर्याय रूप विकल्प बुद्धि तिहिको, पक्षपातं कहतां एक पक्षरूप अंगीकार, तिहिको मुक्त्वा कहतो छोड़िकरि। किसा छै ते जीव विकल्पजालच्युतशांतचित्ताः-विकल्प जाल कहता एक सत्त्वको अनेक रूप विचार तिहिते च्युत कहता रहित हुवो छे, इसो छै, शांतचित्ता निर्विकल्प समाधान मन जयहि इसा छे। भावार्थ इसो-जो एक सत्त्व वस्तु तिहिको द्रव्य गुण पर्याय रूप, उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप विचारतां विकल्प होइ छै। तिहि विकल्प होतां मन आकुल होइ छै, आकुलता दुःख छै तिहितै वस्तु मात्र अनुभवतां विकल्प मिटै छै। विकल्प मिटता आकुलता मिटै छे। आकुलता मिटतां दुख मिटै छे। तिहितै अनुभवशीली जीव परम सुखी छै।

भावार्थ-यहां बताया है कि ज्ञानी जीवको निश्चय या व्यवहार नयसे वस्तुका स्वरूप यथार्थ समझकर निश्चिन्त होजाना चाहिये। फिर विचार करना बन्द करके अपने शुद्ध स्वरूपमें रमण करना चाहिये। यही स्वानुभव है, यही सर्वदुःख मोचन उपाय है, यही आनन्ददायक अपूर्व भाव है, यही उपादेय है। तत्त्वज्ञान०में कहा है—

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानन्दमये सदा। स्वे तिष्ठति तदा स्वस्थ कथ्यते परमार्थत ॥ १३।६ ॥

भावार्थ-जब यह अपने शुद्ध असहाय व नित्य आनंदमय चेतन स्वभावमें ठहर जाता है तब ही इसे वास्तवमें स्वस्थ कहते हैं-अनुभव कर्ता ही स्वस्थ है, स्वरूप मगन है, व निरोगी है, क्रोधादि रोगोंसे शून्य है।

सवैया २३ सा—जे न करें नय पक्ष विवाद, धरें न विषाद अलीक न भाखे ॥ जे उद्वेग तजे घट अन्तर, सीतल भाव निरन्तर राखे ॥ जे न गुणी गुण भेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखे। ते जगमें धरि आतम ध्यान, अखण्डित ज्ञान सुधारस चाखे ॥ २४ ॥

उपेन्द्र वज्राछंद-एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२५॥

खंडान्वय सहित अर्थ-चिति द्वयोः इतिद्वौ पक्षपातौ-चिति कहता चेतन्य मात्र

वस्तुविषे, द्वयो कहता द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दोय नयके, इति कहता इमा छे, द्वौ पक्ष पातौ कहता दुवे ही पक्षपात छे। एकस्य बद्ध तथा अपरस्य न-एकस्य कहता अशुद्ध पर्यायमात्र ग्राहक ज्ञानके पक्ष करता, बद्ध कहतां जीव द्रव्य बन्ध्यो छे। भावार्थ इसौ-जो जीव द्रव्य अनादि तिहि कर्म संजोग सहु एक पर्याय रूप चल्यो आवा छे, विभाग रूप परिणयो छे, इसो एक बंध पर्याय अंगीकार करि ये द्रव्य स्वरूपको पक्ष न करिये तदा जीव बंध्यो छ एक पक्ष इसो छे। तथा कहता दूजे पक्ष, अपरस्य कहता द्रव्यार्थिक नयके पक्ष करता, न कहतां न बंध्यो छे। भावार्थ इसौ-जो जीव द्रव्य अनादि निधन चेतना लक्षण छे, इसौ द्रव्य मात्र पक्ष करता जीव द्रव्य बंध्यो तो नहीं सदा आपणो स्वरूप छे। जानहि कोई ही द्रव्यका ही अन्य द्रव्य गुणपर्याय रूपो नहीं परिणवै छे, सब ही द्रव्य आपणा स्वरूप रूपो परिणवै छे। य तत्त्ववेदी कहता जो कोई शुद्ध चेतन मात्र जीवको स्वरूप अनुभवशील छे जीव, च्युतपक्षपात -कहता सो जीव पक्षपात तहि रहित छे। भावार्थ इसौ-जो एक वस्तुको अनेक रूप कल्पनाकि दिये ताको नाम पक्षपात कहिजै तिहितै वस्तु मात्रको स्वाद आवता कल्पना बुद्धि सहज ही मिटै छे। तस्यचित् चित् एव अस्ति-तस्य कहता शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छे तिहिकै चित् कहता चैतन्य वस्तु, चित एव अस्ति कहतां चेतना मात्र वस्तु छ इसी प्रत्यक्षपनै स्वाद आवै छे।

भावार्थ-नयोंका विचार मात्र पदार्थको समझनेके लिये है। जब पदार्थको जान लिया गया तब इन विकल्पोंके उठानेकी जरूरत नहीं है। उसको एकाग्र होकर अपनी ही शुद्धि आत्म वस्तुका स्वाद लेना चाहिये। स्वाद लेने हुए जैसा है वह वैसा ही झलकता है। वहां तो आनंद मगनता प्रगट होजाती है। यदि विचाररूप डावांडोलपना होगा तो वस्तुका स्वाद नहीं आवेगा। तत्त्वज्ञान•में कहा है—

विकल्पजालजम्बालान्निर्गतोऽयं सदा सुखी। आत्मा तत्र स्थितो दुःखीत्यनुभूय प्रतीयताम् ॥१२४॥

भावार्थ-जब यह आत्मा नानाप्रकारके विचाररूप कादेसे निकल जाता है तब सदा सुखी रहता है और जब उनमें फँस जाता है तब दुःखी होता है। ऐसा अनुभव करके निश्चय करो।

सवैया ३१ सा—व्यवहार दृष्टिसौं विलोकत बंध्योसो दीसै निहचै निहारत न बांध्यो यहु किनही ॥ एक पक्ष बंध्यो एक पक्षसौं अबंध सदा दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इनही ॥ कोउ कहै समल विमलरूप कोउ कहै चिदानन्द तैसा ही बखानो जैसो जिनही ॥ बंध्यो मानै खुल्यो मानै द्वै नयके भेदजान, सोई ज्ञानवंत जीव तत्त्व पायो तिनही ॥ २५ ॥

[इसके बाद २६ से ४८ तकके श्लोक इसलिये छोड़ दिये गये हैं कि उनका प्रायः एकसा अर्थ है।]

वसंततिलका छंद-स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालामेवं व्यतीत्य महतीं नयपक्षकक्षाम्।
अन्तर्बहिस्समरसैकरसस्वभावं स्वं भावमेकमुपयात्यनुभूतिमात्रम् ॥ ४९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एवं (स) तत्ववेदी एकं स्वभावं उपयाति-एवं कहतां पूर्वोक्त प्रकार, स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, तत्ववेदी कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभवशील, एकं स्वभावं उपयाति कहतां एक शुद्ध स्वरूप चिद्रूप आतमा कहु आस्वादे छै। किसो छै आत्मा-अन्तर्बहिःसमरसैकरसस्वभावं-अन्तः कहतां माहइ, बहिः कहतां बाहिर, समरस कहतां तुल्यरूप इसो छै, एकरस कहतां चेतनशक्ति इसो छै, स्वभाव कहतां सहजरूप जिहिको इसो छे। किं कृत्वा कांयो करि शुद्ध स्वरूप पावै छे। नयपक्षकक्षां व्यतीत्य-नय कहतां द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेद, त्यहको पक्षः कहतां अंगीकार त्यहको, कक्षां कहतां समूह छै। अनंत नय विकल्प छे त्यहको व्यतीत्य कहतां दूरि ही तहिं छोड करि। भावार्थ इसो-जो अनुभव निर्विकल्प छे, तिहि अनुभव काल समस्त विकल्प छूटे छे। किसी छे, महतीं कहतां जेता बाह्य अभ्यंतर बुद्धिका विकल्प तेता ही नय भेद। और किसी छै। स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजालां-स्वेच्छां कहतां विन ही उपजाया, समुच्छलत् कहता उपजै छे इसा जे, अनल्प कहता अति बहुत विकल्प, निर्भेद वस्तुविषै भेद कल्पना त्यहको, जालं कहतां समूह छे जिहविषै इसी छे। किसो छै, आत्म-स्वरूप। अनुभूतिमात्र-कहतां अतीन्द्रिय सुख स्वरूप छै।

भावार्थ-यहां बताया है कि स्वानुभव जब होता है तब एक ज्ञान स्वरूप ही आत्मा झलकता है, वहां अनेक भेद रूप विचार नहीं रहते हैं कि यह द्रव्यार्थिक नयसे एक है व पर्यायार्थिक नयसे अनेक है, अथवा यह शुद्ध है या अशुद्ध है, नित्य है या अनित्य है, यह अस्ति रूप है कि नास्ति रूप है, यह अवक्तव्य है या वक्तव्य है। अनेक विचारोंकी तरंगे जबतक होंगी, स्वभावमें थिरता नहीं, थिरता विना आतमस्वाद नहीं, आतमस्वाद विना अनुभव नहीं, अनुभव विना निराकुल अतीन्द्रिय आनन्द नहीं। तत्व०में कहा है-

चलंति सन्मुनीन्द्राणा निर्मलानि मनांसि न, शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानात् सिद्धक्षेत्राच्छिवो यथा ॥ १५।६ ॥

भावार्थ-जिस तरह सिद्धक्षेत्रमें सिद्ध जीव निश्चल रहते हैं उसी तरह उत्तम साधुओके निर्मल मन शुद्ध चिद्रूपके यथार्थ ध्यानसे चलित नहीं होते है-सिद्ध रूपके समान आपमें आप लय होजाते हैं।

सवैया ३१ सा—प्रथम नियत नय दूजो व्यवहार नय, दुहुको फलावत अनत भेद फले है। ज्यों ज्यों नय फैले त्यों त्यों मनके कल्लोल फैले, चचल सुभाव लोकालोकलों उछले है ॥ ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसि भये एकतासों नहि टले है ॥ महा मोह नासे शुद्ध अनुभो अभ्यासे निज, बल परगासि सुखरासी माहि रले है ॥ २६ ॥

रथोद्धता छंद-इन्द्रजालमिदमेवमुच्छलत्पुष्कलोच्चलविकल्पवीचिभिः।
यस्य विस्फुरणमेव तत्क्षणं कृत्स्नमस्यति तदस्मि चिन्महः ॥४६॥

कहतां जावत असंख्यात लोक मात्र भेदरूप छे, संपदर्शनि कहतां ज्ञानावरणादि कर्म र रचना तिहिकी, अपास्य कहतां ममत्व छोडि करि। भावार्थ इसो–जो शुद्ध स्वरूपको अनु भव होतां यथानय विकल्प मिटै छे तथा समस्त कर्मके उदय छे। जेता भाव ते फुनि मिटै छे इसौ स्वभाव छे।

भावार्थ–स्वानुभव करनेवाला परम दृढ है। यद्यपि उसने पहले उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अपने मत पदार्थका निश्चय कर लिया है तथापि वह इन भेदोंको छोडकर एक अभेद श्री चैतन्यके शुद्ध स्वभावका स्वाद लेता है। उसके अनुभवमें कर्मजनित रागादिभावों या अन्य किसी कर्मके उदयका विकल्प भी नहीं उठता है। स्वानुभवकी महिमा निराली है, नित्य०में कहा है–

रागाद्या न विधातव्या. सत्यसत्यपि वस्तुनि। ज्ञात्वा शुद्धचिद्रूप तत्र तिष्ठ निराकुल ॥ १०. ॥

भावार्थ–किसी भी अच्छे या बुरे पदार्थमें रागद्वेष भाव न करना चाहिये। शुद्ध चैतन्य मात्र अपने स्वभावको जानकर उसीमें ठहरना चाहिये और निराकुल रहना चाहिये।

सवैया ३१ सा—जैसे महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसे लीन होइ जलमें। तैसे शुद्ध आतम दरब परजाय करि, उपजे विनसे थिर रहे निज थलमें॥ ऐसो अवि कलपी अजलपी आनंद रूपे, अनादि अनत गहि लीजे एक पलमें। ताको अनुभव कीजे परम पीयूस पीजे, बंधको विलास डारि दीजे पुदगलमें ॥२८॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना,
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयं।
विज्ञानैकरसः स एप भगवान् पुण्यः पुराणः पुमान्,
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किंचनैकोऽप्ययम् ॥४८॥

खंडान्वयसहित अर्थ-यः समयस्यसारः भाति-यः कहतां जो, समयस्य सारः कहतां शुद्ध स्वरूप आत्मा, भाति कहतां आपन शुद्ध स्वरूप परिणवै छे, ज्यों परिणवै छे त्यों कहिजै छे। नयानां पक्षैः विना अचलं अविकल्पभावं आक्रामन्-नयानां कहता द्रव्या र्थिक पर्यायार्थिक इसा जे विकल्प त्यहका, पक्षैः विना कहता पक्षपात विना करता, अचल कहता त्रिकाल ही एकरूप छे, अविकल्पभावं कहतां निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु, तिहिकौ, आक्रमन् कहतां ज्यों शुद्ध स्वरूप छे त्यों परिणवतो होतो। भावार्थ इसो–जो जेता नय छे तेता श्रुत ज्ञानरूप छे, श्रुतज्ञान परोक्ष छे, अनुभव प्रत्यक्ष छे, तिहितै श्रुतज्ञान पाखे (विना) जो ज्ञान छे सो प्रत्यक्ष अनुभवै छे। तिहितै प्रत्यक्षपनै अनुभवतो होतो जो कोई शुद्ध स्व रूप आत्मा सविज्ञानैकरसः—कहता सोई ज्ञान पुज वस्तु छे इसो कहिजै, स भगवान् कहतां सोई परब्रह्म परमेश्वर इसो कहिजै, एषः पुन्यः कहता इसा सो पवित्र पदार्थ इसो

फुनि कहिजे, एष पुराण इसा सो अनादि निधन वस्तु इसो फुनि कहिजे, एष पुमान् कहतां इसो सो अनन्तगुण विराजमान पुरुष इसो फुनि कहिजे अप ज्ञान दर्शन अपि- कहतां योही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान इसो फुनि कहिजे अथवा किं कहता बहुत कायों कहिजे अय एक यत् किंचन् अपि अय एक कहता यह जो छै शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति, यत्किंचित् अपि कहता जो कछु कहवे सोई छै, ज्यों ही कहावै त्यों ही छै। भावार्थ इसो-जो शुद्ध चैतन्य वस्तु प्रकाश निर्विकल्प एकरूप छै, तिहिको नामकी महिमा करीजे सो अनन्त नाम कहावे तेताही पै, वस्तु तो एकरूप छ। किसा छै वह शुद्ध स्वरूप आत्मा। निभृतैः स्वयं आस्वाद्यमानः-निश्चल पनो पुरुषा करि आपुणपे अनुभवनीक छै।

भावार्थ-जो कोई निश्चयनय व्यवहारनय आदिके विचारोंको बिलकुल छोड़कर एक निर्विकल्प चैतन्य भावमें ठहर जाता है उसके अनुभवमें शुद्धात्मा ऐसा ही अनुभवमें आता है जैसा कि महान तत्त्वज्ञानी पुरुषोंके अनुभवमें आता है-वही अनुभवमें आनेवाला ज्ञान घन, भगवान, परम पुरुष, नित्य एक है। वह पदार्थ वही है जो आप है, उसको नाम लेकर चाहे जैसा कहो वह तो एक रूप अनुभवगोचर है, शब्दका विषय नहीं है। शुद्ध चिद्रूपके अनुभव विना जीवने दुःख उठाये हैं ऐसा तत्त्व० में कहा है—

निश्चले न कृत चित्तमनादौ भ्रमतो भवे, चिद्रूपे तेन सोढानि बहूनि दुःखान्यहो मया ॥१८॥६॥

भावार्थ-अनादि संसारमें भ्रमण करते हुए शुद्ध चिद्रूपमें अपना मन निश्चल नहीं किया अर्थात् सविकल्प रहा इसीसे कर्मबंध मैंने महान दुःख सहे हैं।

सवैया २५ सा—... नय पक्ष... ज्ञान हो पोख है। शुद्ध परमातमको अनुभौ प्रगट तातें, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोष है॥ अनुभौ प्रमाण भगवान् पुरुष पुराण ज्ञान औ विज्ञानघन महा सुख पोख है। परम पवित्र यों अनंत नाम अनुभौके, अनुभौ बिना न कहूं और ठौर मोक्ष है॥ २९॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो,

दूरादेव विवेकनिम्नगमनान्नीतो निजौघं बलात्।

विज्ञानैकरसस्तदेकरसिनामात्मानमात्माहरन्-

आत्मन्येव सदा गतानुगततामायात्ययं तोयवत् ॥ ४९ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अयं आत्मा गतानुगततां आयाति तोयवत्-अयं कहतां द्रव्यरूप छतो छै, आत्मा कहतां चेतन पदार्थ, गतानुगततां कहतां स्वरूपतैं नष्ट हुओ थो सो, बहुरि तिह स्वरूपकहु प्राप्त हुओ इसा भाव कहु, आयाति कहता पावै छै। दृष्टान्त-तोयवत् कहतां पानीकी नाईं, कायों करता। आत्मानं आत्मनि सदा आहरन्-कहतां आप कहु आप विषै निरंतरपने अनुभवतो होतो। किसो छै आत्मा-तदेकरसिनां विज्ञानैकरस -

उदेकरसिनां कहता अनुभव रसिक छे जे पुरुष तिहिको, विज्ञानैकरसः कहतां ज्ञानगुण आस्वादरूप छे। किसो थो। निजौघात् च्युतः-निजौघात् कहतां यथा पानीको शीतस्वच्छ द्रवत्व स्वभाव छे तिहि स्वभाव तहि कबही च्युत होई छे, आपणा स्वभावको छोड़े छे। तथा जीवद्रव्यको स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन अतीन्द्रियसुख इत्यादि अनंतगुण छे तिहिंतै च्युत कहता अनादिकालतहि लेई करि भृष्ट हुओ छे, विभावरूप परिणवो छे, भृष्टपनो ज्यों छे त्यों कहिजै छे। दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्-दूरं कहतां अनादिकाल तहि लेई करि, भूरि कहतां अति बहुत छे। विकल्प कहतां कर्मजनित जावंत भाव त्यह विषै आत्मरूप संस्कार बुद्धि त्यहको जाल कहतां समूह सोई छे, गहन कहतां अटवी वन तिह विषै, भ्राम्यन् कहतां भ्रमतो होतो। भावार्थ इसो—जो यथा पानी आपणा स्वाद तहि भृष्ट हुओ नाना वृक्षरूप परिणवे छे तथा जीवद्रव्य आपणा शुद्ध स्वरूप तहि भृष्ट हुओ नानाप्रकार चतुर्गतिरूप पर्यायरूप आपुणपौ आस्वादै छे। हुओ तो किसो हुओ—बलात् निजौघं नीतः—बलात् कहता बरजोर, निजौघ कहता आपणा शुद्ध स्वरूप लक्षण निष्कर्म अवस्था तिहिको, नीतः कहतां तिहिरूप परिणवो छे। इसो जिहि कारण तहि हुओ सो कहिजै छे। दूरात् एव—कहतां अनंतकाल फिरतां प्राप्ति हुई छे। विवेकनिम्नगमनात्-विवेक कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव इसो छे, निम्नगमनात् कहता नीचो मार्ग तिहि कारणथकी जीवद्रव्य को जिसो स्वरूप थो तिसो प्रगट हुओ। भावार्थ इसो—जो यथा पानी आपणा स्वरूप तहि भृष्ट होइ छे, काल निमित्त पाइ और जलरूप होइ छे। नीचे मार्ग ढळकता होतो पुजरूप फुनि होइ छे, तथा जीव द्रव्य अनादि तिहि स्वरूप तहि भृष्ट छे। शुद्ध स्वरूप लक्षण सम्यक्त गुणके प्रगट होतां मुक्त होइ छे, इसो द्रव्यको परिणाम छे।

भावार्थ—जैसे पानी अपने कुंडमेंसे बाहर भ्रमण कर वनके वृक्षोंमें जाकर अनेक रूप होजाता है, फिर वही पानी किसी नीचे ढलकते हुए मार्गको पाकर कहीं अपने स्वभाव रूप जमा होजाता है। इसी तरह यह जीव अनादिकालसे स्वरूपभ्रष्ट होकर नानाविभाग रूप भावोंमें भ्रमण कर रहा था। किसी तरह सम्यग्दर्शनको पाकर स्वानुभव हुआ तब अपने स्वरूपमें आकर स्वभाव रूप रहने लगा। आपको आपसे ही आस्वादने लगा। आत्म रसिक तत्वज्ञानियोंको जैसा स्वाद आया करता है वैसा स्वाद पाने लगा। इसी तरह परसे छूटकर मुक्त होजाता है। तत्व० में कहते हैं—

यावत्तिष्ठति चिद्भूमौ दुर्भेद्या कर्मपर्वताः। भेदविज्ञानवज्र न यावत् पतति मूर्द्धनि ॥ ७८ ॥

भावार्थ—आत्माकी भूमिपर कठिनतासे टूटनेवाले कर्मरूपी पर्वत उसी समयतक ठहरते हैं जबतक भेदविज्ञानरूपी वज्र उनके मस्तकपर नहीं पड़ता है। स्वानुभव ही कर्मोंके छुडानेका परम उपाय है।

सवैया ३१ सा—जैसे एक जल नानारूप दारुानुयोग, भयो बहु भांति पहिचान्यो न परत है। फिरि काल पाई दारुानुयोग दूर होत, अपने सहज नीचे मारग ढरत है॥ तैसे यह चेतन पदारथ विभावसों गति जोनि भव भव भावरि भरत है। सम्यक् स्वभाव पाई अनुभौके पंथ धाइ बन्धकी जुगती भानि मुकतो करत है॥ ३०॥

श्लोक-विकल्पकः परं कर्ता विकल्पः कर्म केवलं।
न जातु कर्तृकर्मत्वं सविकल्पस्य नश्यति ॥ ५० ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-सविकल्पस्य कर्मकर्तृत्वं जातु न नश्यति-सविकल्पस्य कहता कर्म जनित छे जे अशुद्ध रागादि भाव त्यहकौं आपु करि मानै छे। इसौ मिथ्यादृष्टि जीवकौं, कर्मकर्तृत्व कहतां कर्तापनो कर्मपनो, जातु कहता सर्व काल, न नश्यति कहता न मिटै। जिहि कारण तिहि परं विकल्पकः कर्ता केवलं विकल्पः कर्म-परं कहतां एता कमात्र, विकल्पकः कहता विभाव मिथ्यात्व परिणाम परिणयो छे जो जीव। कर्ता कहतां जिहि भवरूप परिणवै, तिहिको कर्ता अवश्य होइ। केवलं कहता एतावत् मात्र। विकल्पः कहता मिथ्यात्व रागादि रूप अशुद्ध चेतन परिणाम, कर्म कहता जीव करतुति जानिजै। भावार्थ इसौ-जो कोई इसौ मानिजै जो जीव द्रव्य सदा ही अकर्ता छे, तोहे प्रति इसौ समाधान जो जावत काल जीवकौं सम्यक्त गुण प्रगट न होइ तावत जीव मिथ्यादृष्टि छे। मिथ्यादृष्टी हो तो अशुद्ध परिणामको कर्ता होइ सो यदा सम्यक्त गुण प्रगट होइ तदा अशुद्ध परिणाम मिटै। तदा अशुद्ध परिणामको कर्ता न होइ।

भावार्थ-परके कर्तापनेकी बुद्धि उसी समय तक ही रहती है जबतक इस जीवको मिथ्यात्व भाव है। मिथ्याती ही निरंतर अपनेको अशुद्ध रागादि भावोंका कर्ता माना करता है। वास्तवमें असत्य मान्यता करनेवाला ही कर्ता है तथा उसकी झूठी मान्यता ही उसका कर्म है। जबतक मिथ्यात्व भाव न हटे जबतक यह कर्तापनेका भ्रम भी नहीं दूर हो। मिथ्यात्व गया कि परका कर्तापना मिटा। आप अपने ही शुद्ध भावका कर्ता है यह बुद्धि जम गई। तत्व०में कहा है—

निरंतरमहंकारं मूढा कुर्वंति तेन ते। स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं विलोकंते न निर्मलं ॥ ३।११ ॥

भावार्थ-मूर्ख मिथ्यादृष्टी जीव निरंतर परमें अहंबुद्धि करते हैं इसीसे वे कभी भी अपने ही निर्मल शुद्ध चिद्रूपको नहीं देख पाते हैं।

दोहा-जिहि जिन मिथ्यामत बहु, धरै मिथ्याती जीव। तान भाविन करमको कर्ता कहत सदीव ॥३१॥

रथोद्धता छंद-यः करोति स करोति केवलं यस्तु वेत्ति स तु वेत्ति केवलं।
यः करोति न हि वेत्ति स क्वचित् यस्तु वेत्ति न करोति स क्वचित् ॥५१॥

खंडान्वय सहित अर्थ-एते अत्यरि सम्यग्दृष्टि जीवकौ व मिथ्यादृष्टि जीवकौ परि

णाम भेद घनो छे सो कहिजे छे। यः कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव करोति कहता मिथ्यात्व रागादि परिणामरूप परिणवे छे स केवलं करोति कहतां तिसाही परिणामको कर्ता होइ। तु यः वेत्ति कहतां जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धस्वरूपको अनुभवरूप परिणवे छे सो केवलं वेत्ति–सो जीव तिहि ज्ञान परिणामरूप छे सो केवल ज्ञाता छे कर्ता न छे। यः करोति स कचित् न वेत्ति–कहतां जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव मिथ्यात्व रागादि रूप परिणवे छे सो शुद्ध स्वरूपको अनुभवनशीली एक ही काल तो न होइ। यः तु वेत्ति स कचित् न करोति–इतनो कहता जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव शुद्ध स्वरूप कहु अनुभवे छे, सो जीव मिथ्यात्व रागादि भावको परिणमनशीली न होइ। भावार्थ इसो–जो सम्यक्त मिथ्यात्वके परिणाम परस्पर विरुद्ध छे। यथा सूर्यके प्रकाश अंधकार न होइ, अंधकार छतां प्रकाश न होइ तथा सम्यक्तके परिणाम छता मिथ्यात्व परिणमन न होइ। तिहिते एक काल एक परिणामस्यो जीव द्रव्य परिणवे तिहि परिणामको कर्ता होइ, तिहिते मिथ्या दृष्टी जीव कर्मको कर्ता, सम्यग्दृष्टी जीव कर्मको अकर्ता इसो सिद्धान्त सिद्ध हुओ।

भावार्थ–यहां बताया है कि मिथ्यादृष्टी जीवको अपने शुद्ध परिणामोंकी पहचान नहीं है, इसलिये वह सदा ही अपने रागादि भावोंका कर्ता अपनेको माना करता है। वह कभी भी नहीं अनुभव करता है कि मैं शुद्ध आत्मा हू और ये रागादि कर्मजनित विकार है। इसी तरह सम्यग्दृष्टी जीव सदा ही अपनेको जगतका व अपने ऊपर कर्मोंके उदय होते हुए नाना प्रकार अवस्थाका मात्र ज्ञाता दृष्टा रहता है, कभी भी ऐसा नहीं श्रद्धान करता है कि मै परभावोंका कर्ता हूं। उनके श्रद्धानसे परभावके कर्तापनेकी मिथ्याबुद्धि सर्वथा दूर होजाती है। वह ज्ञाता रहता हुआ सुखी रहता है जबकि मिथ्याती कर्ता बनकर कभी सुखी व कभी दुखी होता हुआ आकुलित होता है व भविष्यके लिये भी तीव्र बंध करता है। योगसारमें कहा है–

अह पुण अप्पा णवि मुणहिं पुण्णवि करेइ असेस। तउ विण पावइ सिद्ध सहु पुणु संसार भमेसु ॥१५॥

भावार्थ–तथा जो अज्ञानी अपने आत्माको अनुभवमें नहीं लाता है वह चाहे बहुत भी पुण्यकर्म करो तथापि सिद्ध सुखको कभी नही पासक्ता है वह तो संसारमें ही भ्रमण करता है।

दोहा–करे करम सोई करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने नहि करता जो सोई, जाने सो करता नहि होई ॥ ३९ ॥

इंद्रवज्राछंद–ज्ञप्तिः करोतौ न हि भासतेऽन्तर्ज्ञप्तौ करोतिश्च न भासतेऽन्तः।
ज्ञप्तिः करोतिश्च ततो विभिन्ने ज्ञाता न कर्तेति ततः स्थितं च ॥५२॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अंतः कहता सूक्ष्म द्रव्य स्वरूप दृष्टि करि, ज्ञप्तिः करोतौ नहि भासते–ज्ञप्ति कहतां ज्ञान गुण, करोतौ कहता मिथ्यात्व रागादि रूप चिकणता, नहि

भासने कहतां एकत्वपनौ न छे। भावार्थ इसौ-जो संसार अवस्था मिथ्यादृष्टि जीवके रागादि चिक्कणता पनो छे, कर्मबंध होइ छे सो रागादि सचिक्कणता करि होइ छे। तथा इसौ करोति अत भासने-इसौ कहता ज्ञान गुण विषै करोति कहतां अशुद्ध रागादि परिणमन, अत न भासने कहतां अताइ माहि एकत्वपनौ न छै। तत ज्ञप्ति करोति च विभिन्ने-तत कहता तिहिकारण तहि, ज्ञप्ति कहता ज्ञान गुण करोति कहतो अशुद्ध पनो, विभिन्ने कहता भिन्न भिन्न छे, एक रूप तो न छै। भावार्थ इसौ-जो ज्ञान गुण अशुद्धपनौ देखतां तो मिलापसा दीसै यदि स्वरूप करि भिन्न भिन्न छे। ब्यौरो, जान पना मात्र ज्ञान गुण छे, तिहि माहि गर्भित इसी देखिजे छै सचिक्कणपनो सो रागादि छे। तिहिसो अशुद्धपनो कही जइ। तत स्थित ज्ञाता न कर्ता-तत कहता तिहिकारण तहि, स्थित इसो सिद्धांत निष्पन्न हुओ ज्ञाता कहता सम्यग्दृष्टि पुरुष, न कर्ता कहतां रागादि अशुद्ध परिणामको कर्ता न होइ। भावार्थ इसौ जो द्रव्यके स्वभाव थकी ज्ञानगुण कर्ता न छे, अशुद्धपनो कर्ता छे। सो सम्यग्दृष्टिके अशुद्धपनो न छे तिहितै सम्यग्दृष्टि कर्ता न छे।

भावार्थ-यहां भी यह दिखलाया है कि परभावके कर्तापनेकी बुद्धि अज्ञानीहीके होती है, इसमें कारण मिथ्यात्वकी कलुषता या अशुद्धता है। ज्ञानपना कारण नहीं है। ज्ञानका स्वभाव तो मात्र जाननेका है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है इसीसे मात्र जानता रहता है। अहंबुद्धि करि कर्ता नहीं होता है। उसका स्वामीपना अपने ज्ञानानन्दमय स्वभावकी तरफ है वह रागादिका कभी भी स्वामी नहीं होता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है-

अप्पा अप्पु मुणेइ जिउ सम्मादिट्ठि हवेइ। सम्माइट्ठिउ जीव लहु कम्मइ मुच्चेइ ॥ ७६ ॥

भावार्थ-जो अपने आत्माको आत्मरूप अनुभव करता है वही सम्यग्दृष्टी जीव शीघ्र ही कर्मबंधसे छूटता है।

सोरठा-ज्ञान मिथ्यात न एक नहि रागादिक ज्ञान मही। ज्ञान करम अतिरेक ज्ञाता सो करता नहीं ॥१२॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-कर्ता कर्मणि नास्ति नास्ति नियतं कर्मापि तत्कर्तरि,
द्वंद्वं विप्रतिषिध्यते यदि तदा का कर्तृकर्मस्थिति।
ज्ञाता ज्ञातरि कर्म कर्मणि सदा व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्नेपथ्ये बत नानटीति रभसा मोहस्तथाप्येष किं ॥ ९९ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-कर्ता, कर्मणि, नियत, नास्ति-कर्ता कहता मिथ्यादृष्टि रागादि अशुद्ध परिणाम परिणत जीव कर्म कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड तिहि विषै, नियत कहतां निश्चय सो नास्ति कहतां एक द्रव्यपनौ तो न छ। तत्कर्म अपि कर्तरि नास्ति-तत्कर्म अपि कहतां सो पुनि ज्ञानावरणादि पुद्गलपिंड, कर्तरि कहतां अशुद्ध भाव परिणत

मिथ्यादृष्टी जीव विषै, नास्ति कहतां एक द्रव्यपनो न छै। यदि द्वन्द्वं प्रतिषिध्यते तदा कर्तृकर्मस्थितिः का–यदि कहतां जो, द्वन्द्वं कहतां जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यको एकत्वपनो, प्रतिषिध्यते कहतां निषेध कियो, तदा कहतां तो कर्तृकर्म्मस्थितिः का कहतां जीव कर्ता ज्ञानावरणादि कर्म्म इसी व्यवस्था कहां तहि घटै, अपि तु न घटै। ज्ञाता ज्ञातरि–कहतां जीव द्रव्य आपणा द्रव्य तीसौं एकत्व पनैं छे। सदा कहतां सर्व ही काल इसौ वस्तुकौ स्वरूप छे। कर्म कर्म्मणि–कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंड आपणं पुद्गल पिंड रूप छै। इति वस्तुस्थितिः व्यक्ता–इति कहतां एनै रूप, वस्तुस्थितः कहता द्रव्यको स्वरूप, व्यक्ता कहता अनादि निधनपनै प्रगट छे। तथापि एषः मोहः नेपथ्ये बत कथं रभसा नानटीति–तथापि कहतां स्वरूप तो वस्तु को यो छे ज्यों कह्यो त्यों, फुनि एषः मोहः कहतां यह छे जो जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्यकी एकत्वरूप बुद्धि, नेपथ्ये कहतां मिथ्यामार्ग विषै, बत कहता है वातकौ अचंभो छे, रभसा कहतां निरन्तर, कथं नानटीति कहतां क्यो प्रवर्तै छे, योही वातको विचारु क्यों छे। भावार्थ इसौ–जो जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य भिन्न भिन्न छे। मिथ्यात्वरूप परिणवो होतो जीव एक करि जाणै छे तिहिको घणो अचंभो छे। आगे मिथ्यादृष्टि एकरूप जानहु तथापि जीव पुद्गल भिन्न२ छे इसौ कहिजै छै।

भावार्थ यहां यह है कि निश्चयसे विचार किया जाय तो आत्मा बिलकुल पुद्गल द्रव्यके गुणपर्याय सबसे भिन्न है। वह तो ज्ञानदर्शन गुणका धनी है। वह मात्र ज्ञान परिणतिका ही कर्ता होसक्ता है, वह पुद्गलकी किसी भी प्रकारकी परिणतिका कर्ता नहीं हो सक्ता है। न वह ज्ञानावरणादिका कर्ता है न रागादि व क्रोधादि कालिमाका कर्ता है। कर्ता कर्मपना जीवका पुद्गलकी परिणतिके साथ किसी भी तरह सिद्ध नहीं होसक्ता। तौ भी मिथ्याती अज्ञानी जीवके भीतर जो यह बुद्धि नाच रही है कि मैं कर्ता क्रोधादि मेरे कर्म यही बडे आश्चर्यकी बात है। जैसे मदमाता जीव परकी वस्तुको अपनी मान ले वैसे ही मिथ्यातीकी उन्मत्तवत् चेष्टा है। उसे निज द्रव्यत्वकी खबर नहीं है। इसीसे दुःखी रहता है। तत्व०में कहा है—

ज्ञेयज्ञान सरागेण चेतसा दुःखमगिनः। निश्चयश्च विरागेण चेतसा सुखमेव तत् ॥ ११ ॥

भावार्थ–रागादि रूपसे जो पदार्थोंका जानना है वही प्राणियोंका दुःख रूप है तथा जिसके वीतराग भावसे पदार्थोंका यथार्थ निश्चय है वही सुखरूप है।

छप्पै—करम पिंड अरु रागभाव मिलि एक होय नहि, दोऊ भिन्न स्वरूप वसहिं, दोऊ न जीव महि। करम पिंड पुद्गल, भाव रागादिक मूढ भ्रम, अलख एक पुद्गल अनत, किम धरहि प्रकृति मम॥ निज निज विलास जुत जगत महि जथा सहज परिणमहि तिम। करतार जीव जड़ करमको, मोह विकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

मंदाक्रान्त छंद–कर्ता कर्ता भवति न यथा कर्म कर्मापि नैव,
ज्ञानं ज्ञानं भवति च यथा पुद्गलः पुद्गलोऽपि।
ज्ञानज्योतिर्ज्वलितमचलं व्यक्तमन्तस्तथोच्चै-
श्चिच्छक्तीनां निकरभरतोऽत्यन्तगम्भीरमेतत्‌ ॥ ५१ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–एतत्‌ ज्ञानज्योति तथा ज्वलित–एतत्‌ ज्ञानज्योति कहता छता छे शुद्ध चैतन्य प्रकाश तथा ज्वलित कहता ज्यों थो त्यों प्रगट हुओ, किसा छे। अचल–कहता स्वरूप तहि नहीं विचलै छे और किसो छे। अतः व्यक्त–कहता असंख्यात प्रदेश प्रगट छे और किसो छे। उच्चै अत्यंतगंभीर–कहतां अनंत तहि अनंत शक्ति विराजमान छे किसा यें गंभीर छे। चिच्छक्तीनां निकरभरत –चिच्छक्तीनां कहतां ज्ञान गुणका जेता निरंश भेद भाग त्यहका, निकरभरत कहता अनन्तानंत समूह होइ छै तिह्यकी अत्यंत गंभीर छे। आगे ज्ञान गुण प्रकाश होता जो वयों फल सिद्धि छे, सो कहिजे छे। यथा कर्ता कर्ता न भवति–यथा कहता ज्ञान गुण इसी प्रगट हुओ। ज्यों कर्ता कहतां अज्ञान पनाकौं लीयो जीव मिथ्यात्व परिणामको कर्ता होइ थो सोतो, कर्ता न भवति कहता ज्ञान प्रकाश होता अज्ञान भावको कर्ता न होइ। कर्म अपि कर्म एव न–कर्म अपि कहतां मिथ्यात्व रागादि विभाव कर्म भी, कर्म एव न भवति कहता रागादि रूप न होहि। यथा च जसे पुनि, ज्ञान ज्ञान भवति–कहता जे शक्ति विभाव परिणमन परिणायो थो सोई फिर आपणे स्वभाव रूप हुओ। यथा कहता जे नैं प्रकार पुद्गल अपि पुद्गल पुद्गल अपि कहता ज्ञानावरणादि कमरूप परिणवो थो जो पुद्गल द्रव्य सोई, पुद्गल कहतां कमपर्याय छोड़ि पुद्गलद्रव्य हुओ।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि श्री गुरुके परमोपदेशसे मिथ्यात्वी अज्ञानी मनुष्यकी भ्रमबुद्धि चली गई। अब इसने भले प्रकार अनुभव कर लिया कि मैं आत्मा अनन्तज्ञान शक्तिका धारी असंख्यातप्रदेशी अपने ज्ञानपरिणतिका विलास करनेवाला हूं, मैं ज्ञानावरणादि व क्रोधादि विकारोंका करनेवाला नहीं, न वे क्रोधादि मेरे कर्म हैं। यह जो कुछ भी कर्मोंका नाटक है यह सब पुद्गल है। मेरा इसका निश्चयसे कोई सम्बन्ध नहीं। मैं मेरा ज्ञान द्वारा अपने शुद्धस्वभावके ज्ञान रसमें ही नित मग्न रहता हूं। तत्व॰में कहा है–

मदा परिणतस्तुद्धचेतन्ये[illegible] ॥ [illegible] ॥

भावार्थ–मेरी परिणति शुद्ध चैतन्य स्वभावमें ऐसी दृढ़तासे जमी रह निवदाह सिद्ध शिला आठवी पृथ्वीमें जमी हुई है।

छप्पै—जो। [illegible] करे मन नहिं पर भाव गहे। [illegible] जो [illegible]

दिक पुद्गल ॥ अवगाहत परदेश [illegible], [illegible] प्रगट [illegible]। निरुपिलाप गंभीर धीर, [illegible] विमल मति ॥ जबलग प्रबोध घट महि उदित, तबलग [illegible] न पेखिये। जिम [illegible] पुर, जिहि तिहि नीतिहि देखिये ॥ ३५ ॥

इति श्री नाटक समयसारको कर्ता कर्म क्रिया द्वार ।३॥

इति श्री जीवाजीवौ कर्ताकर्मविपुक्तौ निष्क्रान्तौ, अथ प्रविशति शुभाशुभकर्म द्विपात्री भूय एकमेव कर्म। भावार्थ–जीव अजीव नाटकमें कर्ता कर्मका भेष बनाकर आए थे सो भेष छोडकर निकल गए, अब नाटकमें एक ही कर्म पुण्य तथा पाप ऐसे दो भेष बनाकर प्रगट होते है।

(४) पुण्य पाप एकत्व द्वार।

दोहा—कर्त्ता किरिया कर्मको, प्रगट बखान्यो मूल। अब बरनौं अधिकार यह, पापपुण्य समतूल ॥

द्रुतविलंबित छंद–तदथ कर्म शुभाशुभभेदतो द्वितयतां गतमैक्यमुपानयन्।
ग्लपितनिर्भरमोहरजा अयं स्वयमुदेत्यवबोधसुधाप्लवः ॥१॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अयं अवबोधः सुधाप्लवः स्वयं उदेति–अयं कहतां विद्यमान छे, अवबोधः कहता शुद्ध ज्ञान प्रकाश सोई छे, सुधाप्लवः कहतां चन्द्रमा, स्वयं उदेति कहता जैसो छे तैसो आपने तेज पुंज करि प्रगट होइ छे, किसा छे। ग्लपितनिर्भरमोहरजः–ग्लपित कहतां दूरि करि छे, निर्भर कहतां अतिमां घनी, मोहरजः कहतां मिथ्यात्व अंधकार [illegible] इसौ छै। भावार्थ इसौ–जो चन्द्रमाके उदै अंधकार मिटै छे, शुद्ध ज्ञान प्रकाश [illegible] मिटै [illegible] – [illegible] चन्द्रमा उदोत [illegible] छे। अ[illegible] तत् कर्म ऐक्य उपानयन्–अथ कहता त[illegible], तत् कर्म कहता रागादि अशुद्ध चेतना परिणाम रूप अथ ज्ञानावरणादि पुद्गल पिंडरूप तिहिकौ ऐक्य उपानयन् कहता [illegible] साधतो होतो। किसो छे कर्म। द्वितयतां गतं–कहता दोती (दोपना) करै छे, किसी दोती। शुभाशुभभेदतः–शुभ कहता भलो, अशुभ कहतां बुरो इसो, भेदतः कहतां विहीं करै छे (भेद करै छै) भावार्थ इसौ–जो कोई मिथ्यादृष्टी जीवहंको अभिप्राय इसौ छे, दया व्रत तप शील सयम आदि देइ जितनी छे शुभ क्रिया औरु शुभ क्रियाके अनुसार छे तिहि रूप शुभोपयोग परिणाम तथा तिनि परिणामकै निमित्त करि बंधै छे जे साता कर्म आदि देइ करि पुण्य रूप पुद्गल पिंड भलो छे, जीवकौं सुखकारी छे, हिंसा विषय कषायरूप जेती छे क्रिया तिहि क्रियाके अनुसार अशुभोपयोग रूप संक्लेश परिणाम तिहि परिणामकै निमित्त करि होइ छे। असाता कर्म आदि देइ पाप बंध रूप पुद्गल पिंड बुरो छे, जीवकौं दुखकर्ता छे। इसौ कोई जीव मानै छे। त्याहइ प्रति समाधान इसौ जो यह

अशुभ कर्म जीवकों दुख करे छे। तथा शुभ कर्म पुने जीवको सुख करे छे। कर्म माहे तो भलो कोई नहीं आपणा मोहने लीधे मिथ्यादृष्टी जीव कर्मको भलो करि मानै छे इसी भेद प्रतीति शुद्ध स्वरूप अनुभव हुवा तहिं पाइयै छे, इसो जो कह्यो कर्म एक रूप छे तीहइ प्रति दृष्टांत कहिज छे।

भावार्थ–यहां यह व्याख्यान करना है कि अज्ञानी लोग पुण्य क्रियाको व शुभोपयोगको व सातावेदनीय आदि पुण्य रूप पुद्गल पिंडको मोहके महात्म्यसे अच्छा व उपकारी समझते हैं तथा पाप क्रियाको व अशुभोपयोगको व असातावेदनीय आदि पाप रूप पुद्गल पिंडको बुरा व बिगाड़ करनेवाला समझते हैं। यह समझ तब ही तक रहती है जबतक मिथ्यात्व रूपी अंधकार नहीं हटता है। मिथ्यात्वके हटने ही यह बुद्धि भी निकल जाती है तब पुण्य तथा पाप दोनोंको बंध रूप जानता है। आत्माके लिये किसीको भी सुखदाई नहीं जानता है। सम्यग्ज्ञान रूपी चंद्रमा जब हृदयमें झलकता है तब कोई भी कर्म हितकारी नहीं मानता है। सर्व ही पाप पुण्य रूप कर्म एक रूप ही मालूम पड़ते हैं।

योगसारमें कहा है—

जो पाउवि सो पाउ भुणि सव्वु वि कोवि भुणइ। जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ सो बुह कोवि हवेइ॥७०॥

भावार्थ–पाप कर्मोंको पाप कहने व माननेवाले तो प्राय सर्व ही अज्ञानी हैं परन्तु ज्ञानवान तो वह है जो पुण्यकर्मको भी पाप ही मानता है व कहता है।

कवित्त—जाके उदै होत घट अंतर बिनसै मोह महा तम रोक। शुभ अर अशुभ करमकी दुविधा मिटै सहज दासै इक थोक॥ जाकी कला होत संपूरण प्रति भासै सब लोक अलोक। सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि शीस नमाइ देत पग धोक॥ २॥

मंदाक्रांताछंद–एको दूरात्त्यजति मदिरां ब्राह्मणत्वाभिमाना–
दन्यः शूद्रः स्वयमहमिति स्नाति नित्यं तयैव।
द्वावप्येतौ युगपदुदरान्निर्गतौ शूद्रिकायाः,
शूद्रौ साक्षादपि च चरतो जातिभेदभ्रमेण॥ २॥

खण्डान्वयसहित अर्थ–द्वौ अपि एतौ साक्षात् शूद्रौ–द्वौ अपि कहतां विद्यमान छे दूवे, एतौ कहतां इसा छे, साक्षात् कहतां निःसंदेहपने, शूद्रौ कहतां दूवे चंडाल छे, किसा छती। शूद्रिकायाः उदरात् युगपत् निर्गतौ–जिहि कारण तहिं शूद्रिकायाः उदरात् कहतां चांडालणीके पेटथी, युगपत् निर्गतौ कहतां एक ही बार जनम्या छे। भावार्थ इसौ जो कोई चांडालणी नेहं दोइ पुत्र युगल्या एक ही बार जनम्या, कर्म योग ते एक पुत्र ब्राह्मणके प्रतिपाल हुआ सो तो ब्राह्मणकी क्रिया करता हुओ। दूजो पुत्र चांडालके प्रतिपाल हुओ सो तो चांडालकी क्रिया करतो हुओ। साचेन जो दूवेका वंशका दाप त

कर्मको स्वाद इसो छै। तिहिंते स्वाद भेद फुनि छ। अशुभ कहतां फलकी निःपत्ति सो फुनि भेद छे। ब्यौरो–अशुभ कर्मके उदय हीनो पर्याय होवे छे तहां अधिको संक्लेश होइ छे तिहिंते संसारकी परिपाटी होइ छे। शुभ कर्मके उदय उत्तम पर्याय होइ छे तहां धर्मकी सामग्री मिले छै, तिहि धर्मकी सामग्री थकी जीव मोक्ष जाइ छे। तिहिंते मोक्षको परिपाटी शुभ कर्म छे। इसो कोई मिथ्यावादी माने छे। तिहिं प्रति उत्तर इसो जो कर्मभेदः नहि, कहतां-कोई कर्म शुभरूप कोई कर्म अशुभरूप इसो भेद तो न छे, किमपेक्षी-हेतुस्वभावानुभवाश्रयाणां सदा अपि अभेदात्–हेतु कहतां कर्मबंधको कारण विशुद्ध परिणाम संक्लेश परिणाम इसा दुवे परिणाम अशुद्धरूप छे, अज्ञानरूप छे, तिहिंते कारण भेद फुनि नहीं। कारण एक ही छे, स्वभाव कहतां शुभकर्म अशुभकर्म इसा दुवे कर्म पुद्गल पिंडरूप छे। तिहिंते एक ही स्वभाव छे, स्वभाव भेद तो नहीं। अनुभव कहतां रस ते फुनि एक ही छे रसभेद तो नहीं। ब्यौरो–शुभ कर्मके उदय जीव बंध्यो छे सुखी छे, अशुभ कर्मके उदय जीव बंध्यो छे, दुखी छे विशेष तो कांई नहीं। आश्रय कहतां फलकी निष्पत्ति सो फुनि एक ही छे विशेष तो कांई नहीं। ब्यौरो–शुभ कर्मके उदय संसार त्योंही अशुभ कर्मके उदय संसार, विशेष तो कांई नहीं। तिहिंते इसो अर्थ ठहरायो जो कोई कर्म भलो कांई कर्म बुरो यों तो नहीं, सब ही कर्म दुखरूप छे। तत् एकं बंधमार्गाश्रितं इष्टं तत् कहता कर्म एकं कहतां निःसंदेहपनै, बंध मार्गाश्रितं कहतां बंधको करै छे, इष्टं कहतां गणधरदेव इसो मान्यो, कैसा तै। जिहि कारण तहि, खलु समस्तं स्वयं बन्धहेतुः खलु कहता निहचासौं समस्तं कहतां जावंत कर्म जाति, स्वयं बंधहेतुः कहतां आपण फुनि बंध रूप छे। भावार्थ इसो–जो आप मुक्त स्वरूप होइ सो कदाचित् मुक्ति कहु करै। जाति आपुनपे बन्ध पर्यायरूप पुद्गल पिंड बंध्यो छे सो मुक्ति कहां तहिं करिसी तिहिं तहि सर्वथा कर्म बंधमार्ग छे।

भावार्थ–यहा यह बताया है कि पुण्य पाप दोनो ही समान है, आत्माकी स्वतंत्रता बाधक है। दोनोंका ही कारण कषाय भाव है, दोनों ही पुद्गल कर्म वर्गणा हैं, दोनों हीका फल रागद्वेष रूप है। दोनो-ही आगामी भी बंधके कारण हैं। इसलिये पुण्यको भला समझना मिथ्या बुद्धि है। शुभोपयोग उसी तरह बंधका कारण है जैसे अशुभोपयोग। इसलिये ज्ञानी जीवको एक शुद्धोपयोगको ही उत्तम व मोक्षका कारण मानना चाहिये। पुण्यसे राग पापसे द्वेष दोनों ही मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टीके भावमें दोनो ही रोग हैं, दोनों ही ज्वर है, भले ही एक मंद ज्वर हो एक तीव्र ज्वर हो। ज्वर कभी भी स्वास्थ्यलाभका उपाय नहीं, रोगरहितता ही स्वास्थ्य है जिसके लिये ज्वरघातक औषधि स्व

है। शुभराग मंद रोग अशुभराग तीव्र रोग दोनोंके शमनके लिये वीतराग विज्ञानमय भाव या अभेद रत्नत्रयमई भाव औषधि है। मंद ज्वरको स्वास्थ्यलाभ समझना भ्रम है। यद्यपि तीव्र ज्वरकी अपेक्षा जैसे मंद ज्वर कुछ ठीक है वैसे अशुभ रागकी अपेक्षा शुभ धर्मानुराग कुछ ठीक है। परन्तु यह राग मोक्षमार्गमें बाधक है। इसलिये ज्ञानीको पुण्यपाप दोनोंहीसे राग छोड़कर शुद्ध वीतराग आत्मीक भावको ही मोक्षमार्ग मान सेवन करना योग्य है। आत्मानुशासनमें कहा है

शुभाशुभे पुण्यपापे सुखदुःखे च षट्त्रयम्। हितमाद्यमनुष्ठेयं शेषत्रयमथाहितम् ॥ २३९ ॥
तत्राप्याद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयं। शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम् ॥२४ ॥

भावार्थ-व्यवहारमें शुभ अशुभ भाव, पुण्य पाप कर्म, सुख दुःख ये छः हैं। इनमेंसे तीन शुरूके अर्थात् शुभ भाव पुण्य और सुख हितकारी हैं, करने योग्य हैं, बाकीके तीन अहितकारी न करने योग्य हैं। इन तीनमें भी आदिका अशुभ भाव छोड़ना योग्य है, तब से शेष दोनों स्वतः ही नहीं रहेंगे। अर्थात् न पापकर्म बंध होगा न दुःख होगा, तौभी निश्चयसे जब शुभ भावको छोड़कर शुद्ध भावमें लीनता प्राप्त की जायगी तब ही अन्तमें परम पदकी प्राप्ति होगी। मोक्षका कारण एक शुद्धोपयोग है—

चौपाई—कोऊ शिष्य कहै गुरु पाहीं। पाप-पुण्य दोऊ सम नाहीं॥
कारण रस स्वभाव फल न्यारे। एक अनिष्ट लगै इक प्यारे ॥ ४ ॥

सवैया ३१ सा—संकलेश परिणामनिसों पाप बंध होय विशुद्धसों पुण्य बन्ध हेतु भेद मानिये ॥ पापके उदै असाता ताको है कटुक स्वाद पुण्य उदै साता मिष्ट रस भेद जानिये ॥ पाप संक्लेश रूप पुण्य है विशुद्ध रूप दुहूंको स्वभाव भिन्न भेद यों बखानिये ॥ पापसों कुगति होय पुण्यसों सुगति होय ऐसो फल भेद परतच्छ परमानिये ॥ ५ ॥

सवैया ३१ सा—पाप बंध पुण्य बंध दुहूंमें मुकति नाहिं कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको पेखिये ॥ संकलेश विशुद्ध सहज दोऊ कर्मचाल कुगति सुगति जग जालमें विसेखिये ॥ कारणादि भेद तोहि सूझत मिथ्यात माहिं ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये ॥ दोऊ महा अंधकूप दोऊ कर्म बंध रूप दुहूंको विनाश मोक्षमारगमें देखिये ॥ ६ ॥

रथोद्धता छंद-कर्म सर्वमपि सर्वविदो यद्बन्धसाधनमुशन्त्यविशेषात् ।
तेन सर्वमपि तत्प्रतिषिद्धं ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ- यत् सर्वविदः सर्वं अपि कर्म अविशेषात् बन्धसाधनं उशन्ति-यत् कहतां जिहिं कारण तहिं, सर्वविदः कहतां सर्वज्ञ वीतराग, सर्व अपि कर्म कहतां जावंत शुभरूप व्रत संयम तप शील उपवास इत्यादि क्रिया अथवा विषयकषाय इत्यादि क्रिया, अविशेषात् कहतां एकसी दृष्टिकरि, बन्धसाधनं उशन्ति कहतां बन्धको कारण कहै छे। भावार्थ इसौ जो जीवको अशुभ क्रिया करतां बंध होइ छे त्योंही शुभक्रिया करतां जीवको

बंध होइ छे। बंधन माहि तो विशेष कांई नहीं। तेन तत्सर्वं अपि प्रतिषिद्धं–तेन कहतां तिहि कारण तहि, तत् कहतां कर्म, सर्वं अपि कहतां शुभरूप, अथवा अशुभरूप, प्रतिषिद्धं कहतां केई मिथ्यादृष्टी जीव शुभक्रियाको मोक्षमार्ग जानि पक्ष करै छे ते निषेध कियो ऐसो भाव राख्यो, जो मोक्षमार्ग कोई कर्म नहीं। एव ज्ञानं शिवहेतुः विहितं एक कहता निश्चयसेती शुद्ध स्वरूप अनुभव, शिवहेतुः कहता मोक्षमार्ग छे, विहितं कहतां अनादि परम्परा इसो उपदेश छे।

भावार्थ–यहां भी यही बताया है कि मोक्षमार्ग एक शुद्ध आत्मीक भावरूप स्व-भव है, जहां न अशुभक्रियाका भाव है न शुभक्रियाका भाव है। अभेद रत्नत्रयमई ही मोक्षमार्ग निश्चयसे कर्मबंध छेदक है। व्यवहार रत्नत्रयमई धर्म जिसमें शुभोपयोगके विकल्प हैं पुण्य बन्धकारक हैं मोक्षकारक नहीं। इसलिये किसी श्रावक व किसी मुनिको यह बुद्धि न रखनी चाहिये कि मैं मुनि हू, व श्रावक हू, मेरी क्रियाकाड पद्धतिसे मोक्षमार्गमें गमन होरहा है। उसे यह समझना चाहिये कि यह बाहरी आचरण मात्र बाहरी आलंबन है; मोक्षमार्ग तो वचन अगोचर मात्र आत्मानुभव रूप एक शुद्ध भाव है।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

सुह परिणामें धम्मु पर असुहे होद अहम्मु। दो हि वि एहि वि वज्जियउ सुद्ध ण बंधइ कम्मु ॥१॥

भावार्थ–शुभ भावोंसे पुण्य व अशुभ भावोंसे पाप होता है, परन्तु इन दोनोंसे रहित होकर शुद्ध परिणामोंसे जो वर्तता है उसके कर्मका बंध नहीं होता है।

सवैया ३१ सा—सील तप संयम विरति दान पूजादिक, अथवा असंयम कषाय विषै भोग है ॥ कोउ शुभरूप कोउ अशुभ स्वरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है ॥ ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममें करम त्याग जोग है ॥ भौ जल तरैया रागद्वेषके हरैया, महा मोक्षके करैया एक शुद्ध उपयोग है। ७ ॥

शिखरणी छन्द–निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल
प्रवृत्ते नैःकर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं
स्वयं विन्दन्त्येते परमममृतं तत्र निरताः ॥ ८ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ–इहां कोई प्रश्न करै छे जो शुभ क्रिया तथा अशुभ क्रिया सर्व निषिद्धकारी मुनीश्वर किसै अवलम्बै छे। इसो समाधान कीजै छे। सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि निषिद्धे–सर्वस्मिन् कहता अमूल चूल तहि (जड़ मात्रसे) सुकृत कहतां व्रत संयम तप रूप क्रिया अथवा शुभोपयोग रूप परिणाम, दुरिते कहता विषय कषाय रूप क्रिया अथवा अशुभोपयोग संक्लेश परिणाम इसो, कर्मणि कहतां करतूते रूप, निषिद्धे

कहतां मोक्षमार्ग नहीं। इसौ मानै सते किल नैष्कर्म्ये प्रवृत्त किल कहता निश्चासौ, नैष्कर्म्ये कहतां सूक्ष्म स्थूलरूप अन्तर्जल्प बहिर्जल्प समस्त विकल्प तह रहित निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य मात्र प्रकाशरूप वस्तु मोक्षमार्ग इसौ, प्रवृत्ते कहता एकरूप योगी छै इसो निहचौ ठहराइते सते। खलु मुनयः अशरणाः न सन्ति–खलु कहतां निहचा इसौ, मुनय कहतां संसार शरीर भोग तहि विरक्त होय धार्यो छै यतिपणो इसह अशरणा न सन्ति कहता आलम्बन पाये (बिना) शून्य मन यों तो न छै। तो क्यों छै। तदा हि एषां ज्ञान स्वयं शरण–तदा कहतां जिहिकाल इसो प्रतीति आवै छै अशुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं, शुभ क्रिया हुनि मोक्षमार्ग नहीं, तिहिकाल, हि कहतां निहचासौ एषां कहतां मुनीश्वरांको, ज्ञान स्वयं शरण कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव सहज ही आलम्बन छै, किसो छै ज्ञान, ज्ञाने प्रति चरितं–कहतां ज्ञानरूप परिणवै यों सोई आपणो शुद्ध स्वरूप परिणवै छै। शुद्ध स्वरूपको अनुभव होतां काई विशेष हुवै छै कहिजै छै। एते तत्र निरताः परमं अमृतं विन्दन्ति एते कहतां इता छै जे सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर तत्र कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव विषै, निरता कहतां मग्न छै जे, परम अमृत कहतां सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख विन्दति कहतां आस्वादै है। भावार्थ–इसौ जो शुभ क्रिया विषै मग्न होतां जीव विकल्पी छै तिहितै दुखी छै। क्रिया संस्कार छूटतो शुद्ध स्वरूपको अनुभव होतो, जीव निर्विकल्प छै। तिहितै सुखी छै।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि मोक्षके लिये शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमणकर आत्मानन्दका स्वाद लेना यही मार्ग है। जो सम्यग्दृष्टि श्रावक या मुनि हैं वे इसीहीकी शरणको सच्ची शरण मानते हैं–वे भलेप्रकार जानते हैं कि रंच मात्र भी शुभ क्रियाकी तरफ उपयोगका झुकाव है वहां अपने स्वरूपके अनुभवसे दूर होजाना है यही बंधका मार्ग है। सम्यक्त्वी मात्र निज भावमें ही रमते हैं। उपयोगकी थिरता न होनेसे यदि अन्य कार्योंमें जाते भी हैं तो तुर्त वहांसे लौटकर अपने ही स्वानुभवमें तिष्ठनेकी चेष्टा करते हैं। अमृतका सागर तो निज आत्मा है। उस अमृतके पानको छोड़कर कौन बुद्धिमान ऐसा है जो विषरूप शुभोपयोगके खारे जलको पान करेगा? कदापि नहीं। आत्मज्ञानियोंके लिये मोक्ष व मोक्षमार्ग दोनों ही अपने स्वरूपमें ही दीखते हैं। वे स्वरूपके भोगमें ही मग्न रहते हैं। इष्टोपदेशमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं–

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः॥ ४७॥

भावार्थ–जो योगी व्यवहार धर्मसे बाहर होकर आत्माके साधनोंमें लीन होजाते हैं उनको इस ध्यानके बलसे कोई अपूर्व परमानन्द दशा लाभ होता है। तथा यही परमानन्दका भान कर्मबंधका नाशक है। वहीं कहा है–

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥ ४८॥

भावार्थ—यही आनन्द उसी तरह बहुतसे कर्मोंको बराबर जलाता रहता है जैसे अग्नि ईंधनको जलाती है। योगी आत्मध्यानमें मग्न होते हुए बाहरी कष्टोंकी कुछ भी परवाह न करते हुए किंचित भी खेद नहीं पाते हैं।

सवैया ३१ सा—शिष्य कहै स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषेध मेरे संदेह मन माहि है॥ मोक्षके सधैया ज्ञाता देशविरती मुनीश, तिनकी अवस्था तो निरावलम्ब नाहि है॥ कहै गुरु करमको नाश अनुभौ अभ्यास, ऐसो अवलम्ब उनहीको उन माहि है॥ निरुपाधि आतम समाधि सोई शिव रूप, और दौर धूप पुद्गल परछाहीं है॥ ८॥

शिखरणी छंद—यदेतद् ज्ञानात्मा ध्रुवमचलमाभाति भवनं।
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति॥
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्।
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितं॥ ९॥

खंडान्वयसहित अर्थ—यत् एतत् ज्ञानात्मा भवनं ध्रुवं अचलं आभाति अयं शिवहेतुः—यत् एतत् कहता जो कोई, ज्ञानात्मा कहतां चेतना लक्षण इसो, भवनं कहतां सत्स्वरूप वस्तु,-ध्रुवं अचलं कहतां निश्चयसे थिर होकर, आभाति कहतां प्रत्यक्षपनै स्वरूपको आस्वादक कहो छै। अयं कहतां यो ही, शिवहेतुः कहतां मोक्षको मार्ग छे। किसा थकी—यतः स्वयं अपि तच्छिव इति—यतः कहतां जिहिकारण तहिं, स्वयं अपि कहतां आपुनपै फुनि, तच्छिव इति कहतां मोक्षरूप छै। भावार्थ इसो-छे, जीवको स्वरूप सदा कर्मतहि मुक्त छै तिहिं अनुभवता मोक्ष होई इसो घटै विरुद्ध तो नहीं। अतः अन्यत् बंधस्य हेतुः—अतः कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव मोक्षमार्ग छै इहि पावै (विना) अन्यत् कहतां जो क्यों छै शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियारूप अनेक प्रकार, बंधस्यहेतुः कहतां सो सर्व बंधको मार्ग छै। यतः स्वयं अपि बंध इति—यतः कहता जिहि कारण तहि। स्वयं अपि आपुनपै फुनि बंध इति कहतां सर्व ही बंधरूप छै। ततः तत् ज्ञानात्मा स्वं भवनं विहितं हि अनुभूति—ततः कहतां तिहि कारण तहि, तत् कहतां पूर्वोक्त, ज्ञानात्मा कहतां चेतना लक्षण इसो है, स्वं भवनं कहतां आचरण जीवको सत्त्व, विहितं कहतां मोक्षमार्ग छै, हि कहतां निहचासों, अनुभूतिः कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद कीयो होतो।

भावार्थ—यहां यह प्रयोजन है कि मोक्षरूप आत्मा ही है। शुद्ध आत्माको ही मुक्त कहते हैं इसलिये निज आत्माका अनुभव करना—स्वाद लेना ही असलमें कर्मोंसे छूटनेका उपाय है। शुभ व अशुभ क्रियामें रागद्वेष है उससे तो बंध ही होगा, वह मोक्षमार्ग नहीं ऐसा निश्चय करना ही सम्यक्त है। तत्वार्थसारमें श्रीअमृतचन्द्रस्वामी स्वयं कहते हैं—

श्रद्धानाधिगमोपेक्षा. शुद्धस्य स्वात्मनो हि या। सम्यक्तज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः स निश्चयः॥२-उप०॥

भावार्थ-अपने ही शुद्ध आत्माका यथार्थ श्रद्धान, ज्ञान, व अनुभव यही निश्चय त्रयरूप मोक्षका मार्ग है।

सवैया २३ सा-मोक्ष स्वरूप सदा चिन्मूरति, बंध मही करतूति कही है ॥ जावत काल बसै चेतन तावत सो रस रीति गही है ॥ आतमको अनुभौ जबलौं तबलौं, शिवरूप दसा ही है ॥ अंध भयो करनी जब ठानत बंध विथा तब फैलि रही है ॥ ५ ॥

श्लोक-वृत्त ज्ञानस्वभावेन ज्ञानस्य भवन सदा।
एकद्रव्यस्वभावत्वा मोक्षहेतुस्तदेव तत् ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ज्ञानस्वभावेन वृत्त तत् तत् मोक्षहेतु एव-ज्ञान कहतां शुद्ध वस्तुमात्र तिहिको, स्वभावेन कहतां स्वरूप निष्पत्ति तिहिकरि, वृत्त कहतां स्वरूपाचरण चारित्र, तत् तत् मोक्षहेतु कहतां सोई सोई मोक्षमार्ग छै, एव कहतां इसी बात माहे संदेह नहीं। भावार्थ-इसो जो कोई जानिसे स्वरूपाचरण चारित्र इसा सो कहिंसे जो आत्माका शुद्ध स्वरूप कछु विचारै अथवा चिंतवै अथवा एकाग्रपने मग्न होइ करि अनुभवै, सो योतो नहीं, यों कइ करता बंध होइ छै। नाबहि इसो तो स्वरूपाचरण चारित्र न होइ, तो स्वरूपाचरण चारित्र किसो छै। यथा पन्ना पकायाये सुवर्ण माहेकी कालमा जाय छै, सुवर्ण शुद्ध होइ छै तथा जीव द्रव्यको अनादि तहिं यो अशुद्ध चेतनारूप रागादि परिणमन सो जाय छै। शुद्ध स्वरूपमात्र शुद्ध चेतनारूप जीवद्रव्य परिणवै छै। तिहिको नाम स्वरूपाचरण चारित्र कहीजे, इसो मोक्षमार्ग छै। काइ विशेष-सो शुद्ध परिणमन जेते सर्वोत्कृष्ट होइ तेते शुद्धपनाका अनंत भेद छै। ते भेद जातिभेद करि तो नहीं। घणी शुद्धता तिहि तहिं घणी शुद्ध तहिं घणी-इसा थोरा घणा रूप भेद छै। भावार्थ-इसा जो जेती ही शुद्धता होइ तेती ही मोक्षकारण छै। यदा सर्वथा शुद्धता होइ तदा सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्षपदकी प्राप्ति होइ, कैसा छै। सदा ज्ञानस्यभवनं एकद्रव्यस्वभावत्वात्-सदा कहतां त्रिकाल ही, ज्ञानस्य भवनं कहतां इसो छै जो शुद्ध चेतना परिणमनरूप स्वरूपाचरण चारित्र सो आत्मद्रव्यको निजस्वरूप छै। शुभाशुभ क्रियाकी नाइ उपाधिरूप न छै। तिहितैं, एक द्रव्यस्वभावत्वात् कहतां एक जीव द्रव्य स्वरूप छै। भावार्थ-इसो जो, जो गुण गुणीरूप भेद करिये तो इसो भेद होय। जो जीवको शुद्धपनो गुण जो वस्तु मात्र अनुभव करिये तो इसो भेद हुनि मिटै। तिहितै शुद्धपनो तथा जीव वस्तु द्रव्य सो एक सत्ता छै। इसो शुद्धपनो मोक्ष कारण होइ इसापार्थ नि वयो कर्मनिरूप छै सो समस्त बंधको कारण छै।

भावार्थ-यहाँ यह दिखाया है कि स्वरूपाचरण चारित्र उसका नाम है जहां रागद्वेष मोह छोड़ कर अपने स्वरूप रूप रहा जाय। अशुद्ध चेतनाके अनुभवसे हटकर शुद्ध चेतनाका अनुभव किया जाय। जितने अंश वीतरागता बढ़ेगी उतने अंश मोक्षमार्ग होगा।

उतने अंश आत्माकी शुद्धता होगी। यही वीतरागता बढ़ते बढ़ते मोक्षमार्गकी पूर्णता हो, तब सर्व कर्मोंका क्षय होजायगा। और आत्मा मोक्षरूप अमाद जैसा रह जायगा। तपाकर शुद्ध किया जाता है, जिस तावके देनेसे सोनेका मैल कटे उज्वलता प्रगटे, सोनेकी शुद्धता है वह अंशरूप है। ताव देते देते अंशरूप शुद्धता बढ़ते बढ़ते जब बिल्कुल मैलसे रहित होता है तब बिलकुल शुद्ध कहलाता है। यदि सोनेका मैल न कटे तो उसकी शुद्धताका उपाय न बना। इसी तरह रागद्वेष रहित शुद्ध स्वरूपका यदि न होगा तो कर्मकी निर्जरा न होगी। यहां निर्जराका कारण वीतरागमय भाव है वही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावकी पूर्णता ही मोक्षमार्गकी पूर्णता है और परमात्मपदका प्रकाश।

स्वामी अमृतचंद्र ही तत्वार्थसारमें कहते हैं-

आत्मा ज्ञाततया ज्ञानं सम्यक्त्वं चरितं हि सः। स्वस्थो दर्शनचारित्रमोहाभ्यामनुपप्लुतः ॥ ७-३॥

भावार्थ-आत्मा आत्मारूप ही जाना हुआ ज्ञान है, यही श्रद्धा किया हुआ सम्यक्त्व है, यही वीतरागता सहित आचरण किया हुआ चारित्र है जो दर्शनमोह और चारित्रमोहसे छुटा हुआ आप आपमें तन्मय है, वही मोक्षमार्ग है।

सोरठा-अंतर दृष्टि लखाव, अर स्वरूपको आचरण। ए परमातम भाव, शिव कारण येई सदा ॥ ७ ॥

श्लोक-वृत्तं कर्मस्वभावेन ज्ञानस्य भवनं न हि।
द्रव्यान्तरस्वभावत्वान्मोक्षहेतुर्न कर्म तत् ॥ ८ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-कर्म्मस्वभावेन वृत्तं ज्ञानस्य भवनं न हि-कर्म कहतां जावंत शुभ क्रिया रूप अथवा अशुभ क्रिया रूप आचरण लक्षण चारित्र तिहिको, स्वभावेन वृत्त कहता एते रूप चारित्र ज्ञानस्य कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, भवनं कहतां शुद्ध स्वरूप परिणमन, न हि कहतां न होइ इसो निहचो छे। भावार्थ-इसो जो यावंत शुभ अशुभ क्रिया छे आचरण अथवा बाह्यरूप वक्तव्य अथवा सूक्ष्म अंतरंग रूप चिंतवन अभिलाप स्मरण इत्यादि समस्त अशुद्धत्वरूप परिणमन छे। शुद्ध परिणमन नहीं। तिहितै बंधको कारण छै, मोक्षको कारण न छे। तिहितै यथा कामलाको नाहर कहिवाको नाहर छे तथा आचरण रूप चारित्र कहिवाको चारित्र छै, परन्तु चारित्र न छे। निःसंदेहपनै इसो। तत् कर्म्म मोक्षहेतुः न-तत् कहतां तिहि कारण तहि, कर्म कहतां बाह्य अभ्यन्तररूप सूक्ष्म स्थूलरूप जावंत आचरणरूप, मोक्षहेतुः न कहतां कर्मक्षपण कारण नहीं बन्ध कारण है किंबाधका द्रव्यांतरस्वभावत्वात्-द्रव्यांतर कहतां आत्म द्रव्य तहि भिन्न छे, पुद्गल द्रव्य तांहको स्वभाव कहतां एतो समस्त पुद्गल द्रव्यके उदयको कार्य छे जावको स्वरूप न छे। भावार्थ इसो-जो शुभ अशुभ क्रिया सूक्ष्म स्थूल अन्तर्जल्प, बहिर्जल्प रूप जावंत विकल्प

जिहिको इसो छे तिहितें कर्म निषिद्ध छे। भावार्थ-इसो जो यथा पानी स्वरूप तहि निर्मल छे। कादौंते संयोग करि मैलो होइ छे, पानीको शुद्धपनो घातयो जाइ छे तथा जीव द्रव्य स्वभाव तहिं स्वच्छ स्वरूप छे, केवलज्ञान दर्शन सुख वीर्यरूप छे। सो स्वच्छपनो विभावरूप अशुद्ध चेतना लक्षण मिथ्यात्व विषय कषायरूप परिणाम करि मिट्यो छे। अशुद्ध परिणामको इसो ही स्वभाव छे जो शुद्धपनाको मेटे, तिहितें कर्म निषिद्ध छे। भावार्थ इसौ-जो केई जीव क्रियारूप यतिपनो पावे छे, तिहि यतिपना विषे मग्न हो हि छे जे हम मोक्षमार्ग पायो जो क्यो करणो थो सो कियो सोते जीव समझाइजे छे जो यतिपनाको भरोसो छोड़ करि शुद्ध चैतन्य स्वरूपको अनुभवहु।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि मोक्षका मार्ग एक शुद्ध आत्मीक स्वभावका ज्ञानानन्दमयी स्वाद प्राप्त करना है, शुभ व अशुभ क्रियाकांड बन्धका कारण है। क्योंकि इन क्रियाओंको करते हुए मंद या तीव्र कषायका उदय होता है, उन परिणामोंसे नवीन बन्ध होता है। बन्ध मोक्षमार्गको और भी दूर रखता है। इसलिये तत्त्वज्ञानीको शुभ क्रियामें भी मग्न न होना चाहिये न उसे हितकारी मानना चाहिये। एक शुद्ध भावमें रमण करनेका ही साधन करना चाहिये। जो ऐसा करे वही साधु है। पद्मसिंहमुनि ज्ञानसारमें कहते हैं-

मणवयणकाय मच्छर ममत्त तणुधणकणाइ सुण्णोहं। इय सुण्णझाणजुत्तो णो लिप्पइ पुण्णपावेण ॥४॥

भावार्थ-जो मन, वचन, काय, मद, ममता, शरीर, धन, कण आदिसे रहित होकर मैं एक शुद्ध स्वरूप हूं, ऐसे शून्य ध्यानमें लय होता है वह पुण्य पापसे नहीं लिपता है।

सुद्धप्पा तणुमाणो णाणी चेदण गुणोहमेकोहं, इयझायतो जोई पावइ परमप्पयं ठाणं ॥ ५॥

भावार्थ-मैं एक अकेला, शुद्धात्मा, शरीरप्रमाण, ज्ञानी चैतन्य गुणधारी हूं। ऐसा अनुभवता हुआ योगी परमात्माके पदको पालेता है।

सवैया ३१ सा—कोउ शिष्य कहे स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध, शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न वरनी ॥ गुरु कहे जवलों क्रियाके परिणाम रहे, तवलों चपल उपयोग जोग धरनी ॥ थिरता न आवे तौलों शुद्ध अनुभौ न होय, यति दोउ क्रिया मोक्ष पथकी कतरनी ॥ बंधकी करैया दोउ दुहूंमें न भली कोउ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ १२ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-संन्यस्तव्यमिदं समस्तमपि तत्कर्मैव मोक्षार्थिना
संन्यस्ते सति तत्र का किल कथा पुण्यस्य पापस्य वा।
सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनान्मोक्षस्य हेतुर्भव-
न्नैःकर्म्यप्रतिबद्धमुद्धतरसं ज्ञानं स्वयं धावति ॥ १० ॥

खंडान्वयसहित अर्थ-मोक्षार्थिना तत् इदं समस्तं अपि कर्म्म संन्यस्तव्यं-मोक्षार्थिना कहतां सकल कर्म क्षय लक्षण अतींद्रिय पद तिहिं विषे छे अनन्तसुख तिहिको उपा

देय अनुभवे छे। इसी छे जो कोई जीव तैनैं, तत् इद कहतां सोई कर्म जो ऊपर ही कह्यो थो, समस्त अपि कहता जावत छे शुभ क्रियारूप अशुभ क्रियारूप अन्तर्जल्प रूप बहिर्जल्परूप इत्यादि। करतूनिरूप, कर्म कहतां क्रिया अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गलको पिंड अशुद्ध रागादिरूप जीवके परिणाम इसी कर्म, संन्यस्य कहता जीव स्वरूपको घातक इसो जानि आचूल मूलतहि त्याज्य छे। तत्र संन्यस्ते सति-कहता तिहि समस्त ही कर्मको त्याग होते सने, पुण्यस्य वा पापस्य वा का कथा-कहतां पुण्यको पापको कौन भेद रह्यो। भावार्थ इसो-जो समस्त कर्म जाति हेय छे, पुण्य पापका ब्योराकी कहा बात रही। किल कहतां इसो बात निहचासो जानज्यो पुण्यकर्म भलो इसी भ्रांति मत करो। ज्ञान मोक्षस्य हेतु, भवन् स्वयं धावति-ज्ञान कहता आत्माको शुद्ध चेतनारूप परिणमन, मोक्षस्य कहता सकल कर्मक्षय लक्षण इसी अवस्थाको, हेतु भवन् कहता कारण होतो सतो, स्वयं धावति कहतां स्वयं दौड़े छे इसो सहज छे। भावार्थ-इसी जो यथा सूर्यके प्रकाश होतां सहज ही अंधकार मिटे छे, जीवको शुद्ध चेतना रूप परिणवता सहज ही समस्त विकल्प मिटे छे, ज्ञानावरणादि कर्म अकर्म रूप परिणवे छे। रागादि अशुद्ध परिणाम मिटे छे। किसा छ ज्ञान। नैष्कर्म्यप्रतिबद्धम् कहतां निर्विकल्प स्वरूप छे। आ। किसो छे। उद्धतरस-कहता प्रगटपने चैतन्यस्वरूप छे। किसायकी मोक्षकारण होय छ। सम्यक्त्वादिनिजस्वभावभवनात्-सम्यक्त कहतां जीवको गुण सम्यग्दर्शन, आदि कहता सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इसी छे जो निजस्वभाव कहतां जीवको क्षायिक गुण तिहिको भवनात् कहता प्रगटपनायकी। भावार्थ-इसो जो कोई आशंका मानिसे जो मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनकै मिलवा छे, इहा ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग कह्यो, तिहिको समाधान इसी जो शुद्ध स्वरूप ज्ञान माहे सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र सहजी गर्भित छे। तिहितै दोषको कांई नहीं गुण छे।

भावार्थ यहां यह बताया है कि जिनको आत्माकी स्वाधीनता इष्ट है उनको उचित है कि सर्व ही प्रकारके शुभ अशुभ कर्मोंसे, भावोंसे व आठ प्रकार द्रव्यकर्मोंसे मोह छोड़ दें और निश्चल होकर एक अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें ही तन्मय होजावें, यही अभेद रत्नत्रय रूपी मोक्षमार्ग कहोल करता है। यही ज्ञान स्वभाव ज्ञानके अनुभवसे ही प्रकाश होता जाता है। जितना जितना प्रकाश होता है उतना उतना कर्मोंसे छुटता जाता है, यही मोक्षमार्ग है। शुभक्रिया मोक्षमार्ग नहीं। तत्वार्थसारमें स्वयं अमृतचद्रस्वामी कहते हैं-

स्यात्सम्यक्त्वज्ञानचारित्ररूपः पर्यायार्थादेशतो मुक्तिमार्गः।
एको ज्ञाता सर्वदैवाद्वितीयः स्याद् द्रव्यार्थादेशतो मुक्तिमार्गः॥ ९१-२०॥

भावार्थ-व्यवहार नयसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप मोक्षमार्ग है परन्तु निश्चयनयसे एक यही ज्ञाता दृष्टा अनुपम आत्मा सदा ही अनुभवना यही मोक्षमार्ग है।

सवैया ३१ सा मुकतिके साधकको बाधक करम सब, आतमा अनादिको करम मांहि लुक्यो है ॥ ऐतेपरि कहे जो कि पापबुरो पुन्यभलो, सोई महा मूढ मोक्ष मारगसों चूक्यो है ॥ स्वभाव लिये हियेमें प्रगट्यो ज्ञान, ऊरध उमंगि चल्यो काहूं न रुक्यो है ॥ आरसीसो उज्जल बनारसी कहत आप, कारण स्वरूप व्हैके कारिजको ढूक्यो है ॥ १२ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद–यावत्पाकमुपैति कर्मविरतिर्ज्ञानस्य सम्यङ् न सा
कर्मज्ञानसमुच्चयोऽपि विहितस्तावन्न काचित्क्षतिः।
किं त्वत्रापि समुल्लसत्यवशतो यत्कर्म बन्धाय त-
न्मोक्षाय स्थितमेकमेव परमं ज्ञानं विमुक्तं स्वतः ॥ ११ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–इहां कोई भ्रांति आनिसे जो मिथ्यादृष्टिको यतिपनो क्रिया रूप छे, सो बंधको कारण छे, सम्यग्दृष्टिको छे, जो यतिपनो शुभ क्रियारूप सो मोक्षको कारण छे जिहितैं अनुभवज्ञान तथा दया, व्रत, तप, संयम रूप क्रिया दूवे मिलि करि ज्ञानावरणादि कर्मको क्षय करहि छे। इसी प्रतीति केई अज्ञानी जीव करहि छे। तहां समाधान इसौ जो जावंत शुभ अशुभ क्रिया बहिर्जल्प रूप विकल्प अथवा अन्तर्जल्प रूप अथवा द्रव्यनिको विचार रूप अथवा शुद्ध स्वरूपको विचार इत्यादि समस्त कर्मबंधको कारण छे इसी क्रियाको इसौ ही स्वभाव छे। सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टिको इसो भेद तो कांई नहीं। इसी करतूति करि इसौ बन्ध छे। शुद्ध स्वरूप परिणमन मात्र करि मोक्ष छे। यद्यपि एक ही काल विषै सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध ज्ञान फुनि छे, क्रियारूप परिणाम फुनि छे। तथा विक्रिया रूप छे जो परिणाम त्यह करि एकलो बंध होइ छे, कर्मको क्षय एक अंश फुनि नहीं होई छे, इसो वस्तुको स्वरूप। सारो कौनको तिही काल शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्ञान फुनि छै तिहि काल ज्ञान करि कर्म क्षय होइ छे। एक अंश मात्र फुनि बन्ध नहीं होइ छे। वस्तुको इसो ही स्वरूप छे। इसो ज्यों छे त्यों कहिजे छे। तावत्कर्मज्ञानसमुच्चयः अपि विहितः–तावत कहतां तबताई कर्म कहतां क्रिया रूप परिणाम, ज्ञान कहतां आत्म द्रव्यको शुद्धत्व रूप परिणमन त्यहको समुच्चयः कहतां एक जीव विषै एक ही काल अस्तित्वपनो छे, अपि विहित कहतां इसो फुनि छे। परन्तु एक विशेष, काचित् क्षतिः न–काचित् कहतां कौन हूं, क्षतिः कहतां हानि, न कहतां नहीं छे। भावार्थ इसो–जो एक जीव विषै एक ही काल ज्ञान, क्रिया दूवे क्यों होय छे। सो समाधान इसो जो विरुद्ध तो कांई नहीं। केतो एक काल दूवे होइ छे इसो ही वस्तुको परिणाम छे। परन्तु विरोधीसा दीसै छे। परि आपणे आपणे स्वरूप छे विरुद्ध तो नहीं करै छे। ते तो काल ज्यों छे त्यों कहिजै छे। यावत् ज्ञानस्य सा कर्मविरतिः सम्यक् पाकं न उपैति–यावत कहतां जेतो काल, ज्ञानस्य कहतां आत्माको मिथ्यात्व रूप विभाव

रिणाम मिट्यौ छे। आत्मद्रव्य शुद्ध हुओ छे तिहिको, सा कहतां पूर्वोक्त इसो छे, कर्म कहता
पा, तिहिकी विरति कहता त्याग, सम्यक् पाक कहता मूल तहि विनाश, न उपैति
हतां नहीं हुओ छे। भावार्थ इसो-जो जावत अशुद्ध परिणमन छे तावत जीवको विभाव
णमन रूप छे, तिहि विभाव परिणाम कहु अतरंग निमित्त छे, बहिरंग निमित्त छे।
हो-अतरंग निमित्त जीवकै विभावरूप परिणमन शक्ति, बहिरंग निमित्त मोहनीय कर्म-
प परिणयो छे पुद्गल पिंडको उदय। सो मोहनीय कर्म दोई प्रकार छे। एक मिथ्यात्व
प छे, दूजो चारित्र मोहरूप छे। जीवको विभाव परिणाम पुनि दोई प्रकार छे, जीवको
क सम्यक्त गुण छे सोई विभावरूप होतो मिथ्यात्वरूप परिणवे छे। तिह प्रति बहिरंग
मित्त मिथ्यात्वरूप परिणयो छे। पुद्गल पिंडको उदय जीवको एक चारित्र गुण छे सोई
भावरूप परिणयो होतो विषय कषाय लक्षण चारित्र मोहरूप परिणवे छे, तीहे प्रति
हिरंग निमित्त छे चारित्र मोहरूप परिणयो छे पुद्गल पिंडको उदय। विशेष इसो जो
पशमको क्रम इसो छे, पहिली मिथ्यात्व कर्मको उपशम होइ छे अथवा क्षपण होइ छे।
हि पीछे चारित्र मोहकर्मको उपशम होइ छे अथवा क्षपण होई छे तिहिनै समाधान इसो-
ोई आसन्न भव्यजीवके काललब्धि पाया थें मिथ्यात्वरूप पुद्गल पिंड कर्म उपशमै छे
थवा खिपै छे, इसो होता जीव सम्यक्त गुणरूप परिणवै छे, सो परिणमन शुद्धतारूप छे।
ोई जीव जब ताई क्षिपक श्रेणी चढिसे तब ताइ चारित्र मोह कर्मको उदै छे। तिहि उदय
ता जीव पुनि विषय कषायरूप परिणवै छे सो परिणमन रागरूप छे, अशुद्ध रूप छे,
ाहितैं कोई काल विषै जीवको शुद्धपनो अशुद्धपनो एक ही समय घटै छै विरुद्ध नहीं,
किंतु कहतां कोई विशेष छै, सो विशेष ज्यों छे त्यों कहिजै छै। अत्र अपि कहता एक
ो जीवको एक ही काल शुद्धपनो अशुद्धपनो यद्यपि होइ छे तथापि आपणो आपणो कार्य
री छे। यत्र कर्म अवशत: यथाप समुल्लसति-यत कहता जावत, कर्म कहता द्रव्यरूप
ावरूप अतर्गत बहिर्जल्परूप सूक्ष्म स्थूल रूप क्रिया, अवशत कहतां सम्यग्दृष्टि पुरुष
र्वथा क्रिया तहि विरक्त छे परि चारित्र मोहकै उदै बलात्कार होइ छ। धर्माय समुल्ल
सति-कहतां जेती क्रिया छै तेती ज्ञानावरणादि कर्मबंध करै छे, संवर निर्जरा अश मात्र
रनि नहीं करै छ। तत्र एवं ज्ञान मोक्षाय स्थित-तत् कहता पूर्वोक्त, एक ज्ञान कहता
एक शुद्ध चैतन्य प्रकाश, मोक्षाय स्थित कहता ज्ञानावरणादि कर्म क्षयको निमित्त छे।
भावार्थ इसो-जो एक जीव विषै शुद्धपनो अशुद्धपनो एक ही काल होइ छ। परन्तु जेते
अंश शुद्धपनो छे ते ते अश कर्म क्षपन छे। जेते अश अशुद्धपनो छे ते ते अश कर्मबंध
होइ छे, एकै काल दोइ कार्य हो हि छे। एव कहतां योही छे, सदेह करणो नहीं। किसो

है शुद्ध ज्ञान, परमं कहतां सर्वोत्कृष्ट है, पूज्य है, और किसी है। स्वतः विमुक्त त्रिकालपने समस्त परद्रव्य तहि भिन्न है।

भावार्थ–इस कथनका सार यह है कि जहांतक यथाख्यात चारित्रका लाभ नहीं वहांतक इस जीवके शुद्ध ज्ञान भाव तथा रागरूप अशुद्ध भाव दोनों साथ साथ हैं। मिथ्यात्व व अनंतानुबन्धी कषायके उपशम या क्षयसे सम्यग्दर्शन गुण जब प्रगट होजाता है तब शुद्ध ज्ञान भाव प्रगट होजाता है। इस भावसे तो कर्मकी निर्जरा होती है। परन्तु जबतक अन्य कषाय कर्मोंका नाश न हो तबतक उनका उदय होता है तितना अशुद्धपना भी रहता है। इसका कोई इलाज नहीं, दोनों अंश एक एक भावके भीतर चमकते हैं। तथापि अपना अपना कार्य करते हैं। शुद्ध ज्ञानके अंश तो कर्मकी निर्जरा व संवर होते है, अशुद्ध रागके अंशसे कर्मका बन्ध भी होता है। होनेपर भी आत्माकी हानि इसलिये नहीं होती है कि सम्यग्दर्शनके प्रभावसे वह जीव कषाय जनित कालिमाको कालिमा जानता है व उससे अत्यन्त वैरागी है। सहित जो आत्मामें ज्ञान व आत्मबलका पुरुषार्थ है उसके द्वारा वह कषाय जो उदय है अपना बल क्षीण करता हुआ जाता है तब मन्द उदय आता जाता है। सम्यक्तके वसे व कषायके उपशम या क्षयसे जितना अंश वीतराग भाव है उसके प्रभावसे शेष कषाय अनुभागमें कमी पडती जाती है। बस एक समय आजाता है कि कषायके अभाव होने चारित्र गुण भी सम्यक्तके साथ प्रकाशमान होजाता है। यहांपर इस बातको दृढ़ किया कि कर्मकी निर्जराका साधन मात्र शुद्ध ज्ञान भाव है। जितने अंश कालिमा है उतने तो बन्ध ही है। इसलिये मन, वचन, कायकी शुभ क्रिया कभी भी मोक्षका साधन नहीं होसक्ती है। वह केवल बधको ही करनेवाली है। ऐसा श्रद्धान करनेसे ही मिथ्या ज्ञानका नाश होकर सम्यग्ज्ञानका लाभ होगा। मोक्षका उपाय तो एक मात्र निश्चय रत्नत्रय आत्माकी शुद्ध वीतराग परिणति है। जैसा पुरु०में कहा है—

असमग्रं भावयतो रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धो यः, स विपक्षकृतोऽवश्यं मोक्षोपायो न बन्धनोपायः ॥२११॥
येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति, येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति ॥२१२॥

भावार्थ–जहां शुद्ध भावकी पूर्णता नहीं हुई वहां भी रत्नत्रय है परंतु जो कर्मोंका बंध है सो रत्नत्रयसे नहीं है किन्तु अशुद्ध रागभावसे है, क्योंकि जितनी अपूर्णता है या शुद्धतामें कमी है वह मोक्षका उपाय नहीं है, वह तो कर्मबंध ही करनेवाली है। जितने अंशमें शुद्ध दृष्टि है या सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध भावकी परिणति है वह अंश नवीन कर्मबंध नहीं करती है किन्तु संवर निर्जरा करती है। उसी समय जितने अंश रागभाव है इतने अंशसे कर्मबंध भी होता है।

सवैया ३१ सा-जौलों अष्ट कर्मको विनाश नाहि सर्वथा तौलों अंतरातमामें धारा दोइ ॥ एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ॥ इतनो सु कर्म धारा बंध रूप पराधीन शकति विविध बंध करनी ॥ ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार, दोषकी हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-मग्ना कर्मनयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति य

न्मग्ना ज्ञाननयैषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।

विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं

ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-कर्मनयावलम्बनपरा मग्ना -कर्म कहतां अनेक प्रकार क्रिया इसो छ, नय कहता पक्षपात, तिहिको अवलम्बन कहता क्रिया मोक्षमार्ग छै इसो जानि क्रियाको प्रतिपाल तिहिविषै, परा कहता तत्पर छ जे केई अज्ञानी जीव ते पुनि, मग्ना संसार माहे डूब्या। भावार्थ इसो-जो संसार माहे रुलिसे, मोक्षको अधिकारी न छे, किसा छ्या, यत् ज्ञानं न जानन्ति-यत् कहता जिहि कारण तहि, ज्ञान कहता शुद्ध चैतन्य वस्तुको, न जानति कहतां प्रत्यक्षपनै आस्वाद करिवाको समर्थ नहीं छे, क्रिया मात्र मोक्षमार्ग इसो जानि क्रिया करिवाको तत्पर छै। ज्ञान नयैषिण अपि मग्ना -ज्ञान कहता शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहिको, नय कहतां पक्षपात, तिहिका, ऐषिण कहतां अभिलाषी छे। भावार्थ इसो-शुद्ध स्वरूपको अनुभव तो न छै, परन्तु पक्ष मात्र वदहि छै। अपि कहता इसो फुनि जीव, मग्ना कहता संसार माहे डूब्या ही छ। किसा यह डूब्या ही छे। यत् अतिस्वच्छंद मन्दोद्यमा -यत् कहतां जिहि कारण तहिं, अति स्वच्छद कहता अति ही स्वेच्छाचारपनो छै, मन्दोद्यमा कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूपको विचार मात्र पुनि नहीं करै छे, इसा छै जे मिथ्यादृष्टि जानिवा। इहा कोइ आशंका करे छे। जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव मोक्ष मार्ग इसी प्रतीति करतां मिथ्यादृष्टिपनो क्यों होइ छे। समाधान इसो जो वस्तुको स्वरूप इसो छै। यदाकाल शुद्ध स्वरूप अनुभव होइ छै, तदाकाल अशुद्धतारूप छै जावत भाव रूप क्रिया तावत सहज ही मिटै छै। मिथ्यादृष्टि जीव इसो मानै छे जो जावत क्रिया छे त्योंही रहै छे शुद्ध स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग छै। सो वस्तुको स्वरूप योंतो न छै। तिहि तै इसो मानै छे सो जीव मिथ्यादृष्टि छे, वचनमात्र करि कहै छे शुद्ध स्वरूप अनुभव मोक्षमार्ग छ। इसो कहिवे कार्यसिद्धि तो काई न छै। ते विश्वस्य उपरि तरन्ति-ते कहतां इसा जीव सम्यग्दृष्टि छे जे कई, विश्वस्य उपरि कहतां कहा छे जे दोइ जातिका जीव सह दुवै ऊपर होइ करि, तरन्ति कहतां सकल कर्म क्षय करि जो पदको प्राप्त होहि। किसा छे ते-य सततं स्वयं ज्ञानं भवन्त कर्म न कुर्वन्ति, प्रमादस्य वशं जातु न

यान्ति- ये कहतां जे केई निकट संसारी सम्यग्दृष्टि जीव, सततं कहतां निरंतर पनैं, स्वं ज्ञानं कहता शुद्ध ज्ञानरूप, भवंतः कहतां परिणवै छे, कर्म्म न कुर्वंति कहतां अनेक प्रकार क्रियाको मोक्षमार्ग जानि नहीं करे छे। भावार्थ इसो-जो यथा कर्मके उदय शरीर छतो है परि हेयरूप जानहि छे। तथा अनेक प्रकार क्रिया छती छे परि हेयरूप जानहि छे, प्रमादस्य वशं जातु न याति कहतां क्रिया तो कछू नाहीं। इसो जानि विषयी असंयमी फुनि कदाचित् नहीं होहि जिहितै असंयमको कारण तीव्र संक्लेश परिणाम छे सो तो संक्लेश मूल ही वहि गयो छे। इसा जे सम्यग्दृष्टि जीव ते जीव तत्काल मात्र मोक्षपदको हटावै छे।

भावार्थ-यहां यह झलकाया है कि जो अज्ञानी बाहरी क्रियाकांडको व शुभ योगको ही मोक्षमार्ग जानने है वे मिथ्यादृष्टी है, उसी तरह जो ऐसा मानकर कि हम तो शुद्ध हैं क्रिया बन्धका कारण है। इसलिये शुभ क्रिया जो आत्म विचारके लिये बाहरी आलम्बन है उसको छोड़ करि अशुभ क्रिया विषयभोगादिमें पड़ जाते हैं और कभी भी शुद्ध स्वरूपके अनुभवका प्रयास नहीं करते है वे भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टी ही हैं। उनको सच्चा वस्तुस्वरूप झलका नहीं। मोक्षमार्गी वे ही है जो प्रमादी नहीं हैं, सदा आत्मानुभवके लिये पुरुषार्थवान हैं। जो संक्लेश परिणामोंको तो पहले ही दूरसे छोड़ते है, शुभ परिणामोंको भी हेय जानि छोड़नेमें उद्यमी है, शुद्ध भावोंमें रमण करनेके उत्सुक है। प्रयोजनवश मन, वचन कायकी कुछ क्रिया करनी पड़े तो उसे बन्धका कारण व त्याज्य जानते हैं। वीतराग शुद्धात्मानुभव रूप परिणामको ही मोक्षमार्ग जानते हैं। ऐसे ही महात्मा इस विकट भवसागरमें नौकाके समान ऊपर ऊपर तरते हुए बिलकुल पार होजाते हैं। सम्यग्दृष्टी जीव शुद्धात्माका ध्यान करते रहते हैं। तत्व०में कहा है—

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानात् गुणाः सर्वे भवंति च, दोषाः सर्वे विनश्यन्ति शिवसौख्य च संभवेत् ॥१८॥

भावार्थ-शुद्ध चैतन्य स्वरूपके ध्यानसे सर्व ही गुण होते हैं और सर्व दोष नाश होजाते हैं व शिवसुखका लाभ होता है।

सवैया ३१ सा—समुझे न ज्ञान कहे करम किये सों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें ॥ ज्ञान पक्ष गहै, कहै आतमा अबन्ध सदा, वरते सुछन्द तेउ डूबे हैं चहलमें ॥ जथा योग करम करें पै ममता न धरे, रहे सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें ॥ तेई भव सागरके ऊपर है तरे जीव जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें ॥ १५ ॥

मन्दाक्रांता छन्द-भेदोन्मादं भ्रमरसभरान्नाटयत्पीतमोहं
मूलोन्मूलं सकलमपि तत्कर्म कृत्वा बलेन।
हेलोन्मीलत्परमकलया सार्द्धमारब्धकेलि
ज्ञानज्योतिः कवलिततमः प्रोज्जजृम्भे भरेण ॥ १३ ॥

खडान्वय सहित अर्थ—ज्ञानज्योति भरेण प्रोज्जृम्भे-ज्ञानज्योति कहता शुद्ध स्वरूप प्रकाश, भरेण कहता आपणे सपूर्ण समर्थ पने करि प्रोज्जृम्भे कहतां प्रगट हुओ, किसो छे। हल्गोन्मीलत्परमकलया सार्द्ध आरब्धकेलि हेला कहता सहज स्वरूप तहि, उन्मीलत् कहता प्रगट होइ छे, परम कलया कहता निवर्तपने अतीन्द्रिय सुख प्रवाह, सार्द्ध कहता तिहिसौं, आरब्धकेलि कहता पाया छे परिणमन जेने, इसो छे, और किसो छे। क्वलिततम —क्वलित कहता दूरि कियो छे तम कहता मिथ्यात्व अंधकार जे नइ इसौ छे—इसौं ज्यों हुओ है त्यों कहिजै छे। तत्कर्म सकलमपि बलेन मूलोन्मूल कृत्वा—तत् कहतां कह्यो छे अनेक प्रकार, कर्म कहता भावरूप अथवा द्रव्यरूप क्रिया सकल अपि कहता पापरूप अथवा पुण्यरूप बलेन कहता वरजोरपने, मूलोन्मूल कृत्वा कहतां जावत क्रिया मोक्षमार्ग नहीं इसौ मानि समस्त क्रिया विषै ममत्वको त्याग करि शुद्ध ज्ञान मोक्ष मार्ग इसो सिद्धान्त सिद्ध हुओ, किसो छे कर्म। मदोन्माद—मेद कहता शुभ क्रिया मोक्षमार्ग इसो पक्षपात रूप विहरो त्यहकरि, उन्माद कहता हुओ छे गहिलो इसो छे, और किसो छे, पीतमोह पीत कहता गिल्यो छ, मोह कहता विपरीतपनो जेने इसो छे। यथा कोई धतूराको पान करि गहिलो होइ छे इसो छे जो पुण्य कर्मको भलो मानै छे। आर किसो छे, भ्रमर समरात् नाटयत—भ्रम कहता धोखो ।तिहिको रस कहता अमल तिहिको, भर कहतां अत्यन्त चढ्यो तिहथकी नाटयत कहता नाचै छे। भावार्थ इसौ—यथा कोई धतूरो पीया छे सुद्धि जाइ छे पर नाचै छे। तथा मिथ्या व कर्मके उदय शुद्ध स्वरूप अनुभवनैं भ्रष्ट छे। शुभ कर्म कइ उदय जो देव आदि पदवी तिहिको रमै छे जो अइ देव मरे इसी विभूति सो तो पुण्य कर्मके उदय थकी इसो मानि वारम्वार रमै छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टिके अंतरंगमें सच्चा ज्ञान कल्लोल करने लगा तब उसने यही माना कि मात्र शुद्ध स्वरूपका अनुभव ही मोक्षमार्ग है, अतींद्रिय सुख ही सच्चा सुख है। उसकी प्राप्तिका उपाय शुभ क्रियाकांड व शुभ भाव नहीं है, उसका उपाय मात्र एक स्वानुभव है। तब उसके भीतरसे सर्व भ्रम निकल गया। उसके उपरसे मोहका नशा उतर गया। जिस नशेमें शुभ क्रियाकांडको मोक्षमार्ग मानकर उसीके लिये रातदिन प्रयत्नशील था, शुद्धात्मानुभवके लिये बिल्कुल प्रमादी था। अब यथार्थ वस्तुस्वरूप समझ गया कि पुण्य व पाप दोनों ही त्यागने योग्य हैं। मोक्ष जब इन सर्व कर्मोंसे रहित है तब उसका उपाय भी मात्र सर्व शुभाशुभ रहित शुद्ध ज्ञानके अनुभवसे है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

सिद्धिहि कम पथना भाउ विसुद्धउ एक्कु। जो तसु भावइं मुणि चलइ सो किम होइ विमुक्कु ॥१९६॥

भावार्थ—मोक्षका मार्ग एक शुद्ध भाव ही है। जो मुनि इस भावसे रहित होता है वह किसतरह मोक्ष पासक्ता है।

सवैया ३१ सा—जैसे मतवारो कोउ कहे और करे और, तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरत है ॥ अशुभ करम बंध कारण बखाने माने, मुकतीके हेतु शुभ रीति आचरत है ॥ अंतरसुदृष्टि भई मूढता विसर गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरत है ॥ करणीसों भिन्न रहे आतम स्वरूप गहे, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करत हैं ॥ १६ ॥

इति पुन्यपापरूपेणद्विपात्रीभूत एकपात्री भूय कर्मनिःक्रान्तः अथ प्रविशति आश्रवः।

भावार्थ–इस तरह नाटकमें पुण्य पाप दो भेदपना कर कर्म आया था सो एक ही पुद्गल कर्मरूप रह गया, भेष छोड़ निकल गया। आगे अखाड़ेमें आस्रव आता है।

॥ इतिश्री समयसारनाटके पुण्यपाप एक ही करणद्वार ॥ ४॥

पांचवां आस्रव अधिकार।

दोहा—पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप। अब आश्रव अधिकार कछु, कहूं अध्यातम रूप ॥१॥

द्रुतविलंवित छंद–अथ महामदनिर्भरमन्थरं समररङ्गपरागतमास्रवं।
अयमुदारगभीरमहोदयो जयति दुर्ज्जयबोधधनुर्द्धरः ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–अथ अयं दुर्ज्जय बोधधनुर्द्धरः आस्रवं जयति–अथ कहतां यहाते लेइ करि, अयं दुर्जय कहतां यह अखण्डित प्रताप इसो, बोध कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव, इसो छे, धनुर्द्धरः कहतां जोधा, आस्रवं जयति कहतां अशुद्ध रागादि परिणाम लक्षण आस्रव तिहिको, जयति कहता मेटै छे। भावार्थ इसो–जो इहांतै लेइ करि आस्रव स्वरूप कहिजै छे, किसो छे ज्ञान जोधा। **उदारगम्भीरमहोदयः**–उदार कहता शाश्वतो इसो छे, गम्भीर कहतां अनन्त शक्ति विराजमान इसो छे, महोदय कहतां स्वरूप जिहिंको इसो छे, किसो छे आस्रव। **महामदनिर्भरमन्थरं**–महामद कहतां समस्त संसारी जीव राशि आस्रवके आधीन छे, तिहितै हूओ छे गर्व अभिमान, तिहिकरि, निर्भर कहतां मग्न हूओ छे, मन्थरं कहतां मतवालानी परै, इसो छे। **समररङ्गपरागतम्ः**–समर कहतां संग्राम इसो छे, रङ्ग कहतां भूमि तिहि विषै परागतं सन्मुख आया छे। भावार्थ इसो–जो यथा प्रकाश अन्धकारको परस्पर विरुद्ध छै तथा शुद्ध ज्ञानको आस्रवको विरुद्ध छै।

भावार्थ–यहां यह सूचनाकी है कि आगे आस्रवका व्याख्यान करेंगे। यह आस्रव भाव सर्व जीवोंमें भरा हुआ है। इसलिये आस्रवको बहुत अभिमान है जो मैं संसार विजयी हूं। परन्तु इसका विरोधी शुद्ध ज्ञान या शुद्धात्मानुभव है। जो इस आस्रवको जीतकर उसका सर्व अभिमान चूर्ण कर देता है। ऐसा आत्मज्ञान रूपी योद्धा सदा ही बना रहो, जिससे आस्रवका बल न चले, यह भावना आचार्यने की है।

सवैया ३१ सा—जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप ते ते निज बस करि राखे बल तोरिके ॥ महा अभिमान ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रण थम्भ ठाढ़ो भयो मूछ मोरिके ॥ आयो तिहि थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फेरिके आस्रव पछार्यो रणथम्भ तोड़ि डार्यो ताहि, निरखि बनारसी नमत कर जोरिके ॥ २ ॥

मालिनीछंद—भावो रागद्वेषमोहैर्विना यो जीवस्य स्यात् ज्ञाननिर्वृत्त एव।

रुन्धन् सर्वान् द्रव्यकर्मास्रवौघानेषो भावः सर्वभावास्रवाणाम् ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—जीवस्य यः भावः ज्ञाननिर्वृत्त एव स्यात्—जीवस्य कहता काललब्धि पाया थकी प्रगट हुओ छे सम्यक्त्व गुण जिहिको इसो छे। जो कोई जीव तिहिको, यः भावः कहता जो कोई सम्यक्त्व पूर्वक शुद्ध स्वरूप अनुभव रूप परिणाम, इसो परिणाम किसो होइ, ज्ञान निर्वृत्त एव स्यात् कहतां शुद्ध ज्ञान चेतना मात्र छे, तिहि कारण तहि, एष कहतां इसो छे जो शुद्ध चेतना मात्र परिणाम। सर्वभावास्रवाणां अभावः—सर्व कहतां असंख्यात लोक मात्र आस्रव छे भाव कहतां अशुद्ध चेतन रूप रागद्वेष मोह आदि जीवको विभाव परिणाम इसो छे, आस्रवाणां कहतां ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मको निमित्त मात्र तिहिको, अभाव कहतां मूलोन्मूल विनाश छे। भावार्थ इसो—जो यदा काल शुद्ध चैतन्य वस्तुकी प्राप्ति होय छे, तदा काल मिथ्यात्व रागद्वेष रूप जीवको विभाव परिणाम मिटे छे, तिहिते एक ही काल छे, समयको अन्तर न छे। किसो छे शुद्ध भाव। रागद्वेष मोहैं विना—कहतां रागादि परिणाम रहित छे। शुद्ध चेतना मात्र भाव छ, और किसो छे। द्रव्यकर्मास्रवौघान सर्वान् रुन्धन्—द्रव्य कर्म कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप परिणयो छे पुद्गल पिंड तिनको आस्रव कहता होय छे धाराप्रवाहरूप समय २ प्रति आत्म प्रदेश इसो एक क्षेत्रावगाह तिनको, ओघ कहता समूह। भावार्थ इसो—जो ज्ञानावरणादि रूप कर्म वर्गणा परिणवे छे तिनका भेद असंख्यात लोक मात्र छे, तिनको सर्वान् कहतां जावत धारारूप आवे छे कर्म, रुन्धन् कहतां तिह सबहको रुन्धतो होतो। भावार्थ इसो—जो कोई इसो मानिसी जीवको शुद्ध भाव हुओ सन्तो रागादि अशुद्ध परिणामको मेटे छे। आस्रव ज्यों ही होइ सो त्यों ही होइ छ। सो यों तो नहीं। ज्यों कहने छे त्यों छे। जीवको शुद्ध भावरूप परिणवतां अवश्य ही अशुद्ध भाव मिटे छे। अशुद्ध भावके मिटतां अवश्य ही द्रव्य कर्मरूप आस्रव मिटे छे, तिहिते शुद्ध भाव उपादेय छे अन्य समस्त विकल्प हेय छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि भेदज्ञान होनेके पीछे सम्यग्दृष्टी जीवके भीतर जो भाव होते हैं वे ज्ञान भावको लिये हुए होते हैं। मिथ्यात्व अवस्थामें जितने भाव होते थे वे नहीं होते हैं। तब जो कर्म मिथ्यात्व दशामें आकर बंधते थे उनका आना भी बन्द

होजाता है। यह सम्यक्त भावकी अपूर्व महिमा है। शुद्ध आत्मीक भाव ही ग्रहण करने योग्य है। यह प्रतीति अनन्त संसारके कारण कर्मबंधको बिलकुल रोक देती है।

कल्लाणालोयणामें कहते हैं—

इक्को सहावसिद्धो सोह अप्पावियप्प परिमुक्को। अण्णो ण मज्झ सरण सरण सो एक्क परमप्पा ॥३५॥

भावार्थ—ज्ञानीके यह भाव है कि मैं एक सहज सिद्ध आत्मा हूं—सर्व संकल्प विकल्पसे रहित हूं। इसी शुद्ध आत्माकी मैं शरण लेता हूं अन्य किसीकी शरण नहीं लेता हूं।

सवैया २३ सा—दर्वित आश्रव सो कहिये जहिं, पुद्गल जीव प्रदेश गरासै ॥ भावित आश्रव सो कहिये जहिं, राग विमोह विरोध विकासै ॥ सम्यक पद्धति सो कहिये जहिं, दर्वित भावित आश्रव नासै ॥ ज्ञानकला प्रगटे तिहि स्थानक, अन्तर बाहिर और न भासै ॥ ३ ॥

उपजाति छन्द—भावास्रवाभावमयं प्रपन्नो द्रव्यास्रवेभ्यः स्वत एव भिन्नः।
ज्ञानी सदा ज्ञानमयैकभावो निरास्रवो ज्ञायक एक एव ॥ ३ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—अयं ज्ञानी निराश्रवः एव—अयं कहतां द्रव्यरूप छतो छे। ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, निराश्रवः एव कहतां आश्रव तहि रहित छे। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टि जीव कहु न्यौंघकरि विचारता आश्रव घटै नहीं। किसो छे ज्ञानी, एकः कहतां रागादि अशुद्ध परिणाम तहि रहित छे, शुद्धस्वरूप परिणयो छे। और किसो छे। ज्ञायकः कहतां स्वद्रव्य स्वरूप परद्रव्य स्वरूप समस्त ज्ञेय वस्तुको जानिवा समर्थ छे। भावार्थ—इसो जो ज्ञायकमात्र छे—रागादि अशुद्ध रूप नहीं छे। और किसो छे, सदा ज्ञानमयैकभावः सदा कहतां सर्व काल, धाराप्रवाहरूप, ज्ञानमयः कहतां चेतनरूप इसो छे, एक भाव कहतां परिणाम जिहिको। भावार्थ इसो—जो जावंत छे विकल्प तेता समस्त मिथ्या ज्ञान मात्र वस्तुको स्वरूप थो सो अविनश्वर रह्यो। निराश्रवपनो सम्यग्दृष्टि जीवको ज्यों घटै छे त्यों कहिजे छे। भावास्रवाभावं प्रपन्नः—भावस्रव कहता मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध चेतना परिणाम तिहिको अभावं कहतां विनाश, तिहिको प्रपन्न कहतां प्राप्त हुओ छे। भावार्थ इसो—जो अनंतकाल तहि लेइ करि जीव मिथ्यादृष्टि होतो संतो मिथ्यात्व रागद्वेष रूप परिणवै थो तिहिको नाम आस्रव छे। सो तो काललब्धि पावतां सोई जीव सम्यक्त पर्यायरूप परिणयो शुद्धतारूप परिणयो अशुद्ध परिणाम मिट्यो, तातहिं भावास्रव तहितो इसै प्रकार रहित हूओ। द्रव्यास्रवेभ्यः स्वतः एव भिन्नः—द्रव्यास्रवेभ्यः कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पर्यायरूप जीवका प्रदेश बैठे छे पुद्गल पिंड तिहि तहि, स्वतः कहतां स्वभाव तहिं भिन्न एव कहता सर्व काल निरालो ही छे। भावार्थ इसौ—जो आस्रव दोइ प्रकार छे। व्यौरो-एक द्रव्यास्रव छे, एक भावास्रव छे, द्रव्यास्रव कहता कर्मरूप बैठे छे आत्माका प्रदेशहं पुद्गल पिंड इमा द्रव्यास्रव तहि जीव स्वभाव ही तहि रहित छे। तिहि तहि यद्यपि

वके प्रदेश कर्म पुद्गल पिंडके प्रदेश एक ही क्षेत्र रहहि छे। तथापि माहे माहे एक स्वरूप नहीं होहि छे आपणा आपणा द्रव्य गुण पर्यायरूप रहै छे। पुद्गल पिंड तहि व भिन्न छे। भावस्रव कहतां मोह रागद्वेष रूप विभाव अशुद्ध चेतन परिणाम सो इसा रेणाम यद्यपि जीव कहु मिथ्यादृष्टि अवस्था विषै छता ही छै। तथापि सम्यक्त रूप रेणवता अशुद्ध परिणाम मिट्या। तिहि तहि सम्यग्दृष्टि जीव भावास्रव तहिं रहित छे इतहि इसो अर्थ निपज्यो जो सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव छे और सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव तों छे त्यों कहिजे छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवके वे सब भाव मिट गए जो मिथ्यात्व अवस्थामें होते थे। उसको यही अनुभव है कि मैं शुद्ध चेतन्य मात्र पदार्थ हूं, मैं जाननेवाला हूं, मेरा स्वभाव रागद्वेष करनेका नहीं है, इसतरह भावास्रवसे छूट गया। तथा द्रव्यकर्मोंसे तो सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावसे ही अपनेको भिन्न जानता है। वे पुद्गल हैं आत्मासे बंधा भिन्नस्वभाव रूप हैं। ज्ञानी जीव सदा यही श्रद्धा रखता है कि मेरा सम्बन्ध न कभी भावकर्मसे है, न द्रव्यकर्मसे है, न नोकर्मसे है। इसलिये यह द्रव्यास्रव और भावास्रव दोनोंसे ही रहित है। यह आत्मानुभव और भेदज्ञानकी महिमा है। तत्व०में कहा है—

क्षयं नयति भेदज्ञश्चिद्रूपप्रतिघातकं। क्षणेन कर्मणां राशिं तृणानां पावको यथा ॥१२।८॥

भावार्थ—भेदज्ञानी महात्मा चैतन्यरूपके घातक कर्मोंको क्षणमात्रमें जला देता है जिसतरह अग्नि तृणोंके ढेरको जला देती है।

✓चौपाई—जो द्रव्यास्रव रूप न होइ। जहं भावास्रव भाव न कोइ ॥
जाकी दशा ज्ञानमय कहिये। सो ज्ञाता निरास्रव कहिये ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद-सन्न्यस्यन्निजबुद्धिपूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिन्दन् परवृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णो भव
न्नात्मा नित्यनिरास्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा ॥ ४ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ—आत्मा यदा ज्ञानी स्यात् तदा नित्यनिरास्रवः भवति—

आत्मा कहतां जीवद्रव्य, यदा कहतां जे ही काल, ज्ञानी स्यात् कहतां अनतहकाल ादि विभाव मिथ्यात्व भाव परिणयो थो सो निकट सामग्री पाय करि सहज ही विभाव रिणाम छूटे छै। स्वभाव सम्यक्तरूप परिणवै छे इसो कोई जीव होइ। तदा कहतां सो काल आदि देइ भावत आगामि काल, नित्य निरास्रव कहतां सर्वथा सर्वकाल सम्यग्दृष्टि जीव आस्रव तहि रहित भवति कहता होइ छे। भावार्थ इसो—जो कोई संदेह करिसी जो सम्यग्दृष्टि आस्रव सहित छ के आस्रव रहित छे। समाधान इसो जो आस्रव तहिं रहित छे।

कार्यो करतो होतो निराश्रव छे। निजबुद्धिपूर्वं रागं समग्रं अनिशं स्वयं संन्यसन्-निज कहतां आपणी, बुद्धि कहतां मन, पूर्व कहतां मन कहुं आलम्बन करि होहि छे राग मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणाम इसो छे, रागं कहतां परद्रव्य सहु रंजित परिणाम, समग्रं कहतां असंख्यात लोक मात्र भेद रूप छे, अनिशं कहतां सम्यक्त उत्पत्ति काल तहि तें करि आगामि सर्व काल, स्वयं कहतां सहज ही, सन्यस्यन् कहतां छोडतो होतो। भावार्थ इसो–जो नानाप्रकार कर्मके उदय नानाप्रकार संसार शरीर भोग सामग्री होइ छे। इसी समस्त सामग्रीको भोगवने मतै हौं देव हौं, हौं दुःखी हौं, हौं मनुष्य हौं, हौं सुखी हौं इत्यादि रूप नहीं रचै छे। जाने छे, हौं चेतना मात्र शुद्ध स्वरूप छौं। एती समस्त कर्मकी रचना छे। इसौं अनुभवतां मनका व्यापाररूप राग मिटै छे। अबुद्धिपूर्वं अपि तं जन्तुं वारंवारं स्वशक्ति स्पृशन्–अबुद्धिपूर्वं कहतां मनके आलम्बन पाषं मोह कर्मको उदय निमित्त कारण तहि परणवै छे अशुद्धता रूप जीवके प्रदेश, तं अपि कहतां तिहिकी फुनि, जेतुं कहतां जीतिवाकै निमित्त, वारम्वारं कहता अखण्डित धारा प्रवाह रूप, स्वशक्तिं कहता शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहिको, स्पृशन् कहता स्वानुभव प्रत्यक्षपनै आस्वादतो होतो। भावार्थ इसो–जो मिथ्यात्व रागद्वेष रूप छे जे जीवके अशुद्ध चेतनारूप विभाव परिणाम ते दोइ प्रकार छे। एक परिणाम बुद्धिपूर्वक छै, एक परिणाम अबुद्धि पूर्वक छे। ब्यौरो–बुद्धिपूर्वक कहता जावंत परिणाम मनके द्वार करि प्रवर्तै, वाह्य विषयके आधार करि प्रवर्तै, प्रवर्तता हौतां सो जीव आपुनपै फुनि जानै जो म्हारा परिणाम इसो रूप छै। तथा अन्य जीव फुनि जानहि अनुमान करि जो इहि जीवकै इसा परिणाम छै। इसा परिणाम बुद्धिपूर्वक कहिजे। सो इसा परिणामहंको सम्यग्दृष्टि जीव मेटि सकै जिहि तहि इसा परिणाम जीवकी जानि माहे छे। शुद्ध स्वरूपको अनुभव होता जीवका साराको फुनि छे। तिहितै सम्यग्दृष्टि जीव पहला ही इसा परिणाम मिटै छे। अबुद्धि पूर्वक परिणाम कहतां पंचइन्द्रियमनको व्यापार विना ही, मोह कर्मको उदय निमित्त पाया मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध विभाव परिणाम रूप आपुणपै जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशइ परिणवै सो इसो परिणमन जीवकी जानि माहे नहीं और जीवका सागको फुनि नहीं तिहि तै ज्योंही त्योंही मेटचो जाइ नहीं। तिहितै इसा परिणाम मेटिवाको निरंतरपनै शुद्ध स्वरूपको अनुभवै छै, शुद्ध स्वरूपको अनुभव करतां सहज ही मिटिस्यै। आगे उपाय तो कोऊ नहीं तिहि तै एक शुद्ध स्वरूपको अनुभव उपाइ छै। औ' कार्यो करतो होतो निरास्रव होइ छै। एव परवृत्तिं सकलां उच्छिन्दन्–एव कहता अवश्य करै छे। पर कहता जावत ज्ञेय वस्तु तिहिकी वृत्ति कहता तिहि विषै रंजकपनो इसी परिणाम क्रिया तिहिको, सकल कहतां यावंत छे शुभ रूप अथवा

शुभ रूप तिहिको, उच्छिदन् कहतां मूलतहिं उखारतो होतो सम्यग्दृष्टि निरास्रव होइ छे। भावार्थ इसो-जो ज्ञेय ज्ञायकका सम्बन्ध दोइ प्रकार छे, एक तो जानपना मात्र छे रागद्वेष रूप न छे-यथा केवली सकल ज्ञेय वस्तुने देखे जाने पर तु कोनहु वस्तु विषै रागद्वेष नाहीं करै छे तिहिको नाम शुद्ध ज्ञान चेतना कहिये सो सम्यग्दृष्टि जीवके शुद्ध ज्ञान चेतनारूप जानपनो छे, तिहितै मोक्षको कारण छे बंध कारण न छे। दूजो जानपनो इसो जो केताएक विषय वस्तुको जानपनो फुनि और मोहकर्मको उदय निमित्त पायकरि इष्ट विषै राग करै छे, भोगको अभिलाष करै छे तथा अनिष्ट विषै द्वेष करै छे अरुचि करै छे, सो इसा रागद्वेष करि मिल्यो छे जो ज्ञान तिहिको नाम अशुद्ध चेतना ज्ञान कर्म चेतना कर्मफल चेतना रूप कहिजे, तिहितै बंधको कारण छे। इसो परिणमन सम्यग्दृष्टिको न छे। जिहितहि मिथ्या स्वरूप परिणाम गया थकी इसो परिणमन नहीं होइ छे। इसो अशुद्ध ज्ञान चेतनारूप परिणाम सम्यग्दृष्टिको होइ छे। और किसो होतो निरास्रव होइ छे। ज्ञानस्य पूर्ण भवन्-कहता पूर्ण ज्ञानरूप होतो सतो। भावार्थ इसो-जो ज्ञानको खण्डितपनो जो रागद्वेष करि मिल्यो छे। रागद्वेषके गया थै ज्ञानको पूर्णपनो कहिजे। इसो होतो सतो सम्यग्दृष्टि जीव निरास्रव होइ छे।

भावार्थ-यहां-यह भाव है कि सम्यग्दृष्टि जीवके आस्रव नहीं होता क्योंकि उसको अपने शुद्ध ज्ञान स्वरूप का श्रद्धा पूर्ण ज्ञान श्रद्धान तथा अनुभव है, वह बुद्धिपूर्वक रागद्वेष नहीं करता है। पुण्य कर्मके उदयसे जो शुभ संयोग मिलते हैं उनको होते हुए यह अहंकार व ममता नहीं करता है, जो मैं सुखी हूं, मैं धनी हूं, मैं चक्रवर्ती हूं। और यदि पापकर्मके उदयसे अशुभ संयोग होते हैं तो उनके होते हुए यह खेद भी नहीं करता है कि मैं दुःखी हूं रोगी हूं, दलिद्री हूं। इसका कारण यह है कि उसकी आत्मबुद्धि एक मात्र अपने शुद्ध आत्मस्वरूपपर है, शेष सब अवस्थाओंको वह कर्म जनित नाटक समझता है। उनमें ज्ञाता दृष्टा रूप रहता है, रमायमान नहीं होता है। बुद्धिपूर्वक या इच्छापूर्वक राग द्वेष तो सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको नहीं होते हैं। किन्तु अबुद्धि पूर्वक होजाते हैं। उन सम्यग्दृष्टियोंको जिनके अभी अप्रत्याख्यानावरण कषाय व प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय हो आता है। ऐसे जावोंके मन, वचन, काय व इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति भी तदनुकूल होती है। वे गृहस्थीके सब ही करनेयोग्य कार्य करते हैं, राज्यपाट व्यापारादि सब कुछ करते हैं, परन्तु उसमें रमायमान नहीं होते हैं। उनको भी कर्मका नाटक समझते हैं। तथा उनके मेटनेके लिये भी निरंतर शुद्धात्मानुभवका अभ्यास करते हैं, जिसके द्वारा परिणामोंकी उज्ज्वलता होकर आगामी उदय आनेयोग्य कषायोंकी वर्गणाओंमें शक्तिकी कमी होती जाती है। जो साधुगन हैं

उनकी मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति रागद्वेषरूप नहीं होती है, क्योंकि उनके संज्वलन कषायका उदय होता है, वे इन्द्रिय विषय व्यापारमें परिणमन नहीं करते हैं। जो अप्रमत्त गुणस्थान व उससे आगेके साधु हैं, उनको तो ऐसी स्वरूपमग्नता होती है कि जो कुछ मंद कषायका उदय है, वह उनके अनुभवमें नहीं आता है, इतना अबुद्धिपूर्वक है। टीकाकारने जो यह कहा है कि अबुद्धिपूर्वकसे यह प्रयोजन है कि इन्द्रिय व मनका व्यापार तदनुकूल न हो सो यह अवस्था वीतराग सम्यग्दृष्टियोंके ही संभव है, जो बिलकुल शुद्धोपयोगमें ध्यानमग्न रहते हैं, जहां कषायके उदयसे न चाहते हुए भी जो इंद्रिय व मनकी प्रवृत्ति होती है और सम्यग्दृष्टिकी इस प्रवृत्तिको भी अबुद्धि पूर्वक कहते हैं इसका मतलब यह है कि सम्यग्दृष्टि उन प्रवृत्तियोंका स्वामी नहीं बनता है। उनको कर्मकृत रोग जानता है। उनको अपने आत्माका कर्तव्य नहीं समझता है। लाचार हो कषायरूपी रोगका इलाज मात्र करता है। टीकाकारने जो सम्यग्दृष्टिके ज्ञानचेतना ही बताई है और उसको केवलीकी सदृशता दी है व कर्मचेतना व कर्मफल चेतनाका निषेध बताया है सो यह कथन श्रद्धान व रुचि अपेक्षा तो सर्व प्रकारसे सम्यग्दृष्टियोंमें घट सकेगा क्योंकि गृहस्थ या मुनि सर्व ही तत्वज्ञानी अपना रंजकपना अपने शुद्ध ज्ञान स्वभावमें ही रखते हैं। अतरंगसे वे संसार शरीर व भोगोसे पूर्ण वैरागी हैं। परमाणु मात्र भी अपना नहीं मानते हैं न किसीसे द्वेष करते हैं। इससे न रागद्वेष रूप कर्ममें रंजित होते हैं न कर्मके फल सुख दुःखमें रंजित व आकुलित होते हैं। परन्तु चारित्र अपेक्षा जहातक अप्रमत्त गुणस्थान नहीं हुआ है वहातक ऐसा कषायका तीव्र उदय है जिसके वशीभूत होकर रागद्वेष रूप कार्य भी करते व सुख दुःखमें सुखी व दुःखी भी होजाते हैं। प्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु धर्मोपदेश देते हैं व ग्रंथ पठन करते है, शिष्योंकी रक्षा करते है। यह सब कुछ शुभ कार्यमें वर्तन है। कभी मनोज्ञ स्थान व शिष्य व शास्त्रका समागम होता है तो सुख भी मानते हैं व अमनोज्ञ स्थानादि व शिष्यादि हों तो दुःख भी मान लेते हैं। व गृहस्थ पांचवें व चौथे गुणस्थानवर्ती तो और भी तीव्र कषायके वशीभूत होकर गृहस्थ योग्य आजीविका साधनके कर्म करते है व विषयभोगोंमें भी प्रवर्तते हैं। कभी सुखी व कभी दुःखी होजाते हैं। इससे यह भाव है कि चारित्रकी अपेक्षा कर्म चेतना व कर्मफल चेतनारूप भी प्रवृत्ति होती है। श्रद्धानापेक्षा तो सर्व काल ज्ञान चेतनारूप सर्व सम्यग्दृष्टि रहते हैं। परन्तु चारित्र अपेक्षा स्वानुभवमें जब होते हैं तब ज्ञानचेतनारूप रहते हैं। पूर्ण ज्ञानचेतना केवली भगवानके ही होती है। ऐसा ही कथन स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यजीने पंचास्तिकायजीमें कहा है—

सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं। पाणित्तमदिक्कंता णाणं विंदंति ते जीवा ॥३९॥

भावार्थ-स्थावर जीव मुख्यतासे कर्म फलका अव्यक्त रूपसे अनुभव करते हैं। त्रस जीव कर्मफल सहित कम अर्थात् रागद्वेष पूर्वक कार्य करनेका भी अनुभव करते हैं। परन्तु प्राणोंकी प्रवृत्ति रहित ऐसे केवल ज्ञानी ज्ञानका ही अनुभव करते हैं। यहां तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है इससे उसके वह आश्रव नहीं है जो संसारको बढ़ाने वाला हो। संसारवर्द्धक आश्रव तो मिथ्यादृष्टि जीवके ही होता है। जहांतक कषायका अंश सम्यग्दृष्टि जीवके दशवें गुणस्थान तक होता है वहांतक वह कर्मबंधको यथासंभव गुणस्थानके अनुकूल करता भी है परंतु वह सर्व मिट जाने वाला है, मोक्षमार्गमें रंचमात्र भी बाधक नहीं है। इसलिये हरएक सम्यग्दृष्टि निराश्रव ही है। वह आश्रव भाव व द्रव्यकर्म दोनोंसे अत्यन्त उदासीन है। उनमें स्वामित्व नहीं है, इसीसे वह आश्रव रहित मात्र ज्ञाता दृष्टा है। तत्वज्ञानिके लिये योगसारमें कहा है-

जो सम्मत्तपहाणु बुह सो तयलोय पहाणु। केवलणाण वि लहु लहइ सासयसुक्खणिहाणु॥ ९ ॥

भावार्थ-जो सम्यग्दर्शन भावमें प्रधान है वे तीन लोकमें मुख्य हैं वे अवश्य केवल ज्ञानको व अविनाशी सुखनिधानको पावेंगे।

सवैया ३१ सा—जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक तिन परिणामनकी ममता हरतु है॥ मनसो अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव तिनके विनासवेको उद्यम धरतु है॥ याही भांति पर परिणतिको पतन कर मोक्षको जतन कर भौजल तरतु है॥ ऐसे ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावै सदा जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है॥ ५॥

श्लोक-सर्वस्यामेव जीवन्त्यान्द्रव्यप्रत्ययसन्ततौ।
कुतो निरास्रवो ज्ञानी नित्यमेवेति चेन्मतिः ॥ ६ ॥

खंडान्वयसहित अर्थ-इहां कोई आशंका करे छे। सम्यग्दृष्टि जीव सर्वथा निरास्रव कह्यो और योहू छे। परन्तु ज्ञानावरणादि द्रव्य पिंड ज्योंही थौ त्योंही छतो छे। तथा तिहि कर्मके उदय नानाप्रकार भोग सामग्री ज्योंही थी त्योंही छे। तथा तिहि कर्मके उदय नानाप्रकार सुख दुःखको भोगवे छे, इन्द्रिय शरीर सम्बन्धी भोग सामग्री ज्यों थी त्यों ही छे। सम्यग्दृष्टि जीव तिहि सामग्री कहु भोगवे छे। एती सामग्री छतां निरास्रवपनो क्यों घटे छे, इसो कोई प्रश्न करे छे। द्रव्यप्रत्ययसंततौ सर्वस्यामेव जीवन्त्यां ज्ञानी नित्य निरास्रवो कुतः -द्रव्य प्रत्यय कहतां जीवका प्रदेशनि परिणया छे पुद्गल पिंडरूप अनेक प्रकार मोहनीय कर्म तिहिकी संतति कहतां स्थिति बंधरूप बहुत काल पर्यंत जीवके प्रदेशनु रहे। सर्वस्यां कहतां जेती हुती त्यों हुती, जीवन्त्यां कहतां तेती ही छे। छती छे त्यों ही छे-एक कहतां निहचासों, ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, नित्य निरास्रव कहतां सर्वथा सर्वकाल आस्रव तहि रहित छे। इसो कह्यो सो, कुतः कायों विचारि कह्यो। चेत् इति मतिः-चेत् कहतां

खंडान्वय सहित अर्थ-इसो कहवो जो सम्यग्दृष्टि जीवको बंधन छे सो है प्रतीति ज्यो होइ त्यों और कहिजे छे। यत् ज्ञानिनः रागद्वेषविमोहानां असंभवः अस्य बंधः न-यत् कहतां जिहि कारण तिहि, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टि जीव कहुं, राग कहता रंजक परिणाम, द्वेष कहतां उद्वेग, मोह कहतां विपरीतपनो इसो अशुद्ध भावके असंभवः कहतां विद्यमानपनो न छे भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टि जीव कर्मका उदयको न रंजे छे तिहितै रागादिक न छे। ततः कहतां तिहि कारण तहि, अस्य कहता सम्यग्दृष्टि जीवको बंधः न कहतां ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मको बंध न छे, एव कहतां निहचासों, इसो द्रव्यको स्वरूप छे। हि ते बंधस्य कारणं-हि कहता जिहि कारण तहि, ते कहें रागद्वेष मोह इसा अशुद्ध परिणाम, बंधस्य कारणं कहतां बंधको कारण छे। भावार्थ इसो जो कोई अज्ञानी जीव इसो मानिसे जो सम्यग्दृष्टि जीवके चारित्र मोहको उदय तो छे तिहि उदय मात्र होतां आगामि ज्ञानावरणादि कर्मको बंध हो तो होसी, समाधान इसो जो चारित्र मोहके उदय मात्र बंध नहीं। उदय होतां जो जीवके रागद्वेष मोह परिणाम होहि अन्यथा कारण सहस्र होइ तौ फुनि कर्मबंध न होइ। राग द्वेष मोह परिणाम फुनि मिथ्यात्व कर्मका उदयका साराका छे, मिथ्यात्वके जातां एकला चारित्र मोहका उदयका साराका रागद्वेष मोह परिणमन छे। तिहितै सम्यग्दृष्टीको रागद्वेष मोह परिणाम होहि नहीं तिहितै कर्मबंधको कर्ता सम्यग्दृष्टी जीव न होइ।

भावार्थ-यहां यही बात और भी दृढ़ की है कि जब यह आत्मा तत्वज्ञानी आत्मानुभवी आत्मरसिक होजाता है तब यह केवल आत्मानुभवको ही अपना परम कार्य जानता है। उसका रञ्चमात्र भी मोह अपने स्वरूपको छोड़कर किसी भी पर द्रव्यमें नहीं होता है। जैसा कर्मका उदय आता है उसको ज्ञाता दृष्टा रूपसे भोग लेता है। इसलिये कर्मकी निर्जरा तो होजाती परन्तु बन्ध नहीं होता है। वास्तवमें बन्ध नहीं है जो मिथ्यात्व परिणामकी सत्तामें होता है। मिथ्यात्वके जानेके पीछे जलमें कमलवत् उदासीन भावसे रहनेवाले ज्ञानीके जो कुछ राग अंश या द्वेष अंश होता भी है सो ऐसे अल्प बन्धका कारण है जिसको बन्धके नामसे भी कहना उचित नहीं जंचता। वह सब बंध ज्ञानीकी परिणतिको विकारी बनानेवाला नहीं है। ज्ञानीके ऐसा भाव रहता है जैसा तत्व०में कहा है—

निश्चल: परिणामोऽस्तु स्वशुद्धिचिति मामकः शरीरमोचकं यावदिव भूमौ सुराचलः ॥ १३-२ ॥

भावार्थ-जबतक यह शरीर है तबतक मेरा निश्चल भाव सुमेरुपर्वतके समान अपने शुद्ध आत्मामें ही दृढ़ जमा रहे।

दोहा—जो हित भावसु राग है, अहित भाव विरोध। भ्रमभाव विमोह है, निर्मल भावसु बोध ॥
राग विरोध विमोह मल, येई आश्रव मूल। येई कर्म बढाइके, करे धरमकी भूल ॥
[illegible]

वसन्ततिलका छन्द-अध्यास्य शुद्धनयमुद्धतबोधचिह्नमैकाग्र्यमेव कलयन्ति सदैव ये ते।
रागादिमुक्तमनसः सततं भवन्तः पश्यन्ति बन्धविधुरं समयस्य सारं ॥८॥

खंडान्वय सहित अर्थ-ये शुद्धनय एकाग्र्य एव सदा कलयन्ति-ये कहता जो कोई आसन्न भव्य जीव, शुद्धनय कहता निर्विकल्प शुद्ध चैतन्य वस्तु मात्र, एकाग्र्य कहता समस्त रागादि विकल्प तहि चित्त निरोध करि, एव कहता चित्त माहें निहचै आन करि, कलयन्ति कहता अखंडित धाराप्रवाह रूप अभ्यास करै छे, सदा कहता सर्वकाल, किसो छे। उद्धतबोधचिह्न-उद्धत कहता सर्व काल प्रगट छे सो, बोध कहता ज्ञान गुण सोई छे, चिन्ह कहता लक्षण जिहिको इसो छे। कायोकरि, अध्यास्य-कहतां जैसे कैसे मनमाहें प्रतीति आनकरि। ते एव समयस्य सारं पश्यन्ति-ते एव कहता तेई जीव निहचासों, समयस्य सार कहता सकल कर्म तहि रहित अनन्त चतुष्टय विराजमान परमात्मा पद कहु, पश्यन्ति कहता प्रगटपनै पावहि छे, किसो पावै छे। बन्धविधुर-बन्ध कहता अनादिकाल तहि एक बंध पर्याय रूप चल्यो आयो थो ज्ञानावरणादि कर्म रूप पुद्गल पिंड तिहि तहि, विधुर कहता सर्वथा रहित छे। भावार्थ इसो-जो सकल कर्म क्षय करि हुओ छे शुद्ध तिहिकी प्राप्ति होइ, शुद्ध स्वरूपको अनुभव करते सते, किसा छे ते जीव रागादिमुक्त मनस-कहता रागद्वेष मोह तहि रहित छे परिणाम त्यहको इसा छे। और किसा छे। सततं भवन्तः-सततं कहता निरन्तरपनै भवन्त कहता इसा ही छे। भावार्थ इसो-जो कोई जानिसि सर्वकाल प्रमादी रहै छे कब ही एक जिसा कहा तिसा होहि छे सो यों तो नहीं, सदा सर्वदा काल शुद्धपनै रूप रहै छे।

भावार्थ-यहां यह भाव है कि सम्यग्दृष्टी जीव अपने उपयोगको पर पदार्थोंसे रोक करि शुद्धात्माका सदा अनुभव किया करते हैं। जिससे उनको स्वानुभवके समय परमात्माका ही दर्शन होता है व इसी अभ्याससे वे कभी न कभी अनन्त चतुष्टय विराजमान अर्हन्त परमात्माका पद पा लेते हैं, जिस पदमें आत्मघातक कर्मोंका बंध नहीं रहता है।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जेण सरूव झाइयइ अप्पा एहु अणंतु। तेण सरूव परिणवइ जह फलिहउ मणि मंतु॥

भावार्थ-जिस स्वरूपसे आत्माका ध्यान किया जायगा, तिसी रूप वह हो जायगा। जैसे यदि निर्मल स्फटिकमणी रखी जाय तो निर्मल दीखेगी, यदि लाल हरा डाक लगा दिया जाय तो लाल हरी दीखेगी। शुद्ध स्वरूपके अनुभवसे ही यह शुद्धात्मा होता है,

सवैया २३ सा—जे कोउ निकट भव्यरासी जगवासी जीव मिथ्यामत भेदि ज्ञान भाव परिणए हैं॥ जिन्हके सुदृष्टीमें न राग द्वेष मोह कहुं विमल विलोकनिमें तीनों जीति लए हैं॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हैं॥ तेई बंध पद्धति विदारि पर संग डारि आपमें मगन ह्वै के आपरूप भये हैं॥११॥

वसंततिलका छंद-प्रच्युत्य शुद्धनयतः पुनरेव ये तु
रागादियोगमुपयान्ति विमुक्तबोधाः।
ते कर्मबन्धमिह बिभ्रति पूर्वबद्ध
द्रव्यास्रवैः कृतविचित्रविकल्पजालम् ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तु पुनः कहता यो फुनि छै, ये शुद्धनयतः प्रच्युत्य रागादि योगं उपयांति ते इह कर्मबंधं बिभ्रति-ये कहतां जो कोई उपशम सम्यग्दृष्टि अथवा वेदक सम्यग्दृष्टि जीव, शुद्धनयत कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूपके अनुभव तहि, प्रच्युत्य कहतां भ्रष्ट हुआ छै। रागादि कहता रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम तिहि सो, योग कहता तिहि रूप होनो उपयांति कहता इसा हो हि छै। ते कहतां इसा छै जे जीव कर्मबंध कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गलको पिंड, बिभ्रति कहतां नवां उपार्जे छै। भावार्थ इसौ-जो सम्यग्दृष्टि जीव जब ताई सम्यक्तके परिणामइमों सावितु रहे तब ताईं रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणामके विन होतां ज्ञानावरणादि कर्मबंध न होइ। सम्यग्दृष्टी जीव यो पाछे सम्यक्तके परिणामतै भ्रष्ट हुओ। रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणमइ कइ होतां ज्ञानावरणादि कर्मबंध होइ। जिहि तहि मिथ्यात्वके परिणाम अशुद्ध रूप छे। किसा छे ते जीव, विमुक्तबोधाः-विमुक्त कहतां छूट्यो छे, बोध कहता शुद्ध स्वरूप अनुभव ज्यहको इसा छे। किसो छे कर्मबंध, पूर्वबद्धद्रव्यास्रवैः कृतविचित्रजालं-पूर्व कहता सम्यक्त बिन उपजता, बद्ध कहता मिथ्यात्व रागद्वेष परिणाम करि बांध्या था, द्रव्यास्रवैः कहता पुद्गल पिंड रूप मिथ्यात्व कर्म तथा चारित्र मोह कर्म त्यह करि, कृतविचित्रजाल कृत कहतां कीनो छे, विचित्र कहतां नाना प्रकार, विकल्प कहता रागद्वेष मोह परिणाम त्यहको, जाल कहतां समूह इसो छै। भावार्थ इसो-जो जेतो काल जीव सम्यक्तके भाव रूप परिणयो थो तेतो काल चारित्र मोह कर्म कीलया सापकी नाई आपणो कार्य करिवाको समर्थ न थो, यदा काल सोई जीव सम्यक्तके भावइ तहि भ्रष्ट हुओ मिथ्यात्व भावरूप परिणयो तदा काल उकील्या सापकी नाई आपनो कार्य करिवाको समर्थ हुओ। चारित्र मोहको कार्य इसो जो जीवके अशुद्ध परिणमनको निमित्त होइ। भावार्थ इसो-जो जीव मिथ्यादृष्टी छता चारित्र मोहको बंध पण होइ। जब जीव समकित पावै तब चारित्र मोहके उदय बन्ध होइ पण बन्ध शक्ति हीन होइ तो बंध न कहावै। तिहिथी समकित छतां चारित्र मोह कीलया सांपकी नाई ऊपरि कह्यो। जब समकित छूटै तब उकील्या सापकी नाई चारित्र मोह कह्यो सो ऊपरला भावार्थथी अभिप्राय जाणवो।

भावार्थ-यहां यह भाव है कि जब सम्यग्दर्शन छूट जाता है तब यह जीव राग द्वे

मोहरूप होकर अनेक प्रकार कर्मबंध करता है। सम्यग्दर्शनके प्रभावसे सब द्रव्य कीले हुए सांपके समान रहते हैं, आत्माका बिगाड़ नहीं कर सक्ते हैं। सम्यक्त्व छूट कि फिर वे खुले हुए सांपके समान होकर अनर्थ करने लगते हैं, भेदज्ञानकी महिमा अपार है। तत्व०में कहा है—

संवरो निर्जरा साक्षात् जायते स्वात्मबोधनात्। तद्भेदज्ञानतस्तस्मात् तच्च भाव्यं मुमुक्षुणा ॥ [illegible]

भावार्थ—आत्माके अनुभवसे कर्मोंका संवर होता है व उनकी निर्जरा भी होती है। यह स्वात्मानुभव भेद विज्ञानसे होता है इसलिये मोक्षार्थीको सदा इसी भेद विज्ञानकी भावना करनी चाहिये।

भावार्थ–पुद्गल अन्य है, जीव अन्य है और सब व्यवहार भी अन्य है, पुद्गलादिको छोड़कर जो अपने आत्माको ग्रहण करता है वह शीघ्र संसारसे पार होजाता है।

दोहा—यह निचोर या ग्रन्थको, यहै परम रस पोख। तजै शुद्धनय बंध है, गहै शुद्धनय मोख॥११॥

शार्दूलविक्रिडित छंद-धीरोदारमहिम्न्यनादिनिधने बोधे निबध्नन्धृतिम।

त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वंकषः कर्मणाम॥

तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः।

पूर्णं ज्ञानघनौघमेकमचलं पश्यंति शान्तं महः॥ ११॥

खंडान्वय सहित अर्थ–कृतिभिः जातु शुद्धनयः त्याज्यः नहि–कृतिभिः कहतां सम्यग्दृष्टी जीवहंको, जातु कहतां सूक्ष्म काल मात्र फुनि, शुद्ध नय. कहतां शुद्ध चेतन मात्र वस्तुको अनुभव, त्याज्यः नहि कहता विस्मरण योग्य न छै। किसो छे शुद्धनय। बोधे धृतिं निबन्धन्–बोधे कहतां आत्म स्वरूप विषे, धृतिं कहता अतीन्द्रिय सुख स्वरूप परिणतिको, निबन्धन् कहतां परिणवावै छे, किसो छे बोध। धीरोदारमहिम्नि–धीर कहता शाश्वतो, उदार कहता धाराप्रवाह रूप परिणमन शील, इसो छे महिमा कहतां बड़ाई जिहिको इसो छे और किसो छे। अनादिनिधने–अनादि कहता नहीं छे आदि, अनिधन कहतां नहीं छे अंत जिहिको इसो छे। और किसो छे शुद्धनयकर्मणां सर्वंकषः–कर्मणां कहता ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म पिंड अथवा राग द्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणामहको, सर्वंकषः कहतां मूल तहिं क्षयकरण शील छे। तत्रस्थाः शांतं महः पश्यंति तत्रस्थाः कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभव विषे मग्न छे जे जीव, एकं शांत कहता सर्व उपाधि तहिं रहित इसो छे, महः कहता चैतन्य द्रव्यको, पश्यंति कहतां प्रत्यक्षपणे पावे छे। भावार्थ इसो–जो परमातम पद कहुं प्राप्त होहि छे, किसो छे महः पूर्णं कहता असंख्यात प्रदेश ज्ञान विराजमान छे। और किसो छे, ज्ञानघनौघं–कहता चेतन गुणको पुंज छे। और किसो छे, एकं कहतां समस्त विकल्प तहिं रहित निर्विकल्प वस्तु मात्र छे, और किसो छे। अचलं कहतां कर्मको संयोग मिथ्या थकी निश्चल छे, कार्यो की इसा स्वरूपकी प्राप्ति होइ छे, स्वमरीचिचक्रं अचिरात संहृत्य–स्वमरीचिचक्र कहता झूठो भ्रम छे। जो कर्मकी सामग्री, इंद्रिय, शरीरादि विषे आत्मबुद्धि तिहिको अचिरात कहतां तत्काल मात्र, संहृत्य कहतां विनाश कर। किसो छे मरीचिचक्र। बहिः निर्यत–कहतां अनात्म पदार्थ विषे भम्यो छे। भावार्थ इसो–जो परमातमपदकी प्राप्ति होतां समस्त विकल्प मिटै छे।

भावार्थ–यही है कि जो शुद्धात्माके रुचिवान हैं व जिनकी रुचि संसार शरीर भोगोंसे निकल गई है। वे ही सम्यग्दृष्टी ज्ञानी हैं, वे ही शांत व आनन्दमय अपने आत्माको

ुभवमें लेसकते हैं। मिथ्यात्व अवस्थामें जिनको भ्रम था कि इन्द्रियोंका सुख ही परम व है, शरीरका वास ही हितकारी है व इन्हीं भोगविलासोंसे ही तृप्ति होनेका उसी ह भ्रम था जिस तरह मृगको जलका भ्रम मरीचिकामें होता है। वह भ्रम ज्ञानीके चित्तमे ाके लिये निकल गया है। अपना आत्मीक आनंद मेरे पास है, वही परम सुख है वही ृत है इन्द्रिय सुख विष है। ऐसी दृढ प्रतीति ज्ञानीको होजाती है। इसीसे ये महात्मा ीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। योगसारमें कहा है—

ाउ अप्पा णरयघरु तहउ सुचिउ सरीर अप्पा भावहु णिम्मलउ लहु पावहु भवतीर ॥ ५० ॥

भावार्थ—जैसा घृणाके योग्य नरक का बिल है वैसा यह शरीर है। परन्तु आत्मा । निर्मल है, ऐसी भावना करो तो शीघ्र संसार समुद्रके तट पहुंच जाओगे।

सवैया ३१ सा—करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव ह्वै रह्यो बहिर्मुख व्यापत विष ता ॥ अंतर सुमति आई विमल बड़ाई पाई पुद्गलसों प्रीति टूटी छूटी माया ममता ॥ शुद्धनै ाश कीनो अनुभौ अभ्यास लीनो भ्रमभाव छांड दीनो भीनो चित्त समता ॥ अनादि अनन्त विकल्प अचल ऐसो पद अवलंबि अवलोके राम रमता ॥ १४ ॥

दाक्रांता छन्द-रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा
नालोकान्तादचलमतुलं ज्ञानमुन्मग्नमेतत् ॥ १२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एतत् ज्ञान उन्मग्न-एतत् जिसो कह्यो छै तिसो शुद्ध, ान कहता शुद्ध चैतन्य प्रकाश, उन्मग्न कहतां प्रगट हूओ, जिहिको ज्ञान प्रगट हूओ ीव किसो छै। किमपि वस्तु अन्तः पश्यत -किमपि वस्तु कहता निर्विकल्प सत्ता मात्र केहु वस्तु तिहिको, अन्तः सपश्यत कहता भाव श्रुत ज्ञान करि प्रत्यक्षपने अवलंबे छै। ावार्थ इसो—जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव काल जीव काठकी नाई सड़ छै यों पुनि न छै। ामान्यपने सविकल्पी जीवकी नाइ विकल्पी पुनि न छै। भावश्रुतज्ञान करि किछु निर्वि ल्प वस्तु मात्र अवलंबे छै। परम-इसो अवलम्बन वचन द्वार करि कहिवाको समर्थपनो न छै तिहि तहि करि सहाय नहीं। किसो छै शुद्ध ज्ञान प्रकाश नित्योद्योत—कहता अवि नाशी छै प्रकाश जिहिको, किसायकी। रागादीनां झगिति विगमात्-रागादीना कहतां रागद्वेष मोह जाति छै जावत असंख्यात लोक मात्र अशुद्ध परिणाम त्यहको झगिति विग मात् कहतां तत्काल विनाश थकी। किसा छै अशुद्ध परिणाम। सर्वत अपि आस्रवाणां- सर्वत अपि कहता सर्वथा प्रकार, आस्रवाणां कहतां आस्रव इसी नाम संज्ञा छै उनहको इसा छै। भावार्थ इसो-जो जीवका अशुद्ध रागादि परिणामहको साचो आस्रवपनो यों

तिहिको निमित्त पाइ करि कर्मरूप आस्रवै छे। जे पुद्गलकी वर्गणा ते तो अशुद्ध भा... सारकी छे, तिहिंते त्यहकी कौन बात, परिणामहकं शुद्ध होतां सहज ही मिटै छे। किसो छे शुद्ध ज्ञान, सर्वभावान् प्लावयन्-सर्व भाव कहता जावंत ज्ञेय वस्तु अनागत वर्तमान पर्याय करि सहित तिहिको, प्लावयन् कहतां आपने विषै प्रतिबिंबित ... होतो, किसे करि । स्वरसविसरैः स्वरस कहता चिद्रूप गुण तिहिको, विसरैः ... अनंतशक्ति तिहि करि। स्फारस्फारैः-स्फार कहता अनंतशक्ति तिहिंते फुनि, ... कहता अनन्तानन्त गुणा छे। भावार्थ इसो-जो द्रव्य अनन्त छे, तिहिंते पर्यायभेद ... गुणा छे। तिहि समस्त ज्ञेय तहि ज्ञानकी अनन्तगुणी शक्ति छै। इसो द्रव्यको स्वभाव... और किसो छे शुद्ध ज्ञान। आलोकांतात अचल-कहतां सकल कर्म क्षय होता जिसो निष्प... तिसो ही अनन्तकाल पर्यंत रहिसे कब ही और सो न होइसे। और किसो छे शुद्ध ... अतुलं कहता त्रैलोक्य माहे जिहिका सुख परिणमनको दृष्टांत नही छे। इसो शुद्ध ... प्रकाश प्रगट हुओ।

भावार्थ-यहां यही सार निकाल कर धर दिया है कि सम्यग्दृष्टीको शुद्धात्मा... अनुभव होजाता है। उसके मिथ्यात्वके चले जानेसे रागद्वेष मोहका अन्धेरा नहीं र... है। वह इस विश्वकी परमाणु मात्र वस्तुको नही अपनाता। वह अपने आपमें मग्न हो... अन्य सर्व चिंताओंसे रहित होकर शून्य नहीं होता है। किन्तु अपने ही शुद्ध स्वभाव... रसपान करते हुए परमानदका भोग करता है। ऐसे ज्ञानीके भीतर जैसा केवलज्ञान है तैसा ही अनुपम ज्ञान श्रुतज्ञानके बल कर प्रकाशमान होजाता है। जहा रागद्वेष नही वहा आस्रव कैसा ? भावोंके अभावमें द्रव्यास्रवका अभाव स्वयं सिद्ध है। स्वानुभव... अपूर्व महिमा है। योगसारमें कहते हे—

धण्णा ते भयवन्त बुह जे परभाव चयन्ति, लोयालोयपयासयरु अप्पा निमल मुणन्ति ॥ ६३ ॥

भावार्थ-वे बड़े भाग्यवंत सम्यग्ज्ञानी है, वे धन्य हैं जो रागादि भावोंको पर जान... छोड़ देते हैं और लोकालोकको प्रकाश करनेवाले अपने निर्मल आत्माका स्वाद लेते हैं।

सवैया ३१ मा—जाके परकाशमे न दीसे राग द्वेष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको ता... है ॥ तिहु काल जामें प्रतिबिम्बित अनन्तरूप, आपहु अनन्त सत्ताऽनन्तंत सरस है ॥ भावश्रु... ज्ञान परमाण जो विचारि वस्तु, अनुभौ करै न जहा वाणीको परस है ॥ अतुल अखण्ड अविच... अविनाशी धाम, चिदानन्द नाम ऐसो सम्यक दरस है ॥ १५ ॥

इतिश्री नाटक समयसार राजमल्ल टीकाको आस्रव द्वार समाप्त।

इति आस्रव. निष्कात। अथ प्रविशति संवरः।

भावार्थ–सम्यक्त सहित ज्ञान ही स्वात्मानुभव करानेवाला है। इस सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है। इसने प्रगट होते ही कर्मके आस्रवका निरोध कर डाला है। संवरका यही कारण है। अनन्त संसारके कारण मिथ्यात्वके चले जानेसे ज्ञान निर्मल स्वभावरूप होकर अपने शुद्ध प्रकाशमें चमक रहा है। जैसा स्वपर वस्तुका स्वभाव है तैसा ही जान रहा है। रागद्वेषके विकल्पोसे छूटा हुआ वीतराग रसका पान कर रहा है।

तत्त्व०में कहते है—

अछिन्नधारया भेदबोधन भावयेत् सुधी., शुद्धचिद्रूपसम्प्राप्त्यै सर्वशास्त्रविशारद. ॥ १३ ॥

भावार्थ-बुद्धिमानको उचित है कि सर्व शास्त्रका पंडित होकर शुद्ध चैतन्य स्वरूपके लाभके लिये धाराप्रवाह रूप निरंतर भेद विज्ञानकी भावना करै।

सवैया ३१ सा—आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो, आस्रव महातम अखण्ड अण्डवत है ॥ ताको विसतार गिलिवेकों परगट भयो, ब्रह्मन्डको विकाश ब्रह्मण्डवत है ॥ जामें सब रूप जों सबमें सब रूपसों पै, सबनिसों अलिप्त आकाश खण्डवत है ॥ सोहै ज्ञानभान शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवत है ॥ २ ॥

शार्दुलविक्रीडित छंद–चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयो-
रन्तर्दारुणदारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च।
भेदज्ञानमुदेति निर्म्मलमिदं मोदध्वमध्यासिताः
शुद्धज्ञानघनौघमेकमधुना सन्तो द्वितीयच्युताः ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–इदं भेदज्ञानं उदेति–इदं कहता प्रत्यक्ष छे, भेदज्ञानं कहतां जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव, उदेति कहतां प्रगट होइ छे। किसो छे, निर्मलं कहतां रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणति तहि रहित छे। और किसो छे, शुद्धज्ञानघनौघं-शुद्ध ज्ञान कहता शुद्ध स्वरूपको ग्राहक ज्ञान तिहिको, घन कहता समूह तिहिको, ओघ कहता पुञ्ज छे। और किसो छे, एकं कहतां समस्त भेद विकल्प तहि रहित छे, भेदज्ञान ज्यों होइ छे त्यों कहिजे छे। ज्ञानस्य रागस्य च द्वयोर्विभागं परतः कृत्वा–ज्ञानस्य कहता ज्ञान गुण मात्र, रागस्य कहता अशुद्ध परिणति त्यहको, द्वयोः कहतां दूवेको, विभागं कहता भिन्न२ पनो, परतः कहता एक दूसरे थकी, कृत्वा कहता इसो करि भेदज्ञान प्रगट होइ छे किसा छे ते दूवे–चैद्रूप्यं जडरूपतां च दधतोः–कहतां चैतन्य मात्र जीवको स्वरूप जडत्व मात्र अशुद्धपनाको स्वरूप, किसो करि भिन्नपनो कीयो। अन्तर्दारुणदारणेन अन्तर्दारुण कहतां अन्तरङ्ग सूक्ष्म अनुभव दृष्टि इसो छे, दारणेन कहतां करोत तिहि करि भावार्थ इसो–जो शुद्ध ज्ञान मात्र तथा रागादि अशुद्धपनो दूवे भिन्न भिन्नपनं अनुभव करिवाको अति सूक्ष्म छे। जिहिंतै रागादि अशुद्धपनो चेतनसो देखिंजे छे। जिहितै औ

सुगम छ दृष्टांत यथा पानी कादो सो मिलावणी लगो हुआ छ तथापि स्वरूपको अनुभव करतां स्वच्छता मात्र पानी छ मैलो छै सो कादोकी उपाध छ तथा रागादि परिणाम कर अशुद्ध हुवो जीव छै तथापि ज्ञानचेतना मात्र ज्ञान छ, रागादि अशुद्धपनो उपाध छ। सन्त अधुना इदं मोदध्वं-सन्त कहतां सम्यग्दृष्टि जीव अधुना वर्तमान समय सर्व प्रकार इदं कहतां शुद्ध ज्ञानानुभवको आस्वादहु। किया छै सत पुरुष अभ्यासिता कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव छै जीवन उपदेशो दिया छै और किया छै द्वितीय पुनः कहतां ज्ञेय वस्तु कछु नहीं अवलंब छै।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि जो रागद्वेषादि परिणति जीवोंमें दिखलाई पड़ती है इसके स्वरूपका विचार करो तो प्रगट होता है कि ये परिणति न तो मात्र चेतनकी है न मात्र जड़की है। शंकाका प्रश्न यह होता है कि यह चेतनकी ही परिणति है क्योंकि जितने स्थूल जड़ पदार्थ हमारी दृष्टिगोचर हैं उनमें रागद्वेष दिखलाई नहीं पड़ता है परन्तु जितने संसारी आत्मा हैं उन सबमें दिखलाई पड़ता है। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव हरएकको होसक्ता है कि जब क्रोध मान माया लोभ कषायरूप रागद्वेष जब जिसमें न यत्नसे उठते हैं तब आत्माके ज्ञानको मलीन कर देते हैं इतना ही नहीं ज्ञानका विकाश रोक देते हैं। कषायासक्त प्राणी किसी भी सूक्ष्म ज्ञानकी चर्चाको समझ नहीं सक्ता है तथा जो आकुलता चिंता व क्षोभकी मात्रा न थी वह इन कषायोंके तत्प्रमाण उत्पन्न होजाती है। इन कषायोंके कारण शरीर भी क्षोभित गर्म व चंचल होजाता है, आंखोंकी दृष्टि भी विकार युक्त हो जाती है, समताका नाश होजाता है, इससे यह तो सिद्ध है कि ये रागादि परिणति जीवकी स्वाभाविक परिणति नहीं है। यदि होती तो ज्ञानको नहीं बिगाड़ती। इससे सिद्ध है कि इन रागादिकमें जितना अंश जानपना है उपयोग है वह तो जीवकी परिणति है व जितना अंश रागपना है व क्रोधमें क्रोधपना है मानमें मानपना है, काममें कामपना है सो अत्यन्त सूक्ष्म जो जीवमें कर्मका विपाक या रस है या मैल है। यह कर्म व उसका रस जड़ है, चेतनसे भिन्न है। इस तरह "बार बार विचार करना" इसी करोतके द्वारा प्रथक् बुद्धि सदा स्व पर का जानना उचित है। और तब ही चेतनके स्वभावका रागादि मैलसे पृथक् ही अनुभव होता है। पानीका स्वभाव निर्मल है परन्तु कादेके निमित्तसे मैला होजाता है। ऐसा मैला पानी जिस पदार्थपर पड़ता है उसको शुद्ध करनेकी अपेक्षा मैला ही कर देता है। विचार करके देखा जाय तो पानीका स्वभाव मैला नहीं है न मैला करना है। मैलापना व मैला करना कादेका स्वभाव है। कोई भी बुद्धिमान मैले पानीको देखकर यह नहीं मान सक्ता कि पानीका स्वभाव मैला है। वह सदा ही इसी प्रतीतिमें रहता है कि पानी मैला

नहीं है। पानी स्वच्छ है व स्वच्छ करना ही इसका स्वभाव है। इसी तरह भेदविज्ञानका जाननेवाला बुद्धिमान तत्वज्ञानी सदा ही यह अनुभव करता है कि आत्माका स्वभाव राग-द्वेषरूप नहीं है। यह परमवीतराग ज्ञानानंदमई है। इसलिये जो आनंदके इच्छुक हैं उनका कर्तव्य है कि रागद्वेषादि मैलको मैल जानकर इस मैलसे रति करना छोडें और केवल एक अपने शुद्ध आत्मस्वभावमें ही रति करके परमानंदका लाभ लेवें। सारसमुच्चयमें श्रीकुलभद्र आचार्य कहते हैं—

एतद्देवपरं ब्रह्म न विन्दन्तीह मोहिनः । यच्चचित्तनैर्मल्यं रागद्वेषादिवर्जितम् ॥ १६४ ॥

भावार्थ—रागद्वेषादि मैलसे रहित जो अपने ही चैतन्य भावकी निर्मलता है यही तो परमब्रह्म परमात्माका स्वरूप है। परन्तु यहां जो मोही मिथ्याज्ञानी हैं वे इसका अनुभव नहीं करते हैं।

सवैया ३१ सा—शुद्ध अछेद अभेद अबाधित, भेद-विज्ञान सु तीछन आरा। अंतर भेद स्वभाव विभाव करे जड़ चेतन रूप दुफारा॥ सो जिन्हके उरमें उपज्यो, न रुचे तिन्हको परसंग सहारा। आतमको अनुभौ करि ते; हरखे, परखे परमातम धारा ॥ ३ ॥

मालिनी छन्द—यदि कथमपि धारावाहिना बोधनेन ध्रुवमुपलभमानः शुद्धमात्मानमास्ते।
तदयमुदयदात्मारामपात्मानमात्मा परपरिणतिरोधाच्छुद्धमेवाभ्युपैति ॥३॥

खंडान्वयसहित अर्थ-तत् अयं आत्मा आत्मानं शुद्धं अभ्युपैति-तत कहता तिहि कारण तहि, अयं आत्मा कहता यही छे प्रत्यक्षपनै जीव, आत्मानं कहता आपणा स्वरूप कहु, शुद्धं कहतां यावत छे द्रव्यकर्म, भावकर्म, त्यह तहि रहित। अभ्युपैति कहतां पावे छे, किसो छे आत्मा, उदयदात्माराम उदयत्-कहता प्रगट हूओ छे, आत्मा कहतां आपणो द्रव्य इसो छे, आरामं कहता निवास जिहिको इसो छे, किसो कारण कहता शुद्धकी प्राप्ति होइ छे। परपरिणतिरोधात्-परपरिणति कहता अशुद्धपनो तिहिको रोधात् कहतां विनाश थकी। अशुद्धपनाको विनाश ज्यों होइ त्यों कहिजे छे। यदि आत्मा कथमपि शुद्धं आत्मानं उपलभ्यमानः आस्ते-यदि कहता जो, आत्मा कहतां चेतन द्रव्य, कथमपि कहता काललब्धि पाइ करि सम्यक्त पर्यायरूप परिणवो होतो। शुद्धं कहतां द्रव्य कर्म, भावकर्म तहि रहित इसो छे, आत्मानं कहता आपणा स्वरूप कहु, उपलभ्यमानः आस्ते-कहतां आस्वादतो होतो प्रवर्ते छे। किसो करि-बोधनेन कहता भावश्रुत ज्ञान करि, किसो है। धारावाहिना-कहतां अखण्डित धारा प्रवाहरूप निरंतरपनै प्रवर्ते छे। ध्रुव कहता ई बातको निहचौ छे।

भावार्थ—यहा यह भाव है कि जो जिनवाणीका सार है, इसे समझकर जो कोई निरंतर आत्मा व अनात्माके भिन्न२ स्वभावको लगातार नित्य विचार करनेका अभ्यास करता है

भावार्थ—जिसने जीव अजीवके भेदको जाना है उसहीने मोक्षमार्गको प्राप्त ऐसा योगियो द्वारा अनुभवित मार्गको योगीगण कहते है।

चौपाई—भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहायो॥
भेदज्ञान जिन्हके घट नाहीं। ते जड जीव बन्धे घट माहीं॥ ८॥

दोहा—भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर। धोबी अन्तर आतमा, धोवे निजगुण चीर॥

मंदाक्रांता छंद- भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलम्भा

द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्म्मणां संवरेण।

बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं

ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत्॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एतत् ज्ञानं उदितं—एतत् कहता प्रत्यक्षरूपे छो है, कहतां शुद्ध चैतन्य प्रकाश, उदित कहता प्रगट हूओ, किसो छे। ज्ञानं नियतं अनन्त काल तांहि परिणयो हुतो अशुद्ध रागादि विभाव रूप, काल लब्धि पा आपणे शुद्ध स्वरूप परिणयो छे। और किसो छे। शाश्वतोद्योतं-कहता स प्रकाश छे जिहको इसो छे। और किसो छे। तोषं बिभ्रत् कहता अतीन्द्रिय सु परिणयो छे, और किसो छे परम कहता उत्कृष्ट छे। और किसो छे। अम कहता सर्वथा प्रकार सर्व काल सर्व त्रैलोक्य माहे निर्मल छे साक्षात् शुद्ध है, किसो छे। अम्लानं कहता सदा प्रकाशरूप छे, और किसो छे। एकं कहतां करूप छे। शुद्ध ज्ञान इसो ज्यो हूओ छे त्यों कहिजे छे। कर्मणां संवरेण—कहता वरणादिरूप आस्रवै था जो कर्म पुद्गल जिहिको निरोध करि, कर्मको निरोध ज्यों त्यों कहिजै छे। रागग्रामप्रलयकरणात्—राग कहता रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणाम तिहिको, ग्राम कहता समूह असंख्यात लोकमात्र भेद तिहिको, प्रलय क तहि सत्ता नाश तिहिके, करणात् कहता करिवाथकी। इसा फुनि किसा थे। शुद्ध लंभात्—शुद्ध तत्व कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु तिहिको उपलंभात् कहता साक्षात् प्राप्ति थकी। इसो फुनि किसा थे। भेदज्ञानोच्छलनकलनात्—भेदज्ञान कहता शुद्ध स्वरू तिहिको उच्छलन कहतां प्रगटपनो तिहिको कलनात् कहतां निरन्तरपनै अभ्यास ति भावार्थ इसो—जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव उपादेय छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि संवरका मुख्य उपाय शुद्धात्मानुभव है उस भेदविज्ञानके द्वारा होता है। स्वानुभवके द्वारा रागद्वेष मोह नहीं होते है। इन भावोंके रुकनेसे कर्मोंका आस्रव भी रुक जाता है। सम्यग्दृष्टी जीव अपने स्वरू सदा सन्तोषी रहता है। उसके भीतर निर्मल ज्ञान झलकता है, जिसके प्रताप

वह बंध मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा बहुत अल्प अनुभाग व स्थितिवाला होता है। घातिया कर्मोंमें बहुत कम रस व स्थिति पड़ती है। अघातिया कर्मोंमें जब पुण्यका बन्ध होता है तब बहुत अनुभाग पड़ता है। परन्तु वह पुण्य कर्म उसके लिये मोहित करनेवाला नहीं होता है, किन्तु मोक्षमार्गमें उत्तम निमित्त मिलानेके लिये सहकारी पड़ जाता है। यहांपर भाव यह है कि भेदज्ञान और स्वानुभवका माहात्म्य आचार्यने बताया है कि उसकी उस स्थितिमें गार्हस्थधर्म आत्माका बाधक नहीं होता है किन्तु साधक ही होता है। सम्यग्दृष्टिकी दृष्टि मोक्षकी ओर है। वह निरतर शिवकन्याका वरण चाहता है। कर्मकी पराधीनतासे छूटकर स्वाधीन होना चाहता है। कर्मके जालको व शरीरको कारावास समझता है। उसकी रंजकता स्वात्मानंदमें है। वह इन्द्रिय सुखोंके असारपनेमें विश्वास कर चुका है। वह चतुर वैद्यके समान विषको विष जानता है। तथापि जहांतक पूर्ण त्याग योग्य वीतरागभाव न हो वहांतक विषयोंको भोगता है परन्तु उनसे अंतरंग आसक्त भाव नहीं है इसीसे वह भोगता हुआ भी अभोक्ताके समान है। यह उसके ज्ञान व वैराग्यका माहात्म्य है। छः खंड पृथ्वीका राज्य करता हुआ भरत चक्रवर्तीके समान सम्यग्दृष्टि जब नहीं बंधता है तब मिथ्या दृष्टि संसारमें रुचि व रागांधताके कारण भोग सामग्री न होते हुए भी संसारके कारणीभूत कर्मोंसे बंधता है क्योंकि उसके किंचित् भी अरुचिभाव नहीं है। रातदिन यह भावना है कि भोग सामग्री मिले, जबकि सम्यग्दृष्टीकी यह भावना है कि कब स्वाधीन होकर अनंत कालतक निजानन्दका ही विलास करूं। तत्व०में कहा है:—

स्मरन् स्वशुद्धचिद्रूपं कुर्यात् कार्यशतान्यपि, तथापि न हि बध्येत धीमानशुभकर्मणा ॥१३।१४॥

भावार्थ—अपने शुद्ध चैतन्य स्वभावको स्मरण करते हुए सैकड़ो भी कार्योंको करें तो भी ज्ञाता पाप कर्मसे नहीं बंधता है।

दोहा—महिमा सम्यक्ज्ञानकी, अरु विराग बल जोय। क्रिया करत फल भुंजते कर्मबंध नहि होय ॥३॥

सवैया ३१ सा—जैसे भूप कौतुक स्वरूप करे नीच कर्म, कौतुकि कहावे तासो कौन कहै रंक है ॥ जैसे व्यभिचारिणी विचारे व्यभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित्त वंक है ॥ जैसे धाई बालक चुंघाई करे लालपाल जाने ताहि औरको जदपि वाके अंक है ॥ तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठेने, किरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥ ४ ॥

रथोद्धता छंद—नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत् स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञानवैभवविरागताबलात्सेवकोऽपि तदसावसेवकः ॥ ३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत् असौ सेवकः अपि असेवकः स्यात्—तत कहता तिहि कारण तहि, असौ कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, सेवकः अपि कर्मके उदयकरि हुवा छे जे शरीर पंचेन्द्रिय विषय सामग्री तिहिको भोगवे छे। तथापि असेवक कहतां नहीं भोगवे छे

किया थे-यत् ना विषयमेवनस्य स्व फल न अश्नुते-यत् कहता जिहि कारण तहिं, ना कहता सम्यग्दृष्टी जीव, विषयसे नेवि कहता पचेन्द्री सम्बंधी विषय सेवै छे तथापि, विषय सेवनस्य स्व फल कहता पचेंद्रिय भोगको फल छे नानावरणादि कर्मको बंध तिहिको, न अस्नुते कहता नहीं पावै छे । इसो कुनि किसा थे । ज्ञानवैभवविरागताबलात्-ज्ञान वैभव कहता शुद्ध स्वरूपको अनुभव तिहिकी महिमा तिहि थकी, अथवा विरागताबलात् कहता कर्मके उदय थकी छे विषयका सुख जीवको स्वरूप नहीं छे तिहितै विषय सुख विषै रति नहीं उपजे छे उदास भाव छे । तिहि तह कर्मबंध नहीं होइ छ । भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टी जो भोग भोगवै छे सो निजराके निमित्त छ।

भावार्थ-यहां भी यही भाव है कि ज्ञानी सम्यग्दृष्टीमें तत्वज्ञान व वैराग्य एक अपूर्व प्रकारका है जिससे उसके भोग भी निर्जराहीके कारण कहे गए हैं। वास्तवमें जैसे कोई मानव राजमहलमें जाना हो बीचमें कुछ काय करता भी है तो उसपर भावको जमाता नहीं है। उसका यह है कि शीघ्र राजमहलमें पहुंचूं वही दशा तत्वज्ञान की है। वह निरंतर निज पदकी ही तरफ बढ़ता चल रहा है। दृष्टि निज शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिकी है। जबतक मोक्ष न हो वहांतक मार्गमें चलते हुए जो कुछ मन वचन कायकी क्रियाएं करनी पड़ती हैं व उसको मोक्षमार्गमें गमन करनेसे पीछे नहीं डलती हैं। वह तो सीधा चला ही जारहा है। इसलिये ज्ञानीकी क्रियाएं व भोगादि मोक्षमार्गमें बाधक नहीं हैं। तत्व० में कहा है—

न हर्षति प्रमोदे स्यान् शोके नार्ता भीमता। अहोस्वित् मन रमी गुद्धचिद्रूपचेतसा ॥१८१॥

भावार्थ-जो सदा निज शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें प्रेमालु है उन बुद्धिमानोंको सम्पत्ति पड़नेपर हर्ष नहीं होता है व विपत्ति आनेपर शोक नहीं होता है। यह उनके ज्ञान वैराग्यकी महिमा है।

सोरठा—पूर्व उदय सम्बन्ध विषय भोगवे समकिती। करे न नूतन बन्ध महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ॥

मदाक्रांता छंद-सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः

स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या।

यस्मात् ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च

स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतो रागयोगात् ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-सम्यग्दृष्टेः नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः भवति-सम्यग्दृष्टे कहता द्रव्यरूप मिथ्यात्व कर्म उपशम्यो छे, भावरूप शुद्ध सम्यक्त भावरूप परिणवो छ, सो जीव तिहिको, ज्ञान कहता शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप जानपनो, वैराग्य कहता जावत परद्रव्य-द्रव्यकर्मरूप भावकर्मरूप नोकर्मरूप नयरूप तिहि समस्त परद्रव्यको सर्व

प्रकार त्याग इसी दोइ शक्ति। नियतं भवति कहता अवश्य होहि सर्वथा होहि, दुवे शक्ति ज्यों होहि छे त्यों कहिजै छे। **यस्मात् अयं स्वस्मिन् आस्ते परात् सर्वतः रागयोगात् विरमति**–यस्मात् कहतां जिहि कारण तहि अय कहता सम्यग्दृष्टी, स्वस्मिन् आस्ते कहतां सहज ही शुद्ध स्वरूप विषे अनुभवरूप होहि तथा परात् सर्वतः रागयोगात् कहतां पुद्गल द्रव्यकी उपाधि तहि छे यावत रागादि अशुद्ध परिणति तिहितहि, सर्वतः विरमति कहतां सर्व प्रकार रहित होई। भावार्थ इसो जो–इसो लक्षण सम्यग्दृष्टि जीवके अवश्य होइ। इसो लक्षण होता अवश्य वैराग्य गुण छे। कायो करतां इसो होइ छे। **स्वं परं च इमं व्यतिकरं तत्वतः ज्ञात्वा**–स्व कहतां शुद्ध चैतन्यमात्र म्हारो स्वरूप छे, परं कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मको विस्तार परायो पुद्गल द्रव्यको छे, इम व्यतिकर कहतां इसो ब्यौरो तिहिको, तत्वतः ज्ञात्वा कहता कहिवाको न छे, वस्तुस्वरूप योंही छे इसो अनुभव स्वरूप जानै छे। सम्यग्दृष्टि जीव तिहिं ज्ञानशक्ति छे। आगे इतनो करै छे सम्यग्दृष्टि जीव सो किसाके अर्थि, उत्तर इसो, **स्वं वस्तुत्वं कलयितुं** स्व वस्तुत्वं कहता आपणी शुद्धपनौ तिहिको कलयितु कहतां निरंतरपनै अभ्यास करता वस्तुकी प्राप्तिके निमित्त, सो वस्तुकी प्राप्ति किसे करि होइ छे। **स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या**–कहता आपणा शुद्ध स्वरूपको लाभ परद्रव्यको सर्वथा त्याग इसा कारण करि।

भावार्थ–सम्यग्दृष्टि जीवके अनंतानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व कर्मका उदय बन्द हो जानेसे संसाराशक्तपना सर्व निकल जाता है। उसके भीतर सम्यग्ज्ञान ऐसा झलक उठता है कि परमाणुमात्र भी परद्रव्य मेरा नहीं है। मेरा वही है जो सदासे ही मेरे साथ है व सदा ही रहेगा। वह मेरा निजी ज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य, चरित्रादि गुण है। राग द्वेषादि सर्व औपाधिक व मोहजनित भाव मेरा स्वभाव नहीं। द्रव्यकर्म व नोकर्म तो प्रगट ही भिन्न है। वैराग्य ऐसा प्रकाशित होता है कि यह सर्व संसार त्यागने योग्य है। निज स्वभावरूप मुक्तदशा ही ग्रहण करनेयोग्य छै। इस सहज ज्ञान वैराग्यके कारण वह सदा ही अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवकी रुचिमें तन्मय रहता है। यही दशा पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा करती है व आगामीके बंधको रोकती है। योगसारमें कहा है कि सम्यग्दृष्टी ऐसा मानता है–

रयणत्तयसंजुत्त जिउ उत्तम तित्थ पवित्तु, मोक्खहकारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥८३॥

भावार्थ–ये योगी, मोक्षका उपाय रत्नत्रय सहित आत्माका अनुभव है यही उत्तम पवित्र तीर्थ है और कोई तंत्र मत्र नहीं है।

सवैया २३ सा—सम्यक्वन्त सदा उर अन्तर, ज्ञान विराग उभै गुण धारै। जासु प्रभाव लखै निज लक्षण, जीव अजीव दशा निरवारै ॥ आतमको अनुभौ करि स्थिर, आप तरै अर औरनि तारै। साधि स्वद्रव्य लहै शिव मर्मसो, कर्म उपाधि व्यथा वमि टारै ॥ ६ ॥

प्रकार एनेरूप प्रकृतिको स्वभाव छै ज्याहको इसा छे। तथापि रागी होतां मिथ्यादृष्टी छे। कर्मबंधको करै छे। भावार्थ-इसो जोजे जेई जीव पर्याय मात्र रत होतां मिथ्या दृष्टि छता छे त्याहकी प्रकृतिको स्वभाव छै जो हम सम्यग्दृष्टि, हमको कर्मबंध नहीं इसो मुहडे कहि करिके गरजहि छै, केई प्रकृतिका स्वभाव थकी मौनसो रहै छे। केई थोर वोलहि छे सो इसो रहै छे। सो इसो समस्त प्रकृतिको स्वभाव छे। इहमाहइ परमार्थ तै कांई नहीं जावंतकाल जीव पर्याय विषै आपो अनुभवै छे तावंतकाल मिथ्यादृष्टी छे, रागी छे, कर्मबंधको करै छे।

भावार्थ-यहा यह बात झलकाई है कि कोई सम्यग्दृष्टी तो न होय परन्तु ऐसा मान ले कि शास्त्रमें सम्यग्दृष्टिको विषय भोग करते हुए कर्मका बंध नहीं होता है ऐसा कहा है। मैं भी सम्यग्दृष्टि हूं मैंने अनात्माको आत्मासे भिन्न जान लिया है अब मैं चाहे जितना विषय भोग करूं मुझे तो कर्मका बंध न होगा। उसको आचार्य कहते हैं कि धोखा होगया है। जिसके अंतरंगमें विषय सुखोंकी आस्था है, कांक्षा है, मगनता है, लवलीनता है वह सम्यग्दृष्टी कैसे होसक्ता है। जिसके अंतरंगमें विषय सुख विषके समान आत्माके अनुभवमें बाधक प्रतीतमें होरहा है व जो शुद्धात्मानुभवके लिये अत्यन्त रुचिवान है वही सम्यग्दृष्टी जीव है। ऐसा जीव यदि पूर्वबद्ध कषायके उदयसे विषयभोग करता है और उनको छोडने योग्य जानता है व उनमें भीतरसे रुचिवान नहीं है, रोगके इलाजके समान कड़वी दवाको पीता है, उस जीवके कर्मका बंध वह नहीं है जो अनंत संसारका कारण हो। जिसके भीतरमें आसक्तभाव-अतिशय राग भाव होता है उसके ही संसारका कारणीभूत कर्मका बंध होता है। सम्यग्दृष्टी जीवकी भूमिका वैराग्यमय होगई है। उसका प्रेम जितना आत्मानुभवमें है उसका सहस्रांश भी विषय भोगमें नहीं है। इसी लिये वह ऐसा अल्प कर्मबंध करता है जो कहनेमें नहीं आता है अथवा उसका बंध बंध ही नहीं है, क्योंकि वह सा शीघ्र झड़नेवाला है। यह महिमा उसके अंतरंग गाढ रुचि, गाढ ज्ञान, व गाढ वैराग्यकी है। जिसके मनमें विषयभोगोंसे गाढ रुचि है वह मात्र कहनेको मान ले कि मैंने आत्माको अनात्मासे भिन्न जान लिया मुझे तो बंध न होगा और खूब विषय भोगों लम्पटी रहे, उसको यहां आचार्यने कह दिया है कि वह तो महा पापी व वज्र मिथ्यादृष्टी है। उसको सच्चा आत्मा व अनात्माका-इंद्रिय सुख व अतीन्द्रिय सुखका भेदज्ञान नहीं हुआ है। सम्यग्दृष्टीका तो स्वभाव ही वैराग्यमय बन जाता है। वह ऐसा कभी नहीं मानता है। वह गृहस्थ कार्योंको करता हुआ यह भी जानता है कि जितना अंश चारित्र मोहका उदय है इतना अंश वह कर्मबंधका कारक है। सर्वथा अबंधक तो मैं तब ही हूंगा

सब चारित्रमोहका क्षय करके सर्व कषाय रहित वीतरागी क्षीण मोही गुणस्थानी होउगा। जो वस्तुको मोक्ष आना ठीक मानता है वही सम्यग्दृष्टी है। औरका और समझनेसे व अन्यकार करनेसे कभी कोई सम्यग्दृष्टी नहीं होसक्ता है। तत्व०में कहा है कि सम्यग्दृष्टीका मात्र किस तरह स्वरूपमें रत होता है—

चित्तं निपायं चिद्रूपं कुर्यात् वागवर्जितं। सुधी निरन्तरं कुंभं यथा पानीयहारिणी॥ ३१४॥

भावार्थ—जिस तरह पानी भरनेवाली पनिहारी मस्तकपर पानीका भरा घड़ा रक्खे हुए चलती है, परन्तु उसका मन पानीकी तरफ रहता है कि कहीं पानीका घड़ा गिर न जावे। उसी तरह ज्ञानी सम्यग्दृष्टी जीव अपना मन शुद्ध चैतन्यके स्वरूपमें रुचिवान् रखते हुए वचन व कायसे जो करने योग्य क्रिया है उनको करते हैं—

सवैया २३ सा—जो नर सम्यकवंत कहावत सम्यकज्ञान कला नहीं जागी। आतम अंग अबंध विचारत धारत संग कहै हम त्यागी॥ भेष धरै मुनिराज पटंतर अंतर मोह महा नल दागी। सुन्य हिये करतूति करै पर सो सठ जीव न होय विरागी॥ ७॥

सवैया २३ सा—ध्याय धरे व्रत आचरे शुभ पथ, लख जगमें विवहार सुपन्था। साधि समाधि निरंजन हूं सुधी न ष्ट बसन्ता॥ सम धरम फिर तजि सग छके सरवग सुधा रस मत्ता। ए करतूति कर सठ पै समुझ न अनातम आतम सत्ता॥ ८॥

सवैया २३ सा—ध्यान धरे करि इन्द्रिय निग्रह विग्रहसौं न गिनै निज नत्ता। त्यागि विभूत विभूति मढे तन जोग गहे भवभोग विरत्ता॥ मौन रहे लहि मंद कषाय सहे वध बंधन होइ न तत्ता। ए करतूति करै सठ पै समुझै न अनातम आतम सत्ता॥ ९॥

चौपाई—जो बिन ज्ञान क्रिया अवगाहै। जो बिन क्रिया मोक्षपद चाहै॥
जो बिन मोक्ष कहै मैं सुखिया। सो अजान मूढनिमैं मुखिया॥ १०॥

मंदाक्रांता छंद—आससारात्प्रतिपदममी रागिणो नित्यमत्ता
सुप्ता यस्मिन्नपदमपदं तद्विबुध्यध्वमन्धाः।
एतैतेतः पदमिदमिदं यत्र चैतन्यधातु
शुद्धः शुद्धः स्वरसभरतः स्थायिभावत्वमेति॥ ६॥

खंडान्वय सहित अर्थ—भो अन्धा—भो कहता सबोधवचन, अन्धा कहता शुद्धस्वरूप अनुभव तहि शून्य छे जेता जीव राशि। तत् अपदं अपदं विबुध्यध्वं—तत् कहता कर्मके उदय तहि छे जे चार गतिरूप पर्याय तथा रागादि अशुद्ध परिणाम तथा इन्द्रिय विषय जनित सुख दुख इत्यादि अनेक छे रचाइको, अपदं अपदं दोइ बार कहतां सर्वथा जीवको स्वरूप नहीं छे जेती केती कर्म संयोगकी उपाधि छे, विबुध्यध्वं कहतां अवश्य करि इसो मानहु, किसी छे सर्व पाखण्ड, यस्मिन् अमी रागिण आससारात् सुप्ता—यस्मिन् कहतां जिहि विषै कर्मके उदय जनित अशुद्ध पर्याय विषै, अमी रागिणः प्रत्यक्षपने छता छै जे पर्याय मात्र

रंजक जीव, आसंसारात् सुप्ताः कहता अनादिकाल तहि लेइ करि तिहि रूप अपनपो अनुभवै छे। भावार्थ इसो जो-अनादिकालते लेइ करि इसो स्वाद सर्वथा मिथ्यादृष्टी आस्वादै छे जो हौं देव हौं, मनुष्य हौं, सुखी हौं, दुःखी हौं इसो पर्याय मात्रको आपो अनुभवै छे, तिहितै सर्व जीवराशि जिसो अनुभवै छे सो सर्व झूठो छे, जीवको तो स्वरूप न छे। किसो छे सर्व जीवराशि, प्रतिपदं नित्यमत्ताः-प्रतिपद् कहता जिसो ही पर्याय लीयो तिसे ही रूप, नित्यमत्ताः कहतां इसा मतवाला हुवा जो कोई काल कोई उपाय करता मतवालापनो उतरै नहीं। शुद्ध चैतन्य स्वरूप ज्यों छे त्यो दिखाइजै छे। इतः एत एत-कहतां पर्याय मात्र अवधारयौ छे आपो इसै मार्ग मति जाहि जिहितै थारो मार्ग न होय न होय, इतकै मार्ग आओ, हो आओ जिहितै, इदं पदं इदं पदं कहता थारो मार्ग इहां छे इहां छे। यत्र चैतन्यधातुः यत्र कहतां जिहि विषै चैतन्यधातुः कहतां चेतना मात्र वस्तुको स्वरूप छे। किसो छे, शुद्धः शुद्धः दोइवार कहता अत्यत गाढ कीजै छे, सर्वथा प्रकार सर्व उपाधि तै रहित छे। और किसो छे, स्थायिभावत्वं एति-कहतां अविनश्वर भावको पावै छे, किसा थकी। स्वरसभरतः स्वरस कहतां चेतना स्वरूप तिहिको भरतः कहता कहनाई मात्र न छे सत्य स्वरूप वस्तु छे। तिहितै नित्य शाश्वतो छे। भावार्थ इसो जो-ज्याहको पर्याय मिथ्यादृष्टी जीव आपो करि जानै छे तेतो सर्व विनाशीक छे, तिहितै जीवको स्वरूप न छे, चेतना मात्र अविनाशी छे। तिहितै जीवको स्वरूप छै।

भावार्थ-यहां यह शिक्षा दी है कि-हे भव्य जीवो! तुम कर्मजनित अनेक अंतरङ्ग व बहिरंग अवस्थाओंको अपनी मत जानो। इनमें आशक्तपना छोडो, इनके मोहमें पड़ अनादिकालसे इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग आदि घोर कष्ट पाए हैं। तथा इनका भला बुरा स्वाद लेते लेते कभी भी तृप्ति न हुई, पार नहीं मिला। भवभवमें जन्म मरणादि कष्ट ही पाए। उन्मत्तकी तरह चेष्टा करता रहा, अपना स्वरूप परमात्मरूप परम वीतराग निरंजन निर्विकार ज्ञाता दृष्टा अविनाशी उसको नहीं पहचाना। अब तो उसे पहचानो। उस ही तरफ उपयोगको साधो, थिरता भजो और अतींद्रिय आनन्दका परम अमृतमई स्वाद भोगो।

परद्रव्यसे विमुख होना ही मोक्षका साधक है। तत्व०में कहा है—

रागि कर्मजन्यस्य परद्रव्यस्य चिंतन, स्वद्रव्यस्य विशुद्धस्य तन्मोक्षस्यैव केवल ॥ १६।१५ ॥

भावार्थ-आत्माके सिवाय परद्रव्यकी चिंता कर्मबंधकीही कारक है तथा अपने ही शुद्ध आत्मद्रव्यकी चिंता मात्र मोक्षका ही साधक है।

सवैया ३१ सा—जगवासी जीवनसों गुरु उपदेश करै, तुम्हें यहां सोवत अनन्त काल बीते हैं॥ जागो ह्वै सचेत चित समता समेत सुनो, केवल वचन यामें अक्ष रस जीते हैं॥ आओ

मेरे निकट बताई मैं तिहारे गुण परम सुरस भरे करमसों रीते हैं ॥ ऐसे बैन कहे गुरु तोउ ते न धरे उर मित्र कैसे पुत्र किधौं चित्र कैसे चीत हैं ॥ ११ ॥

दोहा—एतेपर पुन सद्गुरु, बोले वचन रसाल। शान दशा जपर दशा कहे दुहूकी चाल ॥१२

सवैया ३१ सा—काया चित्रशालामें करम परजंक भारि मायाकी सवारी सेज चादर कलपना ॥ शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥ उदै बल जोर यहै श्वासको सबद घोर विषै सुख कारीजाकि दौर यहै सपना ॥ ऐसी मूढ़ दशामें मगन रहे तिहुं काल धावे भ्रम जालमें न पावे रूप अपना ॥ १३ ॥

सवैया ३१ सा—चित्रशाला न्यारी परजंक न्यारी सेज न्यारी, चादर भी न्यारी यहां झूठी मेरी थपना ॥ अतीत अवस्था सैन निद्रा वाहि कोउ पै न विद्यमान पलक न यामें अब छपना ॥ श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझै सूझै सब अंग लखि आतम दरपना ॥ त्यागि भयो चेतन अचेतनता भाव छोड़ि, भाले दृष्टि खोलिके सभाले रूप अपना ॥ १४ ॥

दोहा—इह विधि जे जागे पुरुष ते शिवरूप सदीव। जे सोवहि संसारमें ते जगवासी जीव ॥१५॥

श्लोक—एकमेव हि तत्स्वाद्यं विपदामपदं पदम्।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत्पद स्वाद्य—उन शुद्ध चैतन्य मात्र वस्तु इसो, पद कहता मोक्षका कारण, स्वाद कहता निरंतरपनें अनुभव करणो, किसो छे, हि एक एव—हि कहतां निश्चासों, एक एव कहतां समस्त भेद विकल्प नहि रहित निर्विकल्प वस्तु मात्र छे, और किसो छे, विपदां अपद—विपदा कहता चतुर्गति संबंधी नानाप्रकार दुःखको, अपद कहतां अभाव लक्षण छे। भावार्थ इसो—जो आत्मा सुख स्वरूप छे, साता असाता कर्मके उदयके संयोग होय छे जो सुख दुःख सो जीवको स्वरूप नहीं छे कर्मकी उपाधि छे। और किसो छे—यत्पुरः अन्यानि पदानि अपदानि एव भासन्ते—यत्पुरः कहता जिहि शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप आस्वाद आये संते, अन्यानि पदानि कहता चार गतिके पर्याय, राग द्वेष मोह सुख दुःख रूप इत्यादि नाना अवस्था भेद अपदानि एव भासन्ते कहतां जीवको स्वरूप न छे उपाधि रूप छे, विनाशीक छे दुःखरूप छे। इसो स्वाद स्वानुभव प्रत्यक्षपनें आवे छे। भावार्थ इसो—शुद्ध चिद्रूप उपादेय, अन्य समस्त हेय।

भावार्थ—यहांपर भी यही शिक्षा दी है कि अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप मात्रका अनुभव करो जहां कोई प्रकारकी आपत्ति संकट, आकुलता व बंध नहीं है। इस अपने सर्वोत्कृष्ट परमानंदमई पदके सामने सब अन्य तीन लोकके भेष हैं व परिणमन हैं व सर्व क्षणभंगुर, आकुलताजनक, रागद्वेष मई व बंधके कारक हैं। सच्चा सुख भी आत्माहीमें है—

सारसमुच्चयमें श्री कुलभद्र आचार्य कहते हैं—

आत्माधीनं तु यत्सौख्यं तत्सौख्यं वर्णितं बुधैः। पराधीनं तु यत्सौख्यं दुःखमेव न तत्सुखम् ॥१०१॥

भावार्थ-जो सुख अपने आधीन है अपनेहीसे अपनेको अपनेमें मिलता है वही सुख है ऐसा ज्ञानियोंने कहा है। जो दूसरे द्रव्योंके संयोगके आधीन सुख है वह सुख नहीं है वह तो दुःख ही है, आकुलतारूप है।

दोहा—जो पद भौपद भय हरे सो पद सेउ अनूप। जिहि पद परसत और पद, लगे आपदा रूप॥१॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द- एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्
स्वादन्द्वन्द्वमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्।
आत्मात्मानुभवानुभावविवशो भ्रस्यद्विशेषोदयं
सामान्यं कलयत्किलैष सकलं ज्ञानं नयत्येकतां॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एष आत्मा सकलं ज्ञानं एकतां नयति-एष आत्मा कहता वस्तुरूप छतो छे चेतन द्रव्य, सकलं ज्ञानं कहता जावंत पर्याय रूप परिणवो छे ज्ञान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इत्यादि। अनेक विकल्परूप परिणवो छे ज्ञान तिहिको, एकता कहता निर्विकल्प रूप, नयति कहतां अनुभवे छे। भावार्थ इसो-जो यथा उष्णता मात्र अग्नि छे तिहितै दाह्य वस्तुको जारतै संतै दाह्यके आकार परिणवे छे, तिहितै लोगहको इसी बुद्धि उपजे छे जो काष्टकी आग, छानाकी आग, तृणकी आग, ए ता समस्त विकल्प झूठा छे, आगको स्वरूप विचारतां उष्ण मात्र आग छे, एकरूप छे तसे ज्ञानचेतना प्रकाश मात्र छे, समस्त ज्ञेयवस्तुको जानिवाको स्वभाव छे, तिहितै समस्त ज्ञेय वस्तुको जाने छे, जानतो होतो ज्ञेयाकार परिणवे छे। तिहितै ज्ञानी जीवहंको इसी बुद्धि उपजे छे जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान इसा भेद विकल्प सब झूठा छे. ज्ञेयकी उपाधि करि मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय, केवल इसा विकल्प उपज्या छे तिहितै ज्ञेय वस्तु नानाप्रकार छे। जिसा ही ज्ञेयको ज्ञापक होइ तिसो ही नाम पावे वस्तु स्वरूपको विचारता ज्ञान मात्र छे। नाम धरिवो सब झूठो छे इसो अनुभव शुद्ध स्वरूप अनुभव छे। किसो छे अनुभवशीली आत्मा। एकज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्-एक कहता निर्विकल्प इसो जो, ज्ञायकभाव कहता चेतनद्रव्य तिहि विषै, निर्भर कहतां अत्यन्त मग्नपनो तिहितै हुओ छे, महास्वाद कहता अनाकुल लक्षण सौख्य तिहिको समासादयन् कहता आस्वादतो होतो, और किसो छे। द्वन्द्वमयं स्वादं विधातुं असहः द्वन्द्वमय कहतां कर्मका सयोगथकी हुओ छे विकल्परूप आकुलतारूप स्वादं कहतां अज्ञान सुखकरि मानहि छे परन्तु दुःखरूप छे इसो इंद्रिय विषय जनित सुख तिहिको विधातुं कहता अंगीकार करिवाको, असहः कहता असमर्थ छे। भावार्थ इसो-जो विषय कषायको दुःखकरि मानहि छे। स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्-स्वां कहता आपणा द्रव्य सम्बन्धी

वस्तुवृत्ति, कहतां आत्माको शुद्ध स्वरूप तिहिको, विन्दन् कहतां तद्रूप परिणवतो सतो। और किसो छे। आत्मानुभवानुभावविवश आत्मा कहतां चेतन द्रव्य तिहिको, अनुभव कहतां आस्वाद तिहिको, अनुभाव कहतां महिमा तिहिकरि, विवश कहतां गोचर छे, और किसो छे। विशेषोदयं भ्रश्यन्–विशेष कहतां ज्ञान पर्याय तिहिकरि, उदय कहतां नानाप्रकार तिहिको भ्रश्यन् कहतां मेटतो होतो। और किसो छे, सामान्यं कलयन्–सामान्य कहतां निर्भेद सत्तामात्र वस्तु, कलयन् कहतां अनुभव करतो होतो।

भावार्थ–यहां यह झलकाया है कि तत्वज्ञानी जीव अपने आत्माका जब स्वाद लेता है तब उसको वह शुद्ध ज्ञानाकार एक सामान्यस्वरूप अनुभवमें आता है। ज्ञेयके व ज्ञानावरणके क्षयोपशमके निमित्तसे जो ज्ञानमें भेद थे जो बिलकुल लुप्त होजाते हैं। उसको अतींद्रिय आनन्दका भी लाभ उस समय होता है। तब इन्द्रियजनित अशुद्ध स्वादरूप सुखका पता भी नहीं चलता है। ज्ञानीका जिस सुखमें अनास्था है उसमें वह मग्न कैसे होसक्ता है। वह तो निजानन्दका रसिया उसी तरह होजाता है जिस तरह भ्रमर कमलकी वासका रसिया होता है। वह ज्ञानी भ्रमरवत् अपने परमानन्दमय स्वभावमें लय होजाता है, यही स्वानुभव अवस्था व आत्मध्यानमय परिणति कर्मकी निर्जराका हेतु है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिःस्थितेः। जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः ॥ ४७ ॥
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतं। न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः ॥ ४८ ॥

भावार्थ–जो योगी योगबलसे सर्व व्यवहार व भेदोंसे बाहर होकर आत्माके स्वभावमें तन्मय होजाता है उसको कोई अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है वही आनन्द निरंतर कर्मके ईंधनको जलाता रहता है। उस समय यदि शरीरपर दुःख भी पड़े तो योगी उनकी ओरसे आकुलित नहीं होता है। क्योंकि उसकी मग्नता निज स्वरूपमें भ्रमरवत् होरही है।

सवैया ३१ सा—जब जीव सोवै तब समुझै सुपन सत्य वहि झूठ लागै जब जागै मोह खोयकै ॥ जागै कहै यह मेरो तन यह मेरी साज, ताहू भूल मानत मरन थिति जोयकै ॥ जानै निज मरम मरन तब सूझै झूठ बूझै जब और अवतार रूप होयकै ॥ वाही अवतारकी दशामें फिर यह पेच याही भांति झूठो जग देखै हम टोयकै ॥ १७ ॥

सवैया ३१ सा—पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि दुंदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है ॥ मति श्रुति अवधि इत्यादि विकलप मेटै, निरविकलप ग्यान मनमें धरतु है ॥ इंद्रिय जनित सुख दुखसौं विमुख ह्वैकै परमके रूप ह्वै करम निर्जरतु है ॥ सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि आतम आराधि परमातम करतु है ॥ १८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–अच्छाच्छाः स्वयमुच्छलन्ति यदिमाः संवेदनव्यक्तयो
निष्पीताखिलभावमण्डलरसप्राग्भारमत्ता इव।

शार्दूलविक्रीडित छन्द–क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्म्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥ १० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–परे इदं ज्ञानं ज्ञानगुणं विना प्राप्तुं कथ अपि न हि क्षमन्ते–परे कहता शुद्ध स्वरूप अनुभव तइ भृष्ट छे जे जीव, इदं ज्ञानं कहतां पूर्वे ही कह्यो छे समस्त भेद विकल्प तहि रहित ज्ञान मात्र वस्तु तिहिको, ज्ञानगुणं विना कहता शुद्ध स्वरूप अनुभव शक्ति पाषै (विना), प्राप्तु कहता पाइवाको, कथं अपि कहता उपाय सहस्र कीजे तौ फुनि, न हि क्षमन्ते कहतां निइचासों नही समर्थ होहि छै, किसो छै, ज्ञानपद, साक्षात् मोक्षः–कहता प्रत्यक्षपनै सर्वथा प्रकार मोक्षको स्वरूप छे। और किसो छे, निरामयपदं-कहता जावत उपद्रव क्लेश सर्व तहि रहित छै, और किसो छे, स्वयं संवेद्यमानं–स्वय कहतां आप करि, संवेद्यमान कहतां आस्वाद करिवा योग्य छै। भावार्थ इसो–जो ज्ञान गुण, ज्ञान गुण करि अनुभव योग्य छे। कारणातर करि ज्ञान गुण ग्राह्य नाहीं। किसा छे मिथ्यादृष्टी जीव राशि। कर्म्मभिः क्लिश्यन्तां कहता विशुद्ध शुभोपयोग रूप परिणाम, जैनोक्त सूत्रको अध्ययन, जीवादि द्रव्यको स्वरूपको बार-बार स्मरण, पंचपरमेष्टिकी भक्ति इत्यादि छे। अनेक क्रिया भेद त्याइ करि, क्लिश्यंता कहतां वहु आक्षेप करहि छे तौ करहु तथापि शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होइ सै सो तो शुद्ध ज्ञानकरि होइ सै। किसा छे करतूति–स्वयं एव दुःकरतरैः–स्वय एव कहता सहजपनै, दुःकरतरैः कहता कष्ट साध्य छे। भावार्थ इसो–जो जावत क्रिया तावंत दुःखात्मक छै, शुद्ध स्वरूप अनुभवकी नाईं सुख स्वरूप न छे। और किसो छे, मोक्षोन्मुखैः-कहता सकल कर्म क्षय तिहिको उन्मुखैः कहतां परपरा आगे मोक्षको कारण होइ सै इसो भ्रम उपजे छे सो झूठो छे। च कहतां और किसो छे मिथ्यादृष्टि जीव महाव्रततपोभारेण चिरं भग्नाः क्लिश्यंतां–महाव्रत कहतां हिंसा, अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रह तहि रहितपनो, तपः कहता महा परीसह सहिवारूप तिहिको भार कहता बहुत बोझ तिहिकरि, चिरं कहतां बहुत काल पर्यंत, भग्नाः कहता मरि चूनो हुवा छे, क्लिश्यंतां कहता बहुत कष्ट करहि छै तौ करहु तथापि इसो करतां कर्मक्षय तो न छे।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि मोक्ष आत्माका ही निज स्वरूप शुद्ध ज्ञानचेतना रूप व स्वानुभवगम्य, परम निराकुल आनन्दमय एक अवस्था विशेष है। इसका उपाय भी इसी ही प्रकारका है अर्थात सर्व क्रियाकांड व सकल्प विकल्पसे रहित मात्र अपने ही

जीव राशि इदं पदं कहतां निर्विकल्प शुद्ध ज्ञान मात्र वस्तु तिहिको, कलयितुं कहतां निरंतरपनैं अभ्यास करिवाकैं निमित्त, सततं कहतां अखण्ड धाराप्रवाह रूप, यततां कहतां जतन करणो, किसे कारण करि, निजबोधकलाबलात्-निज बोध कहतां शुद्ध ज्ञान तिहिकी, कला कहतां प्रत्यक्ष अनुभव तिहिको, बल कहतां समर्थपनो तिहि थकी, जिहि कारण तहि, किल कहतां निहचासों, किसो छे ज्ञानपद, कर्मदुरासदं-कर्म कहतां जावंत क्रिया तिहि करि, दुरासदं कहता अप्राप्य छै। किसो छे-सहजबोधकलासुलभं-सहज बोध कहतां शुद्ध ज्ञान तिहिकी, कला कहता निरंतरपनै अनुभव तिह करि सुलभं कहतां सहज ही पाईजे छे। भावार्थ इसो-जो शुभ अशुभ रूप छै जावंत क्रिया त्यांहको ममत्त्व छोड़ करि एक शुद्ध स्वरूप अनुभव कारण छै।

भावार्थ-यहां भी यही दिखलाया है कि जो अपने निज स्वभावको झलकाना चाहते हैं उनको सर्व क्रियाकाडसे ही मोक्ष होगी इस मिथ्या बुद्धिको त्याग करके शुद्धात्मानुभवसे ही मुक्ति होगी। इसी श्रद्धाको धारण करके निरंतर इसीका ही यत्न करना कि हम शुद्धात्मानुभव किया करें। यही उपाय मोक्षका साक्षात् सहज उपाय है। इसीसे ही स्वभावका लाभ है-अन्य पराश्रित उपायोंसे कभी भी मुक्ति नहीं होसक्ती है। योगसारमें कहा है-

सत्थ पढनह ते वि जड़ अप्पा जेण मुणति। तिह कारण ए जीव फुडु णहु णिव्वाण लहन्ति ॥५२॥

भावार्थ-शास्त्रोंको पढ़ते हुए भी जो आत्माको अनुभव नहीं कर सक्ते हैं वे मूर्ख हैं। इसलिये विना स्वानुभवके ये जीव भी कभी निर्वाण नहीं प्राप्ति कर सक्ते हैं।

दोहा-बहुविधि क्रियाकलापसों, शिवपद लहे न कोय। ज्ञानकला परकाशते, सहज मोक्षपद होय ॥२५॥

,, -ज्ञानकला घटघट वसे, योग युक्तिके पार। निजनिज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार ॥२६॥

उपजाति छन्द-अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्रचिन्तामणिरेष यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ॥ १२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ज्ञानी (ज्ञानं) विधत्ते-ज्ञानी कहता सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञान कहतां निर्विकल्प चिद्रूप वस्तु तिहिको, विधत्ते कहता निरंतरपनै अनुभवै छे। कायो जानिकरि। सर्वार्थसिद्धात्मतया-सर्वार्थसिद्धि कहता चतुर्गति संसार सम्बन्धी दुःखको विनाश, अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति, तिहिकी आत्मतया कहतां इसो कार्य सीझइ छे। जिहितै इसो छै शुद्ध ज्ञानपद, अन्यस्य परिग्रहेण किं-अन्यस्य कहतां शुद्ध स्वरूप तहि बाहिरा छै जावंत विकल्प; क्योंगे-शुभ अशुभ क्रियारूप अथवा रागादि विकल्परूप अथवा द्रव्यांहको भेद विचाररूप इसा छे जे अनेक विकल्प तांइके, परिग्रहेण कहतां सावधानपनै प्रतिपालन अथवा आचरण अथवा स्मरण तिहिकरि, किं कहतां कौन कार्यसिद्धि, अपि तु कार्यसिद्धि नहीं। इसो किसा छे। यस्मात् एषः स्वयं चिन्मात्रं चिंतामणिः एव-यस्मात् कहता

जिहिका भाम रहिं, एव कहता शुद्ध जीव वस्तु, स्वय कहता आपुनेंपे, चिन्मात्रचिंतामणि कहतां शुद्ध ज्ञान मात्र इसो अनुभव चिंतामणि रत्न छे, यत कहता इहि बातको निहचो मानिवो, धोखो काई न छे। भावार्थ इसो जो-यथो कोई पुण्यो जीवके हाथ चिंतामणि रत्न होइ छे, तिहंतें सब मनोरथ पूरा होहि छे सो जीव लोह तांबो रूपो इसा धातुको संग्रहै नहीं, तथा सम्यग्दृष्टि जीवको शुद्ध स्वरूप अनुभव इसो चिंतामणि रत्न छे तिहिकरि सकल कर्म क्षय होहि छे, परमात्मपदकी प्राप्ति होइ छे। अतीन्द्रिय सुखकी प्राप्ति होइ छे, सो सम्यग्दृष्टि जीव शुभ अशुभ रूप अनेक क्रिया विकल्पको संग्रहै नहीं तिहिताडें एताइ करि कार्यसिद्धि न छे। और किसो छे, अचिन्त्यशक्ति -कहता वचन गोचर नहीं छे महिमा जिहिकी इसो छे, और किसो छे देव कहता परमपूज्य छे।

भावार्थ-यही है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अपने एक शुद्ध स्वरूपके अनुभवको ही निर्जराका कारण मानकर उसीको ही ग्रहण करते हैं-अन्य विकल्पोंको बंधका कारण जानते हैं। योगसारमें कहा है—

जहिं अप्पा तहिं सयलगुण केवलि एम भणंति तिहि कारण ए जीव फुड अप्पा विमल मुणन्ति ॥ ९८ ॥

भावार्थ-जहां आत्मानुभव है वहां सब गुण हैं ऐसा केवली भगवान् कहते हैं इस लिये ये ज्ञानी जीव प्रगटपने अपने शुद्ध आत्माका ही अनुभव करते हैं।

कुण्डलिया छन्द—अनुभव चिंतामणि रतन जाके हिय परकास ॥ सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुरगति वास ॥ दहै चतुरगतिवास आस धरि क्रिया न मंडै। नूतन बंध निरोधि पूर्वकृत कर्म विहंडै ॥ ताके न गिनु विकार न गिनु बहु भार न गिनु भव ॥ जाके हिरदै माहिं रतन चिंतामणि अनुभव ॥ २७ ॥

सवैया ३१ सा—जिन्हके हियमें सत्य सूरज उदोत भयो फैली मति किरन, मिथ्यात तम नष्ट है ॥ जिन्हके सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों, समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्ट है ॥ जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपंथ सधै सधन निरोध जाके तनको न कष्ट है ॥ तिन्हके करमकी किलोल यह है समाधी डोले यह जोगासन बोले यह मष्ट है ॥ २८ ॥

वसन्ततिलका छंद—इत्थं परिग्रहमपास्य समस्तमेव सामान्यतः स्वपरयोरविवेकहेतुं।
अज्ञानमुज्झितुमना अधुना विशेषाद्भूयस्तमेव परिहर्तुमयं प्रवृत्तः ॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ-अधुना अयं भूयः प्रवृत्त -अधुना कहता इहां नहि आरंभ करि, अयं कहता ग्रंथको कर्ता, भूयः प्रवृत्त कहता वस्तु विशेष कहिवाको उद्यम करै छे। किसो छे ग्रंथको कर्ता अज्ञान उज्झितुमना—अज्ञान कहता जीवको कर्मको एकत्व बुद्धि रूप मिथ्यात्वभाव तिहिको उर्धा छूटे त्यों छे अभिप्राय जिहिको इसो छे। कांयो करो चाहे छे। त एव विशेषात् परिहर्तुं-त एव कहतां सो वन पांच्यूं इन्द्रिय परिग्रह तिहिको, विशेषात् परिहर्तुं कहतां भिन्न भिन्न नामकका ल्यांग सहित छोडिवाके अथवा छुडायवा कह

अर्थ। इतना तांई कह्यो। कायो कह्यो-इत्थं समस्तं एव परिग्रहं सामान्यतः अपास्य-इत्थं कहतां इतना तांई जो कछु कह्यो, सो इसो कह्यो समस्तं एव परिग्रहं कहतां जावंत पुद्गल कर्म्मकी उपाधिरूप सामग्री तिहिको, सामान्यतः अपास्य-कहतां जो कछु परद्रव्य सामग्री छे सो त्याज्य छे इसो कहिकरि परद्रव्यको त्याग कह्यो। सांपति विशेषरूप कहिजै छे। विशेषार्थ इसो जो जावंत परद्रव्य तावंत त्याज्य छे। इसो कह्यो सांपत क्रोध परद्रव्य छै तिहितै त्याज्य छे, मान परद्रव्य छे तिहितै त्याज्य है, इत्यादि, भोजन परद्रव्य छे तिहितै त्याज्य छे। पानी पीवो परद्रव्य छै तिहितै त्याज्य छे। किसो छै परद्रव्य परिग्रह-स्वपरयोः अविवेक हेतुः-स्व कहता शुद्ध चिद्रूप वस्तु, पर कहता द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तिहिको अविवेक कहतां एकत्व रूप संस्कार तिहिको हेतु कहता कारण छै। भावार्थ इसो-जो मिथ्यादृष्टी जीवको जीव कर्म विषै एकत्व बुद्धि छे तिहितै मिथ्यादृष्टिको परद्रव्यको परिग्रह घटै। सम्यग्दृष्टि जीवके भेद बुद्धि छे तिहितै परद्रव्यका परिग्रह न घटै। इसो अर्थ इहां तहि लेइ करि कहिजेगो।

भावार्थ-ग्रन्थ कर्ता परद्रव्यके त्यागको विशेष रूपसे कहेंगे।

सवैया ३१ सा—आतम स्वभाव परभावकी न शुद्धि ताकौं, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है॥ ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहालौं समुच्चैरूप कह्यो है॥ अब निज पर भ्रम दूर करिवेको काज, बहुरी सुगुरु उपदेशको उमह्यो है॥ परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदार लहलह्यो है॥ २९॥

दोहा—त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार। विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार॥३०॥

स्वागता छन्द-पूर्वबद्धनिजकर्म्मविपाकाद् ज्ञानिनो यदि भवत्युपयोगः।
तद्भवत्वथ च रागवियोगान्नूनमेति न परिग्रहभावम्॥ १४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-यदि ज्ञानिनः उपभोगः भवति तत् भवतु-यदि कहतां जो कदाचित्, ज्ञानिनः कहता सम्यग्दृष्टि जीवको, उपभोगः कहतां शरीर आदि सपूर्ण भोग सामग्री, भवति कहतां सम्यग्दृष्टी जीव भोगवे छे, तत् कहतां तो, भवतु कहतां सामग्री होउ, सामग्रीको भोग फुनि होहु। नूनं परिग्रहभावं न एति-नूनं कहतां निहचासौं परिग्रहभावं कहतां विषय सामग्रीको स्वीकार पनो इसा अभिप्रायको, न एति कहतां नहीं पाँव छे। किसा थकी, अथ च रागवियोगात्-अथ च कहता तहां तहि लेई करी सम्यग्दृष्टि इसो, रागवियोगात् कहता तहांतहि लेइ विषय सामग्री विषै रागद्वेष मोह तहि रहित इसो निहिथकी। कोई प्रश्न करहि छे। इसा विरागी कहुं सम्यग्दृष्टी जीवको विषय सामग्री क्यों होइ छे। उत्तर इसो जो पूर्वबद्धनिजकर्म्मविपाकात्-पूर्वबद्ध कहता सम्यक्त्व उपजता पहली मिथ्यादृष्टि जीव थो, रागी थो, तिहि रागभाव करी

बान्या था जे, निजकर्म कहता आपणा प्रदेशन ज्ञानावरणादि रूप कार्मण वर्गणा तिहिकइ, विपाकात् कहता उदयथकी । भावार्थ इसो-जो राग द्वेष मोह परिणामके मिटतां द्रव्यरूप बाह्य सामग्रीको भोग बंधको कारण न छे, निर्जराको कारण छे, पूर्वका बांध्या छे जे कर्म त्यहकी निर्जरा छे।

भावार्थ-यहांपर यह दिखलाया है कि सम्यग्दृष्टि जीवके रागद्वेष मोहका त्याग नियमसे होता है। उसके यह ज्ञान है कि मैं शुद्धात्मा हूं, भिन्न हूं और समस्त रागादि भाव व कर्म आदि सब भिन्न हैं। इसलिये अंतरंग श्रद्धामें सब पदार्थोंमें समभाव है। वह ज्ञानी ऐसा ही पर पदार्थोंके भोगमें प्रवर्तन करता है जैसे कोई स्त्री पति वियोगमें चिंतित हो भोग सामग्रीमें प्रवर्तती है। इस स्त्रीका मन स्वपतिकी ओर है। भोगोंमें रंजायमान नहीं है उसी तरह सम्यग्दृष्टी जीवका उपयोग शुद्धात्माकी ओर प्रेमालु है। आत्मरसका ही वह रसिक है। पूर्वमें बांधे हुए कर्मोंके विपाकसे जो भोग सामग्रीका सम्बंध है व उसको भोगता है। तौभी उदासीन है। आत्मभोगके सामने इन भोगोंको तुच्छ जानता है। आसक्तपना तब छूटा था, इन्द्रिय सुख विषवत् त्याज्य है यह भावना जब पैदा हुई थी अतींद्रिय सुख ही सच्चा आनन्द है यह दृढ़ता जब हुई थी तबही वह सम्यग्दृष्टी हुआ था तब ऐसे ज्ञानी जीवके आशक्त बुद्धि कैसे होसक्ती है। उसकी क्रिया गृहस्थावस्थामें रागी जीवके समान दिखती है तथापि वह भीतरसे वैरागी है। इसलिये कर्म गिर जाते हैं, नवीन नहीं बंधते हैं। पहले कह ही चुके हैं कि जो कुछ अल्प बंध होता भी है वह शीघ्र ही छूटनेवाला है। गाढ़ कीचड़के समान बंध नहीं होता है। धूल लगनेके समान बंध होता है सो आत्माको मोही, व संसारासक्त नहीं बना सक्ता है। इसलिये सम्यग्दृष्टी ममता रहित है। बिना ममत्व त्यागे सम्यग्दृष्टी होही नहीं सक्ता है। तत्व० में कहा है-

ममत्वं ये प्रकुर्वन्ति परवस्तुषु मोहिनः । शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिस्तेषां स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥ ७१-० ॥

भावार्थ-जो मोही जीव परपदार्थोंमें ममता करते हैं उनको स्वप्नमें भी शुद्ध आत्म स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है।

चौपाई—पूरव करम उदै रस भुंजै । ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजै ॥
मनमें उदासीनता लहिये । यों बुध परिग्रहवंत न कहिये ॥ ३१ ॥

स्वागता छंद-प्रथवन्नवविभावचलत्वाद्वेद्यन न गतु वांछितमेव ।
तेन कांक्षति न किंचन विद्वान् सर्वतोऽप्यतिविरक्तिमुपैति ॥१४९॥

अथ-तेन विद्वान् किंचन न कांक्षति-तेन कहतां तिहि कारण तदि, विद्वान् कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, किंचन कहतां कर्मके उदय करि छे नानाप्रकार सामग्री तिहि माहे कोई सामग्री,

न कांक्षति कहतां कर्मकी सामग्री मांहे कोई सामग्री जीवको सुख कारण इसो नहीं मानै छे, सर्व सामग्री दु:खको कारण इसो मानै छे। और किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव। सर्वतः अतिविरक्ति उपैति-सर्वत: कहतां जावत कर्म जनित सामग्री तिहितहि मनोवचन काय त्रिशुद्धि करि, अतिविरक्त कहतां सर्वथा त्याग, उपैति कहता इसो रूप परिणवै छे, किसाथकी इसो छे। (यतः) खलु कांक्षितं न वेद्यते एव-यतः कहतां जिहि कारण तहि, खलु कहता निहचासो, कांक्षितं कहता जो कछु चिंतयो छे, न वेद्यते नहीं पाइजै छे, एव कहतां योंही छे, किसा थकी। वेद्यवेदकविभावचलत्वात्-वेद्य कहतां वांछिजै छे जो वस्तुकी सामग्री, वेदक कहतां वांछारूप जीवको अशुद्ध परिणाम इसा छे, विभाव कहतां द्ववे अशुद्ध विनश्वर कर्मजनित तिहितह, चलत्वात् कहता क्षण प्रतिक्षण प्रति औरसा होहि छे, कोई अन्य चिंतनै छे कांई अन्य होइ छे। भावार्थ इसो-जो अशुद्ध रागादि परिणाम तथा विषय सामग्री द्ववे समय समय प्रति विनश्वर छै तिहितै जीवको स्वरूप नहीं तिहितै सम्यग्दृष्टिको इसा भावहको सर्वथा त्याग छै। तिहितै सम्यग्दृष्टिको बंध न छे निर्जरा छै।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी जीव सिवाय शुद्ध आत्माके और किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखता है। वह जानता है कि किसी भी पर पदार्थकी इच्छा करना यह अशुद्ध भाव है। सो भी विनाशीक है, तथा अन्य समयमें कदाचित् प्राप्त हुई इच्छाके अनुकूल सामग्री वह भी विनाशीक है। इसलिये नश्वर भावोंमें व पदार्थोंमें रागभाव करना मूर्खता है। इसलिये वह इन सबसे अत्यन्त विरागी रहता है, निर्वांछक भावमें रमण करता है। यही कारण है जिससे यह ज्ञानी जीव कर्मोदयसे प्राप्त भोग सामग्रीमें रंजायमान न होता हुआ बन्धको नहीं पाता है। योगसारमें कहते है—

जे परभाव चएवि मुणि अप्पा अप्पु मुणंति, केवलणाणसरूव लियइ ते संसारु मुचंति ॥ ६२ ॥

भावार्थ-जो मुनि परभावोंको त्यागकर अपने आत्मासे अपने आत्माका ही अनुभव करते हैं वे ही केवलज्ञान स्वरूपको पाकर संसारसे पार होजाते है।

सवैया-३१-सा—जे जे मन वांछित विलास भोग जगतमें, ते ते विनासीक सब, राखे न रहत है॥ और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम, तेते विनासीक धाररूप ह्वै बहत है। एकता न दुहो मांहि ताते वांछा फुरै नाहि, ऐसे भ्रम कारिजको मूरख चहत है॥ सतत रहै सचेत परसों न करै हेत, याते ज्ञानवतको अवंछक कहत है॥ ३२॥

स्वागता छन्द—ज्ञानिनो न हि परिग्रहभावं कर्मरागरसरिक्ततयैति।
रङ्गयुक्तिरकषायितवस्त्रे स्वीकृतैव हि बहिर्लुठतीह ॥ १६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—कर्म ज्ञानिनः परिग्रहभावं न हि एति—कर्म कहता नाना विषय सामग्री भोगरूप क्रिया, ज्ञानिन कहतां सम्यग्दृष्टि जीवको, परिग्रहभावं कहतां

ममनारूप स्वीकारपनाको, नहि एति कहता निश्चा सो नहीं छे। किसायकी, रागरस रिक्तया-राग कहतां कर्मकी सामग्रीको आपो जानिकरि रंजक परिणाम इसो छे, रस कहतां वग तिहतहि, रिक्तया कहता रीतो छे इसा भावयकी दृष्टान्त कहिजे छे, हि इह अकषायितवस्त्रे रगयुक्ति बहिर्लुठति एव-हि कहता यथा, इह कहता सर्वलोक विषे प्रगट छे अकषायित कहता नहीं लागी छे फिटकरी लोद जिहिको इसो छे वस्त्र कहता कपड़ा विषै, रगयुक्ति कहता मजीठको रंगको संयोग कीजे छे। तथापि बहिर्लुठति कहता कपड़ा सो नहीं लगे छे बारह बारह फिरइ छे। भावार्थ इसो-जो तथा सम्यग्दृष्टि जीवको पंचेंद्रिय विषय सामग्री छे, भोगवे पुनि छे। परन्तु अन्तरंग रागद्वेष मोहभाव नहीं छे। तिहिते कर्मको बंध न छे निर्जरा छे। किसा छे रगयुक्ति। स्वीकृता कहता कपड़ा रंग एकट्ठा किया छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि जैसे कपड़ेको विना लोद फिटकरी लगाए यदि रंगा जाय तो वह रंग पक्का नहीं होता है कच्चा होता है, बाहर बाहर रहता है। शीघ्र ही उड़ जाता है। वह रंग कपड़ेकी असल भूमिकाको रंगीन नहीं बनाता है। इसी तरह मिथ्यात्व व अनंतानुबंधी कषायरूप लोद फिटकरीके विना मात्र भोगोंमें रंजायमानपना नहीं होता। भोगते हुए भी ज्ञानी अत्यन्त उदास है। इसीलिये उदय मात्र कर्मोंकी निर्जरा होजाती है। संसार कारणीभूत कर्मोंका बंध नहीं होता है। अप्रत्याख्यान व प्रत्याख्यान कषायजनित राग शीघ्र ही छूट जानेवाला है। वह कच्चे रंगके समान बाधक नहीं, अंतरंगको रागी बनानेवाला नहीं है। यह सम्यक्त भावकी अपूर्व महिमा है। सम्यग्दृष्टीके स्वभावका वर्णन तत्व०में कहा है—

रागद्वेषौ न जायेते परद्रव्ये गतागते। शुभाशुभेऽपि शुद्धचिद्रूपासक्तचेतसः ॥ १७।१४ ॥

भावार्थ-जिस ज्ञानीका मन शुद्ध आत्मामें स्वरूपमें आसक्त है उसके भीतर अच्छे या बुरे परद्रव्योंके मिलनेपर या चले जानेपर राग व द्वेष नहीं होता है। और भी वहीं कहा है—

हर्षो न जायते स्तुत्या विषादो न स्वनिन्दया। स्वकीये शुद्धचिद्रूपे स्मरतोऽपि ॥१६।१४॥

भावार्थ-जो भव्य जीव अपने आत्माके शुद्ध स्वरूपका निरंतर स्मरण करते रहते हैं उनकी स्तुति किये जानेपर हर्ष व उनकी निन्दा किये जानेपर विषाद उनको नहीं होता है।

सवैया ३१ सा—जैसे फिटकड़ि लोद हरडकि पुट विना, स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें॥ भीग्यो रहे चिरकाल सर्वथा न होइ लाल भेदै नहि अन्तर सुपेदी रहै चीरमें॥ तैसे समकितवंत राग द्वेष मोह विन, रहे निशि वासर परिग्रहकी भीरमें॥ पूरव करम हरे नूतन न बन्ध करे जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें॥ ११॥

स्वागता छन्द—ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यतः स्यात्सर्वरागरसवर्ज्जनशीलः।

लिप्यते सकलकर्मभिरेषः कर्म्ममध्यपतितोऽपि ततो न॥ १७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यतः ज्ञानवान् स्वरसतः अपि सर्वरागरसवर्जन शीलः स्यात्—यतः कहतां जिहि कारण तहि, ज्ञानवान् कहतां शुद्ध स्वरूप अनुभवशीली जो जीव, स्वरसत' कहतां विभाव परिणमन मिट्यो छे तिहितै शुद्धतारूप द्रव्य परिणयो छे तिहितै, सर्व राग कहता जावत रागद्वेष मोहरूप परिणाम, इसो रस कहतां अनादिको संस्कार तिहितै, वर्जनशीलः स्यात् कहता रहित छे स्वभाव जिहको इसो छे। ततः एषः कर्ममध्यपतितः अपि सकलकर्मभिः न लिप्यते—ततः कहता तिहि कारण तहि। एषः कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, कर्म कहतां कर्मके उदयजनित अनेक प्रकार भोग सामग्री तिहि विषै मध्यपतित अपि कहता पंचेन्द्रिय भोग सामग्री भोगवै छे सुख दुःखको पावै छे तथापि, सकल कर्मभि कहता आठ ही प्रकार छे जे ज्ञानावरणादि कर्म त्यांहकरि, न लिप्यते कहतां नहीं बाधिजै छे। भावार्थ इसो—जो अतरंग चिकण न छे तिहतै बंध न होई निर्जरा होइ छे।

भावार्थ—यही है कि ज्ञानी अतरग इच्छा रहित है परमाणु मात्रको भी अपना नहीं जानता है, मात्र अतींद्रिय आनन्दका रसिक है। ऐसा होते हुए भी यदि कर्मोदयसे भोग सामग्री प्राप्त हो व उनको भोगे भी तथापि रंजायमान न होनेसे वह कर्मका बंध नहीं करता है। उदय प्राप्त कर्म झड़ जाता है। कर्मका लेप जिस कषायसे होता था वह कषाय ज्ञानीके पास रही नहीं है। वह परपदार्थोंमें ममता रहित है। तत्व०में कहा है—

ममेति चिन्तनाद्बंधो मोचनं न ममेत्यतः। बध्यते द्व्यक्षराभ्यां च मोचनं त्रिभिरक्षरैः॥१३।१०६

भावार्थ—पर पदार्थ मेरे हैं इस आसक्त बुद्धिसे ही बंध है, मेरे नहीं है इस भावसे कर्मकी निर्जरा है। मम ऐसे दो अक्षरोंसे बंध है। न मम ऐसे तीन अक्षरोंसे मुक्ति है।

सवैया-३१-सा—जैसे काहू देशको बसैया बलवंत नर, जंगलमें जाई मधु छत्ताको गहत है। वाको लपटाय चहु ओर मधु मच्छिका पै, कम्बलकि ओटसों अडंकीत रहत है॥ तैसे समकिती जीव सत्ताको स्वरूप साधे, उदैके उपाधीको समाधीसि कहत है॥ पहिरे सहजको सनाह मनमें उच्छाह, ठाने सुख राह उदवेग न लहत है॥ [illegible]॥

दोहा—ज्ञानी ज्ञान मगन रहै, रागादिक मल खोय॥ चित्त उदास करणी करै, कर्मबंध नहिं होय॥

मोह महातम मल हरै, धरै सुमति परकास। मुक्ति पंथ परगट करै, दीपक ज्ञान विलास॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—यादृक् तादृगिहास्ति तस्य वशतो यस्य स्वभावो हि यः

कर्तुं नैष कथंचनापि हि परैरन्यादृशः शक्यते।

अज्ञानं न कदाचनापि हि भवेज्ज्ञानं भवत्सन्ततम्

ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बन्धस्तव॥ १८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इहां कोई प्रश्न करै छै जो सम्यग्दृष्टी जीव परिणाम करि शुद्ध छै, तथापि पचेंद्रिय विषय भोगवै छै सो विषय भोगवता कर्मको बंध छै कि नहीं छै। समाधान इसो जो कर्मको बंध न छै। ज्ञानिन् भुङ्क्ष्व—ज्ञानिन् कहता भो सम्यग्दृष्टी जीव! भुङ्क्ष्व कहतां कर्मके उदय करि हुई छै जे भोग सामग्री तिहिको भोगवहि छै तो भोगवो तथापि तव बन्ध नास्ति—तव कहतां तो कहु बंध कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको आगमन, नास्ति नहीं छै। किसो बंध नहीं छै, परापराधजनित पर कहता भोगवै जे छै तिहितै, जनित कहतां उपजै छै। भावार्थ इसो—जो सम्यग्दृष्टी जीवको विषय सामग्री भोगवतां बंध न होइ, निर्जरा छै। जिहितै सम्यग्दृष्टी जीव सर्वथा अवश्य करि परिणामह करि शुद्ध होइ। इसो ही वस्तुको स्वरूप छै। परिणामनकी शुद्धता हुतां बाह्य भोग सामग्रीके कहे बंध कीयो न जाइ। इसो वस्तुको स्वरूप छै। इहां कोई आशंका करै छै जो सम्यग्दृष्टी जीव भोग भोगवै छै सो भोग भोगवता रागरूप अशुद्ध परिणाम होतां होसे—त्यांह राग परिणामह करि बंध हो तो होसी, सो यो तो नहीं, जातहि वस्तुको स्वरूप यों छै। इसो शुद्ध ज्ञान हुओ होतो भोग सामग्रीके कहे अशुद्ध रूप कीयो न जाइ केती ही भोग सामग्री भोगवो, तथापि शुद्ध ज्ञान आपणे स्वरूप शुद्ध ज्ञान स्वरूप रहै वस्तुको इसो सहज छै। इसो कहिजै छै। ज्ञान कदाचनापि अज्ञान न भवत्—ज्ञान कहता शुद्ध स्वभावरूप परिणयो छै आत्म द्रव्य कदाचन अपि कहता अनेक प्रकार भोग सामग्रीको भोगवता अतीत अनागत वर्तमान काल विषै, अज्ञान कहता विभाव अशुद्ध रागादिरूप, न भवेत् कहता न होइ। किसो छै ज्ञान, सतत भवत्—कहता शाश्वतो शुद्ध स्वरूप जीव द्रव्य परिणवो छै मायाजालकी नाइ क्षण विनश्वर न छै। आगै दृष्टांत करि वस्तुको स्वरूप साधिजै छै यस्य यादृशः यः यादृक स्वभाव तस्य तादृक् इह अस्ति—हि कहता निह कारण तहि, यस्य कहतां जो कोई वस्तुको, यः यादृक् स्वभाव कहता जो स्वभाव जैसो स्वभाव छै, तादृक कहता अनादि निधन छै, तस्य कहता तिहि वस्तुको तादृक् इह अस्ति कहतां तिसो ही छै यथा शंखको श्वेत स्वभाव छै, श्वेत हुतो छै। तथा सम्यग्दृष्टीको शुद्ध परिणाम हो तो शुद्ध छै। एष परैः कथमपि अन्यादृशः कर्तुं न शक्यते—एष कहतां वस्तुको स्वभाव, परै कहतां अन्य वस्तुके करता, कथमपि कहतां कौन ही प्रकार करि, अन्यादृश कहतां और सो, कर्तुं कहतां करिवाको, न शक्यते कहता नहीं समर्थ होइ छै। भावार्थ इसो—जो स्वभाव करि श्वेत शंख छै, सो शंख कारी माटी स्याइ छै, पीरी माटी स्याइ छै नाना वर्ण माटी स्याइ छै—इसी माटी स्यातो होतो शंख तिह माटीके रंग नहीं होइ छै आपणे श्वेतरूप रहै छै, वस्तुको इसो ही सहज छै। तथा सम्यग्दृष्टी जीव स्वभाव करि रागद्वेष मोह करि रहित शुद्ध परिणाम छै, सो जीव नाना वर्ण प्रकार भोग सामग्री भोगवै छै।

न रताई नहि राग रकताई रच, लह लहै समता समाधि जोग जलमें ॥ ऐसे ज्ञान दीपकी सिखा जगी अभगरूप, निराधार फूरि पै दूरी है पुदगलसें ॥ ३७ ॥

सवैया ३१ सा—जैसो जो दरव तामें तैसा ही स्वभाव सधे, कोउ द्रव्य काहूको स्वभाव न गहत है ॥ जैसे शंख उज्जल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसा न दीसे नित उज्जल रहत है ॥ तैसे ज्ञानवन्त नाना भोग परिग्रह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहत है । ज्ञानकला दूनी होय द्वन्द दशा सूनी होय ऊनि होय भव थिती बनारसी कहत है ॥ ३८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—ज्ञानिन् कर्म्म न जातु कर्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुंक्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः ।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्च सबन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ॥ १९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ज्ञानिन् जातु कर्म कर्तु न उचितं-ज्ञानिन कहता हो सम्य ग्दृष्टी जीव, जातु कहतां कौनहू प्रकार कबहू ही, कर्म कहतां ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल पिं कर्तु कहतां बांधिवाको, न उचितं कहतां योग्य न छै। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टी जीवके कर्मको बन्ध नहीं छे। तथापि किंचित् उच्यते-तथापि कहतां तो फुनि, किंचित उच्यते कहतां कांई विशेष छै सो कहिंजे छे। हंत यदि मे परं न यातु भुंक्षे भोः दुर्भुक्तो एव असि-हंत कहतां आकरा वचन करि कहिंजे छै। यदि कहता जो इसौ जानि करि भोग सामग्री भोगवे छे कि मैं कहता मो कहुं, पर न यातु कहता कर्मको बन्ध नहीं छै। इसं जानि करि, भुक्षे कहतां पचेंद्रिय विषय भोगवे छे। भोः कहता हो, जीव दुर्भुक्त एव असि कहतां इसो जानि भोगहको भोगइवो भलो नहीं। जिहितैं वस्तु स्वरूप यो छै। यदि उप भोगतः बन्धः न स्यात् तत् ते किं कामचारः अस्ति-यदि कहतां जो योछै, उप भोगतः कहता भोग सामग्री भोगवता, बंध. न स्यात कहता ज्ञानावरणादि कर्मको बंध नहीं छै, तत् कहता तौ, ते कहता तहा सम्यग्दृष्टी जीव तो कहु कामचारः कहतां स्वेच्छा आच रण किं अस्ति कहता कायो यो छै अपितु योनो न छै। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टि जी रागद्वेष मोह तहि रहित छै। कोई सम्यग्दृष्टी जीव ज्यों सम्यक्त छूटै मिथ्यात्वरूप परिण तो ज्ञानावरणादि कर्मबंध कहू अवश्य करै जिहितै मिथ्यादृष्टी होतो सतो रागद्वेष मोहरू परिणवे छै इसो कहिंजे छै। ज्ञानं सन् बन्ध कहता सम्यग्दृष्टी होतो सतो जैनो काल प्रवं तैनो काल बन्ध न छै। अपरथा स्वस्य अपराधात् बंधं ध्रुवं एषि-अपरथा कहतां मिथ्यादृष्टि होतो सतो, स्वस्य अपराधात् कहता आपणे ही दोष थकी रागादि अशुद्ध रू परिणमनथकी बंधं ध्रुवं एषि कहता ज्ञानावरणादि कर्मबंधको तू ही अवश्य करै छै।

भावार्थ-यहांपर यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्यग्दृष्टी जीवका आचरण निरर्ग

स्वच्छन्द नहीं होता है, वह भोगोंका इच्छावान नहीं होता है। जिसी समय किसी सम्य क्तीके यह भाव होजाय कि मुझे बंध न होगा मैं चाहे जितना भोग करूं अथात् भोगोंकी इच्छामें फंस जाय उसी समय वह सम्यक्तसे छूटकर मिथ्यादृष्टी होजाता है। सम्यक्त अवस्थामें मनोज्ञ विषयोंसे राग व अमनोज्ञ विषयोंसे द्वेष न था तथा पर पदार्थोंपर मोह न था, मिथ्यात्वमें आते ही रागी द्वेषी मोही होजाता है तब उसके अवश्य कर्मका बंध होने लगता है। सम्यक्तीके यह भाव कभी संभव नहीं है कि वह स्वेच्छ रूप विषयप्रवृत्ति करै। व परपदार्थोंमें अंध होजावे। सम्यक्ती ममता रहित है मिथ्यात्वी ममता सहित है इसीसे बंधको प्राप्त होता है। इष्टोपदेशमें पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ॥ २ ॥

भावार्थ—जो जीव मोही है वह बंधता है जो निर्मोही है वह बंधको प्राप्त नहीं होता है इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके ममत्व रहित भावमें रहनेकी ही भावना करनी उचित है।

सवैया-३१-सा—जौलौं ज्ञानको उदोत तौलौं नहि बंध होत बरतै मिथ्यात्व तब नाना बंध होहि है ॥ ऐसो भेद सुनकै लग्यो तैं विषय भोगनसौं जोगनीसुं उद्यमकी रीति तैं विछोहि है ॥ सुनो भैया संत तू कहै मैं समकितवंत यह तो एकंत परमेसुरका द्रोही है ॥ विषैसुं विमुख होहि अनुभौ दसा आरोहि मोक्ष सुख टोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥ १९ ॥

चौपाई—ज्ञानकला जिसके घट जागी। ते जगमांही सहज वैरागी ॥
ज्ञानी मगन विषै सुखमांही। यह विपरीत संभवै नांही ॥ ४ ॥

दोहा—ज्ञानशक्ति वैराग्य बल शिव साधैं समकाल। ज्यों लोचन न्यारे रहैं निरखैं दोऊ ताल ॥ ४१ ॥

शार्दूलविक्रीडित छंद कर्तारं स्वफलेन यत्किल बलात् कर्मैव नो योजयेत्

कुर्वाणः फललिप्सुरेव हि फलं प्राप्नोति यत्कर्मणः ।

ज्ञानं सन्स्तदपास्तरागरचनो नो बध्यते कर्मणा

कुर्वाणोऽपि हि कर्म तत्फलपरित्यागैकशीलो मुनिः ॥ २० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—तत् मुनिः कर्मणा न बध्यते—तत् कहता तिहि कारणतहि, मुनि कहता शुद्ध स्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव, कर्मणा कहतां ज्ञानावरणादि कर्म करि, नो बध्यते कहतां नहीं बांधैजै छे, किसा छे सम्यग्दृष्टि जीव। हि कर्म कुर्वाणः अपि—हि कहता निहचासौं कर्म कहता कर्मजनित विषय सामग्री भोगरूप क्रिया तिहको, कुर्वाणः अपि कहता करै छ यद्यपि भोगवै छे, तत् फलपरित्यागैकशील—तत्फल कहतां कर्मजनित सामग्री विषे आत्मबुद्धि मानिकरि रंजक परिणाम तिहिको परित्याग कहतां सर्वथा प्रकार स्वीकार छूट्यो इसो छे एक कहता मुख्यरूप शील कहतां स्वभाव जिहको इसो छे। भावार्थ इसो—जो सम्यग्दृष्टि जीवके विभावरूप मिथ्यात्व परिणाम मिट्यो

छे तिहके मिटता अनाकुलत्व लक्षण अतीन्द्रिय सुख अनुभवगोचर हूओ छे और किसो छे ज्ञानैं सव तदपास्तरागरचनः-कहता ज्ञानमय होतां दूरि कीयो छे रागभाव जिहं इसो छे। तिहितैं कर्मजनित छे जे चार गतिकी पर्याय तथा पचेंद्रियका भोग तेता समस्त आकुलता लक्षण दुःखरूप छे। सम्यग्दृष्टी जीव इसो अनुभवै छे। तिहितैं जेतो काई साता असाता रूप कर्मको उदय तिहितैं जो कुछ नीका विषय अथवा अनिष्ट विषयरूप सामग्री सो सम्यग्दृष्टीके सर्व अनिष्टरूप छे। तिहितैं यथा कोई जीवको अशुभ कर्मके उदय रोग, शोक, दालिद्र आदि होइ छे जीव छोडिवाको घनो ही करै छे, परि अशुभ कर्मके उदय नही छूटै छे, तिहितैं भोगया सरै। तथा सम्यग्दृष्टी जीवको पूर्व अज्ञान परिणाम करि बांध्या छे सातारूप असातारूप कर्म तिहके उदय अनेक प्रकार विषय सामग्री होइ छे। सम्यग्दृष्टी दुःखरूप अनुभवै छे, छोडिवाको घनो ही करै छे। परि जब ताईं क्षपक श्रेणि चढै तब ताईं छूटिवाको अशक्य छे। तातहि परवश हुओ भोगवै छे। हीया माहे अत्यन्त विरक्त छे तिहितैं अरंजक छे तिहितैं भोग सामग्री भोगवता कर्मको बंध न छे, निर्जरा छे। इहां दृष्टांत कहिजे छे। यत किल कर्म्म कर्तारं स्वफलेन बलात् योजयेत्-यत कहतां जिहि कारण तहियो छे, किल कहता वोही छे सदेह नाहीं, कर्म कहता राजाकी सेवा आदि देय करि जावत कर्म भूमिकी क्रिया, कर्तार कहता क्रिया विषै अरंजक होइ करि तन्मय होइ करि करै छे जे कोई पुरुष तिहिको स्वफलेन कहता यथा राजाकी सेवा करतां द्रव्यकी प्राप्ति, भूमिकी प्राप्ति यथा खेती करतां अन्नकी प्राप्ति, बलात् योजयेत् कहता अवश्य करि कर्ता पुरुषको क्रियाका फल सो सयोग होइ। भावार्थ इसो-जो क्रियाको न करै तिहिको क्रियाके फलकी प्राप्ति न होइ। तथा सम्यग्दृष्टी जीवको बन्ध न होइ, निर्जरा होइ जिहितैं सम्यग्दृष्टी जीव भोग सामग्री क्रियाको कर्ता न छे तिहितैं क्रियाको फल न छे। कर्म बंध सो तो सम्यदृष्टीको न होइ, दृष्टांत दृढ़ कीजे छे। यत कुर्वाणः फललिप्सुः एव हि कर्मणः फलं प्राप्नोति-यत कहता जिहि कारण तहि, पूर्वोक्त नाना प्रकार क्रिया, कुर्वाणः कहता कोई करतो होतो, फललिप्सुः कहता फलको अभिलाष करि क्रिया करै छे इसा ना कहता कोई पुरुष, कर्मणः फलं कहता क्रियाका फलको, प्राप्नोति कहतां पांवे छे, भावार्थ इसो-जो कोई पुरुष क्रिया करै छे निरभिलाष हुओ करै छे तिहिको फुनि क्रियाको फल न छे।

भावार्थ-यहां श्लोकमें पहले चरणमें मुद्रित पुस्तकमें नो योजयेत् है तब राजमल्ल कृत टीकाकी तीन भिन्न २ प्रतियोंमें ना योजयेत् है। ऐसा ही अर्थ किया है। नाके अर्थ पुरुष किये है। यदि नो योजयेत् लेवें तब तो यह अर्थ होता है कि जो कोई क्रियाको उदासीनतासे करता है उसको बलात् फल नहीं होजाता है अर्थात वह कर्म

कहता विन ही अभिलाष करता बलात्कार ही, कुतोऽपि किंचिदपि कर्म कहतां पूर्वे ही बांध्या था जे ज्ञानावरणादि कर्म तिहका उदय थकी हूआ छे जे पंचेंद्रिय विषय भोग क्रिया, आपतेत् कहतां प्राप्त होइ छे । भावार्थ इसो जो-यथा कोईको रोग, शोक, दालिद्र विन ही वांछो होइ छे। तथा सम्यग्दृष्टी जीवको जो कोई क्रिया होइ छे सो विन ही वांछा होइ छे। तस्मिन् आपतिते-कहतां अनिच्छक छे सम्यग्दृष्टी पुरुष तिहको बलात्कार होइ छे भोग क्रिया तिहि करि हुवे संते ज्ञानी किं कुरुते-ज्ञानी कहतां सम्यग्दृष्टी जीव, किं कुरुते कहतां अनिच्छक छे कर्मके उदय क्रिया को छे तौ क्रियाको कर्ता होइ काये। अथ न कुरुते-कहता सर्वथा क्रियाको कर्ता सम्यग्दृष्टी जीव न छे। किसाको कर्ता न छे, कर्म इति कहता भोग रम क्रियाको। किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, जानाति कः कहता ज्ञायक स्वरूप मात्र छे। तथा किसा छे सम्यग्दृष्टी जीव-अकंपपरमज्ञानस्वभावे स्थितः-कहता निश्चल परम ज्ञान स्वभाव माहे स्थित छे।

भावार्थ-यह है कि सम्यग्दृष्टी ज्ञानी है वह बिलकुल इच्छा रहित है फिर वह कर्मको बांधेगा, यह विश्वासमें नहीं आसक्ता। वह सदा आत्मरसिक ही रहता है। पूर्व कर्मोंके उदयमें उसको रोगके इलाजवत् जो कुछ काम करना पड़ता है व विषयभोग करना पड़ता है उससे वह अपने ज्ञान स्वभावसे विचलित नहीं होता है। इसलिये वह न तो कर्ता है न भोक्ता है-वह मात्र ज्ञाता दृष्टा है। इस कारण कर्मकी निर्जरा होजाती है। परन्तु तन्मयता रखनेसे जो बंध होता था सो नहीं होता है। सम्यक्त्वकी अपूर्व महिमा है। परमात्म प्रकाशमें ज्ञानीके लिये कहा है—

भवतणुभोयविरत्तमणु जो अप्पा झाएइ, तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ ॥ ३२ ॥

अर्थात् जो संसार शरीर भोगोमे विरक्त चित्त होकर आत्माको ध्याता है उसकी बड़ी भारी संसाररूपी बेल टूट जाती है।

सवैया २३ सा—जे निज पूरव कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहेंगे। जे दुखमें न विलाप करें, निर वैर हिये तन ताप सहेंगे॥ है जिनके दृढ़ आतम ज्ञान, क्रिया करिके फलको न चहेंगे। ते सु विचक्षण ज्ञायक हैं, तिनको करता हम तो न कहेंगे ॥ ८४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-सम्यग्दृष्टय एव साहसमिदं कर्तुं क्षमन्ते परं

यद्वज्रेऽपि पतत्यमी भयचलत्त्रैलोक्यमुक्ताध्वनि।
सर्वामेव निसर्गनिर्भयतया शङ्कां विहाय स्वयं
जानन्तः स्वमवध्यबोधवपुषं बोधाच्च्यवन्ते न हि ॥ २२ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-सम्यग्दृष्टयः एव इदं साहसं कर्तुं क्षमन्ते-सम्यग्दृष्टय कहतां स्वभाव गुण रूप परिणया छे जे जीवराशि, एव कहतां निहचासों, इदं साहस कहता इसो

आदिको मात्र पर पदार्थका वियोग व बिगाड़ जानते हैं, अपने आत्माके भीतर रोगादि व मरणको किंचित् भी आरोपण नहीं करते हैं। वीर क्षत्रीके समान संसाररूप कर्मक्षेत्रमें निर्भयतासे डटे रहते हैं, उनके ऊपर कर्मोंके उदयरूप आक्रमण व्यर्थ जाते हैं। अर्थात् कर्मकी निर्जरा होजाती है। वे कर्मसे बांधे नहीं जाते, कर्म उनको बांध नहीं सक्ता। ऐसा अपूर्व स्वभाव सम्यग्दृष्टी जीवका झलक जाता है। मैं अनन्तबली परमानन्दी ज्ञाता दृष्टा आत्मा हूं। ऐसा अनुभव सम्यग्दृष्टिको सदा ही निर्भय रखता है। इष्टोपदेशमें कहा है-

न मे मृत्यु: कुतो भीतिर्न मे व्याधि: कुतो व्यथा। नाहं बालो न वृद्धोहं न युवैतानि पुद्गले ॥२९॥

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी यह अनुभव करता है कि मैं अविनाशी चैतन्यमई पदार्थ हूं। मेरा मरण नहीं, फिर भय किससे, मुझे कोई ज्वर, श्वास आदिका रोग नहीं तब कष्ट क्या। न मैं बालक हू, न वृद्ध हू, न युवान हूं। ये सब विकार शरीरमे हैं जो कि पुद्गल है मैं नित्य ही परमानंदमय परम वीतरागी हू।

सवैया ३१ सा—जिन्हके सुदृष्टीमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हको आचार सु विचार शुभ ध्यान है ॥ स्वारथको त्यागि जे लगे हैं परमारथको, जिन्हके वनिजमें न नफा है न ज्यान है ॥ जिन्हके समझमें शरीर ऐसो मानीयत, धानकोसो छीलक कृपाणकोसो म्यान है ॥ पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके, तेई साधु तिनहीको यथारथ ज्ञान है ॥ ४५ ॥

सवैया ३१ सा—जमकोसो भ्राता दुखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहत है। सुरगनिवासी भूमिवासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहत है ॥ उरझागे न्यारो देखिये सपत भैसे, डोलन निशंक भयो आनन्द लहत है ॥ सहज सुवीर जाको शास्वत शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहत है ॥ ४६ ॥

दोहा-इहभव भय परलोक भय, मरण वेदना जात। अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७॥

सवैया ३१ सा—दशधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन भय परलोक मानिये प्राणनिको हरण मरण भै कहावै सोइ, रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये ॥ रक्षक हमारो कोउ नाही अनरक्षा भय चोर भय विचार अनगुप्त मन आनिये ॥ अनचिन्त्यो अबहि अचानक कहा होय, ऐसो भय अकस्मात जगतमे जानिये ॥ ४८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—लोकः शाश्वत एक एष सकलव्यक्तो विविक्तात्मन-

श्चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येककः।

लोको यन्न तवापरस्तदपरस्तस्यास्ति तद्भीः कुतो

निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥२३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-स सहजं ज्ञानं स्वयं सततं सदा विंदति-स कहता सम्यग्दृष्टी जीव, सहजं कहता स्वभाव ही से ज्ञान कहता शुद्ध चैतन्य वस्तु, विंदति कहता अनुभवै छे, आस्वादै छे। कैसो अनुभवै छे, स्वयं कहतां आपुनपै आपको अनुभवै छे, प्रकार, सततं कहता निरंतर पनै, सदा कहता अतीत अनागत वर्तमान अनुभवै छे। कि

छे सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंकः कहतां सात भय तहि रहित छे। किंभावकी जिहिते तस्य तद्गी कुत, अस्ति-तस्य कहतां तिहि सम्यग्दृष्टिको, तद्भी कहता इहलोक भय, परलोक भय, कुत अस्ति-कहता कहातहि होइ, अपि तु न होइ। ज्यों विचारतां भय नहीं होइ त्यों कहिजे छे। तत अयं लोक तदपर अपर' न-तव कहता भो जीव तेरो, अयं लोक कहतां छतो छे जो चिद्रूप मात्र इसो लोक छे, तदपर कहता तिहिते और जो कुछ छे, इहलोकपरलोक। ब्योरो-इहलोक कहता वर्तमान पर्याय तिहि विषै इसी चिंता जो पर्याय पर्यन्त सामग्री रहसे के न रहसे, परलोक कहता इहां तहि मरि नीको सी गति उपाज्यां के न उपाज्यां इसी चिंता। इसो जो, अपर कहतो इहलोक परलोक पर्यायरूप, न कहता जीवको स्वरूप नहीं छे। यत एष अयं लोक केवलमय चिल्लोक स्वयमव लोकयति-यत कहतो जिहि कारण तहि एष अयं लोक कहता छता छे जो चैन यलोक, केवलमय कहता निर्विकल्प छे। चिल्लोक स्वयमव लोकयति कहता ज्ञानस्वरूप आत्माको स्वय ही देखे छे। भावार्थ इसो जो-जीवका स्वरूप ज्ञानमात्र ही छे किसो छ चैतन्य लोक, शाश्वत कहतां अविनाशी छे, और किसो छे, एकक कहता एक वस्तु छे और किसो छे सकलव्यक्त सकल कहतां त्रिकाल विषय, व्यक्त कहता प्रगट छ, कौनको प्रगट छे। विविक्तात्मन.- विविक्त कहतां भिन्न छे, आत्मन कहता आत्मास्वरूप जिहको इसो छ भेदज्ञानी पुरुष।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको इहलोक परलोकका भय नहीं होता। जिसने शरीरको अपना नहीं माना उसको यह भय कैसे होसक्ता है कि यह शरीर बिगड़ेगा तो क्या होगा व परलोकमें खराब गति होगी तो क्या होगा। वह निश्चय नयपर आरूढ होता हुआ भेद विज्ञानके बलसे अपने शुद्ध, अविनाशी, एक आत्म को ही अपना लोक तथा परलोक अर्थात् उत्कृष्ट लोक मानता है। जहां सर्व मेव हों वही लोक व परलोक है। उसके आत्माका यह स्वभाव ही है जो सबको जानता तथा स्वयं मानने वाला है। ज्ञानीका लोक परलोक अपना शुद्ध आत्मा ही है इसलिये ज्ञानीको व्यवहारमई क्षणिक इहलोक परलोकका रंचमात्र भय नहीं होता, वह सदा ही निर्भय रहकर अपने स्वाभाविक आनंदका उपभोग करता है। यही सम्यग्दृष्टीका निःशंकित गुण है। तत्व० में कहा है-

स्वं शुद्ध चिद्रूप निज समस्त त्रिकालगं युगपत्। जानन् पश्यन् पश्यति स्वं [illegible] ॥८-१२

भावार्थ-जो अपने शुद्ध चैतन्यमई आत्माको सब त्रिकाल गत पदार्थोंको एकसाथ जानता देखता हुआ अनुभव करता है वही निश्चयसे सम्यग्दृष्टी है।

छंद—अब चित चित्त प्रमाण [illegible] अवगाह निरंतर। आतम आप अमल [illegible] पर पद [illegible] अमर। चिन अंग हमार विमल परिवार [illegible]। जहां उतपति नहीं प्रलय [illegible] संयोग

वियोग वसु। परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इहभव भय उपजे न चित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥ ४९ ॥

छप्पै छन्द—ज्ञानचक्र मम लोक, जासु अवलोक मोक्ष सुख। इतर लोक मम नाहिं नाहिं जिस माहि दोष दुख ॥ पुन्य सुगति दातार, पाप दुर्गति दुखदायक। दोऊ खण्डित खानि मैं, अखण्डित शिव नायक ॥ इहविधि विचार परलोक भय, नहि व्यापत बरते सुखित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥ ५० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-एषैकैव हि वेदना यदचलं ज्ञानं स्वयं वेद्यते।
निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलादेकं सदानाकुलैः ॥
नैवान्यागतवेदनैव हि भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-स स्वयं सततं सदा ज्ञानं विन्दति-स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, स्वयं कहतां आपुनपे, सतत कहता निरंतरपनै, सदा कहतां त्रिकाल विषै, ज्ञान कहतां जीवको शुद्ध स्वरूप तिहिको, विन्दति कहतां अनुभवै छे, आस्वादै छे। किसो छै ज्ञान, सहजं कहता स्वभाव तहि उत्पन्न छे। किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंकः कहतां सात भय करि मुक्त छे, ज्ञानिनः तद्भीः कुतः-ज्ञानिन. कहतां सम्यग्दृष्टी जीव कहु, तद्भी कहता वेदनाका भय, कुत. कहता सम्यग्दृष्टीको कहातै होइ, अपि तु न होइ। जिहितैं सदा अनाकुलैः-कहतां सदा भेदज्ञान विराजमान छे जे पुरुष त्यांइ पुरुष, स्वयं वेद्यते कहता स्वयं इसो अनुभव कीजै छे। यत अचलं ज्ञानं एषा एका एव वेदना-यत् कहतां जिहि कारण तहि, अचलं ज्ञान कहता शाश्वतो छे जो ज्ञान, एषा कहता यही, एका वेदना कहतां जीवको एक वेदना छे। एव कहता निहचासों। अन्यागतवेदना एव न भवेत-अन्या कहता इहि तैं छांडि सो अन्य आगत वेदना एव कहता कर्मकै उदय थकी हुई छे सुखरूप अथवा दुःखरूप वेदना, न भवेत् कहतां जीवको छे ही नहीं। ज्ञान किसो छै एकं कहता शाश्वतो छे, किसा छे एक रूप छे। निर्भेदोदितवेद्यवेदकबलात-निर्भेदोदित कहतां अभेदपनै करि छे, वेद्यवेदक कहता जो वेद छे, सोई वेदैन छे। इनो बल कहतां सामर्थ्यको तिहि थकी। भावार्थ इसो-जो जीवको स्वरूप ज्ञान छे सो एक छे। सो साता असाता कर्मके उदय सुख-दुःखरूप वेदना सो जीवको स्वरूप न छे तिहि सम्यग्दृष्टी जीवको रोग उपजिवाको भय न होइ।

भावार्थ-यहां निश्चयनयसे बताया है कि वेदना नाम ज्ञान स्वरूप अनुभव करनेका है सो ज्ञानी सम्यग्दृष्टीका ज्ञान निरन्तर आपसे आपको शुद्धरूप अनुभव कर रहा है। यही उसको एकाकार वेदना है। वह अपने आत्माको ही अपना जानता है। इसलिये

अस्य अपरैः किं त्रातं—किल कहतां निहचासो, तत् ज्ञानं कहतां इसो छे जीवको शुद्ध स्वरूप, स्वयमेव सत् कहतां सहज ही सत्ता स्वरूप छे, ततः कहतां तिहि कारणतहि, अस्य कहतां कोई द्रव्यातर तिहकरि, किं त्रातं कहतां इहि वस्तुको कायो राखिजैगो। भावार्थ इसो जो-म्हाको रक्षक कोई छे कि नहीं सो इसो भय सम्यग्दृष्टि जीवको न होई जातहि इसो अनुभवै छे जो शुद्ध जीव स्वरूप सहज ही शाश्वतो छे इहिको कोई-कांयो राखिसे।

भावार्थ—यहांपर यह झलकाया है कि अरक्षाभय तो उसे होसक्ता है जिसके पास ऐसी कोई वस्तु हो जिसे कोई परकी रक्षाकी जरूरत हो—ज्ञानी समझता है कि मैं नित्य ज्ञानस्वरूप हूं। मेरा ज्ञान सत् स्वरूप है। यह सदा ही सुरक्ष्य है। इसके लिये किसी परकी रक्षाकी आवश्यक्ता नही। इसलिये बिलकुल निश्चिन्त होकर अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव करता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

दव्वइ जाणहि ताइं छह-तिहुयणु भरियउ जेहिं। आइविणासविवज्जियहिं णाणिहि पभणियएहिं ॥१४२॥

भावार्थ—इस लोकमें छः द्रव्य भरे हुए हैं न उनका आदि है न नाश है ज्ञानी ऐसा जानता है। व ज्ञानियोंने ऐसा ही कहा है। इसलिये-मेरा भी नाश नहीं है मैं सत् हूं, जो जो सत् है सो सुरक्ष्य है—

छप्पै—जो स्ववस्तु सत्ता स्वरूप, जगमाहि त्रिकाल गत। तास विनाश न होय, सहज निश्चै प्रमाण मत। सो मम आतम दरब, सरवथा नहि सहाय धर ॥ तिहि कारण रक्षक न होय भक्षक न कोय पर। जब यह प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥ ५२ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-स्वं रूपं किल वस्तुनोऽस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपेण य-
च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः।
अस्या गुप्तिरतो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २६ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—स ज्ञान सदा विन्दति—स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, सदा विंदति कहतां निरंतरपनै अनुभवै छे, आस्वादै छे। किसो छे ज्ञान, स्वयं कहतां अनादि सिद्ध छे, और किसो छे, सहजं कहतां शुद्ध वस्तु स्वरूप छे। और किसो छे, सततं कहतां अखंड धाराप्रवाह रूप छे। किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव। निःशंकः कहतां वस्तु जतन सो राखिजै नहीं तो कोई चुराइ लेय इसो जो अगुप्तिभय तिहिसे रहित छे। अतः अस्य काचन अगुप्तिः एव न भवेत ज्ञानिनः तद्भीः कुतः—अतः कहतां इहि कारण तहि, अस्य कहतां शुद्ध जीवको, कांई

अगुप्ति कहता कोई प्रकारको अगुप्तपनो, न भवेत् कहता नहीं छे। ज्ञानिनः कहता सम्यग्दृष्टि जीवको तद्भी कहता म्हारो वस्तु कोई छिनाइ मत लेइ इसो अगुप्तभय, कुत कहता सम्यग्दृष्टिको कहा थकि होइ अपि तु न होइ। किसा थकी-किल वस्तुनः स्वरूप परमा गुप्ति अस्ति-किल कहता निहचासों, वस्तुन कहतां जो कोई द्रव्य छे तिहको स्वरूप कहता सो वस्तु निज लक्षण छ, परमा गुप्ति अस्ति कहता सर्वथा प्रकार गुप्त छे, किसा थकी-यत्स्वरूप कोपि पर प्रवेष्टुं न शक्तः यत् कहता वस्तुके सत्व विषे, कोपि पर कहता कोई अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य विषै, प्रवेष्टु कहता संक्रमण करु, न शक्तः कहता समर्थ नहीं छै। नुः ज्ञानं स्वरूपं च-नुः कहता आत्म द्रव्यको ज्ञान स्वरूप कहता चैतन्य स्वरूप छे, च कहता सोई ज्ञानस्वरूप किसो छे। अकृत-कहता कि नहीं कीयो नहीं कोई हरि सकै नहीं। भावार्थ इसो-जो सब जीवको इसो भय होइ छै, जो म्हारो वस्तु कोई चुराइ लसी, छीन लसी सो इसो भय सम्यग्दृष्टीको न होइ। जिहि कारण तहि सम्यग्दृष्टी इसो अनुभवै छे, म्हारो तो शुद्ध चैतन्य स्वरूप छे तिहइ तो कोई चुराइ सकै नहीं छिनाइ सकै नहा, वस्तुको स्वरूप अनादि निधन छे।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी जीव अपनी वस्तु अपने ही शुद्ध आत्माके ज्ञानादि गुणोंको मानता है धनादिको मानता ही नहीं। इससे उसको धनादिक चले जानेका भय नहीं होता है। योग्य उपाय करते हुए भी यदि चला जाय तो खेद नहीं करता है। लक्ष्मी कर्म आधीन थी, पुण्य कर्मके क्षयसे चली गई। इसमें कोई आश्चर्य नहीं मानता है। अपने आत्मीक गुण तो आत्मामें अभिन्न हैं। उनको न कोई दूसरा कर सक्ता है न कोई छीन सक्ता है। ऐसा मान सदा निर्भय रहकर निज सम्पदाका भोग करता है। तत्व०में कहा है-

स्मार्ति याश्चाणि मोहान्मूढः प्रतिक्षण शिवाय स्व चिदानन्दमयनैव कदाचन ॥ १८।५॥

भावार्थ-मूढ मिथ्यादृष्टी ही मोहसे परद्रव्योंकी चिंता किया करते हैं, वे कभी भी मोक्षके लिये चिदानन्दमई स्वभावका अनुभव नहीं करते, सम्यग्दृष्टि इससे विपरीत होता है।

छप्पै—परम रूप परतच्छ जासु लच्छन चित मंडित। पर परवेश तहं नांहि माहि महि अगम अखंडित। सो मम रूप अनूप अकृत अनमित अटूट धन। तांहि चोर किम गहै ठौर नहिं लहै और जन। चितवन्त एम धरि ध्यान जब तब अगुप्त भय उपशमित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५१ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किञ्चन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ ५७

खण्डान्वय सहित अर्थ-स ज्ञानं सदा विन्दति-स कहतां सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञान कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तुको, सदा कहतां निरंतरपनै, विंदति कहतां आस्वादै छे, किसो छे ज्ञान, स्वयं कहता अनादि सिद्ध छे, और किसो छे सततं कहतां अखंड धाराप्रवाह रूप छे, और किसो छे, सहजं कहतां विना कारण सहज ही निःपन्न छे, किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, निःशंकः कहतां मरण शंका दोष तहि रहित छे, कायो विचारतां निःशंक छे। अतः तस्य मरणं किंचन न भवेत् ज्ञानिनः तद्भीः कुतः-अतः तहतां इहि कारण तहि, तस्य कहतां आत्मद्रव्यको, मरण कहता प्राण वियोग, किंचन कहता सूक्ष्म मात्र, न भवेत कहता नहीं होइ छे तिहिंतै, ज्ञानिनः कहता सम्यग्दृष्टिको, तद्भीः कहता मरणनो भय, कुतः कहता कहा तहि होइ, अपि तु न होइ, जिहि कारण तहि। प्राणोच्छेदं मरणं उदाहरन्ति-प्राणोच्छेदं कहता इंद्रिय बल उसासु आयु इसा छे जे प्राण त्यहको विनाश इसो मरणं कहता इसा मो मरणो कहिजै, उदाहरंति कहता अरहंतदेव इसो कहै छे। किल आत्मनः ज्ञानं प्राणाः-किल कहता निहचासौं, आत्मनः कहतां जीव द्रव्यकै, ज्ञानं प्राणाः कहता शुद्ध चैतन्य मात्र इसो प्राण छे । तत् जातुचित् न उच्छिद्यते-तत् कहतां शुद्ध ज्ञान, जातुचित् कहता कौनहू काल, न उच्छिद्यते कहतां नहीं विनशै छे। किमा थकी स्वयं एव शाश्वतया-स्वयं एव कहता विना ही जतन, शाश्वतया कहता अविनश्वर छे तिहि थकी। भावार्थ इसो-जो सर्व मिथ्यादृष्टी जीवको मरणको भय होइ छे। सम्यग्दृष्टि जीव इसो अनुभव छे। जो म्हारो शुद्ध चैतन्य मात्र स्वरूप छे सो तो विनशै नहीं। प्राण विनशै छे सो तो म्हारो स्वरूप छे ही नहीं पुद्गलको स्वरूप छे, तिहितै म्हारो मरण हो सो डरवो, हो किसाको डरवो म्हारो स्वरूप शाश्वतो छे।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी अपने शुद्ध ज्ञानमय आत्माको ही अपना प्राण समझता है। अविनाशी है। इसलिये उसको व्यवहार प्राणोके वियोग व मरणकी कोई चिंता नहीं है। वह सदा अपनेको जीवन्मुक्त समझता है। तत्व०में कहा है—

पुरुषाकार पमाणु जिय अप्पा एहु पवित्तु। जोइज्जइ गुणणिम्मलउ णिम्मलतेय फुरंतु ॥ ५३ ॥

भावार्थ-ज्ञानी अपने आत्माको पुरुषाकार, पवित्र, शुद्ध गुणधारी व निर्मलज्ञानके तेजमे प्रकाशमान अनुभव करता रहता है।

छप्पै—[illegible] मन वच तन बल तीन, [illegible] ये दश प्राण विनाश, नहिं [illegible] । ज्ञान प्राण [illegible] नय प्रमाण जिनवर कथित। [illegible] ॥ ५८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-एकं ज्ञानमनाद्यनन्तमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो

यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः ।
तन्नाकस्मिकमत्र किञ्चन भवेत्तद्धीः कुतो ज्ञानिनो
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ॥ २८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—स ज्ञान सदा विंदति—स कहता सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञान कहतां शुद्ध चेतन वस्तुको, सदा कहता त्रिकाल विषे विंदति कहतां आस्वादै छे, किसो छै ज्ञान, स्वयं कहता सहजही नहिं उपायो छे और किसो छे, सततं कहता अखंड धाराप्रवाह रूप छे और किसो छे सहजं कहता विन उपाय इसो ही वस्तु छे। किसो छे सम्यग्दृष्टी जीव, निःशंक कहता आकस्मिक भय तहिं रहित छे, आकस्मिक कहतां अनचिंत्यो तत्काल मात्र अनिष्ट उपजै। कायो विचारै छे सम्यग्दृष्टी जीव अत्र तत् आकस्मिकं किंच न भवेत् ज्ञानिनः तद्भीः कुतः अत्र कहतां शुद्ध चैतन्य वस्तु विषै, तत कहतां कह्यो छे लक्षण जिहिको इसो आकस्मिक कहता क्षण मात्र माहै अन्य वस्तु तहिं अन्य वस्तुरूपो, किंच न भवेत् कहता इसो कयों छे ही नहीं, तिहितै, ज्ञानिनः कहतां सम्यग्दृष्टी जीवको तद् भी कहतां आकस्मिकपनाका भय, कुत कहतां कहां तहिं होइ, अपि तु न होइ। किसा यैं एतत् ज्ञान स्वतः यावत्—एतत् ज्ञान कहता शुद्ध जीव वस्तु स्वतः यावत् कहता आपणा सहज जिसा छे जेतो छे। इदं तावत् सदा एव भवेत्—इदं कहता शुद्ध वस्तु मात्र तावत् कहता तिसो छे तैसो छे। सदा कहता अतीत अनागत वर्तमान काल गोचर, एव भवेत् कहता निश्चायों इसो ही होइ। अत्र द्वितीयोदय न—अत्र कहता शुद्ध वस्तु विषै, द्वितीयोदय कहता और किसो स्वरूप न कहता नहीं होइ छे। किसो छे ज्ञान, एकं कहता समस्त विकल्प नहिं रहित छे और किसा छे। अनाद्यनन्त कहता नहीं छे आदि नहीं छे अन्त जिहिको इसो छे और किसो छे, अचलं कहतां आपणा स्वरूप तहिं नहीं विचलै छे। और किसो छे सिद्ध कहता निष्पन्न छे।

भावार्थ—ज्ञानीको अकस्मात भय भी नहीं होता क्योंकि वह अपने ज्ञानादि गुणोंको ही सम्पत्ति मानता है जिनका कभी नाश हो नहीं सकता। शरीरादि पदार्थोंका बिगाड़ व नाश यदि अकस्मात् कर्मोंके उदयसे हो तो ज्ञानीको इसकी चिंता नहीं क्योंकि, ये सब परवस्तु हैं व सा उन नहीं हैं, यानी शुद्ध आत्माहीका अनुभव करता है।

आराधना सारमें कहा है—

तम्हा दंसण णाणं चारित्तं तह तवो य सो अप्पा चइऊण राग दोसे आराहउ सुद्धमप्पाणं ॥ १ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तपरूप यही आत्मा है इसलिये रागद्वेष छोड़कर शुद्धात्माकी ही आराधना करो।

छप्पै—शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम। अलख अनादि अनंत, अतुल अविचल स्वरूप मम। चिद्विलास परकाश, वीत विकलप सुख थानक। जहां दुविधा नहि कोइ, होइ तहां कछु न अचानक। जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहि उदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५५ ॥

मन्दाक्रांता छन्द—टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः
सम्यग्दृष्टेर्यदिह सकलं घ्नन्ति लक्ष्माणि कर्म।
तत्तस्यास्मिन्पुनरपि मनाक् कर्म्मणो नास्ति बन्धः
पूर्वोपात्तं तदनुभवतो निश्चितं निर्ज्जरैव ॥ २९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—यत् इह सम्यग्दृष्टेः लक्ष्माणि सकलं कर्म्म घ्नन्ति-यत् कहतां जिहि कारण तहि, इह कहता विद्यमान छे, सम्यग्दृष्टेः कहता शुद्ध स्वरूप परिणवो छे जो जीव, तिहिंकै, लक्ष्माणि कहतां निःशंकित, निःकांक्षित निर्विचिकित्सा, अमूढ दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावनांग इसा छे जे गुण, सकलं कर्म कहतां ज्ञानावरणादि अष्ट प्रकार पुद्गल द्रव्यको परिणमन, घ्नन्ति कहतां हनहि छे। भावार्थ इसो-जो सम्यग्दृष्टी जीवके जेते केई गुण छे ते शुद्ध परिणमन रूप छे तिहितै कर्मकी निर्जरा छे। तत् तस्य अस्मिन् कर्मणः मनाक् बन्धः पुनरपि नास्ति-तत कहतां तिहि कारण तै, तस्य कहतां सम्यग्दृष्टी जीव कहु, अस्मिन् कहतां शुद्ध परिणामकै होते संतै कर्मणः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको, मनाक् बंध कहता सूक्ष्म मात्र फुनि बंध, पुनरपि नास्ति कहतां कदा नाहीं। तत् पूर्वोपात्तं अनुभवतः निश्चितं निर्जरा एव-तत् कहता ज्ञानावरणादि कर्म, पूर्वोपात्त कहतां सम्यक्त उपजता पहिले अज्ञान राग परिणाम करि बांध्या था जे कर्म तिहिके उदयको अनुभवत कहता भोगवै छे। इसा सम्यग्दृष्टी जीवको, निश्चितं कहता निहचै-निर्जरा एव कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको गलिवो छे। किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, टंकोत्कीर्णस्वरसनिचितज्ञानसर्वस्वभाजः-टंकोत्कीर्ण कहता शाश्वतो छे इसो, स्वरस कहता स्वरस जाइक शक्ति तिहिकरि, निचित कहता सपूर्ण छे, ज्ञान कहता प्रकाशगुण सोई छे सर्वस्व कहता आदि मूल जिहिको इसो छे जीवद्रव्य तिहिको, भाजः कहता अनुभव शील छे, इसो छे सम्यग्दृष्टि जीवको नूतन कर्मको बंध नहीं छे, पूर्वबद्ध कर्मकी निर्जरा छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके भीतर निश्चयनयसे आठों अंग विराजमान रहते हैं वह न तो कभी भय करता है, न विषयकांक्षा रखता है, न ग्लानि भाव किसी पर लाता है, न मूढ भाव ही रखता है, वह नित्य आत्मगुणोंका वर्द्धक है। उन हीका स्थितिकरण करता है उन हीमें रमता है व उन हीकी प्रभावना करता हुआ परमानंदका भोग करता है। ऐसे [illegible] रहते हुए ज्ञानीके उदय प्राप्त कर्मोंकी निर्जरा ही होती है, बंध न[illegible]

सम्यक्तका साराका गुण छे त्याहसो, सगतः कहतां भावरूप परिणवो छे। इसो छे, और किसो छे सम्यग्दृष्टि जीव, तु प्राग्बद्धं कर्म्म क्षयं उपनयन्-तु कहतां दूजा काज है फुनि होइ छे। प्राग्बद्ध कहतां दुर्वला बांधा छे, ज्ञानावरणादि कर्म कहता पुद्गल पि तिहिंको, क्षय कहतां मूल तहि सत्ताको नाश, उपनयन् कहतां करतो होतो किसे करि। निर्ज्जरोज्जृम्भणेन-निर्जरा कहतां शुद्ध परिणाम तिहिंके, अजृंभणेन-कहतां प्रगटपना करि।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी जीवकी परिणति बिल्कुल संसारसे पराङ्मुख होजाती है, वह मात्र शुद्ध आत्मीक रसका ही आस्वादी होजाता है। उसी आत्मीक अखाडेमें ही कल्लोल करता है। इस शुद्ध स्वात्मानुभवके प्रतापसे ऐसा नवीन कर्मोंका बंध नहीं होता कि जिसको वध कहा जासके। पूर्व कर्म उदयमें आकर लगातार झडते जाते है, व योंही गल्ते जाते हैं। इसीसे वह शीघ्र ही मुक्त होनेके सन्मुख होजाता है, आत्मानुभवकी बड़ी अपूर्व महिमा है। तत्व०में कहा है—

शुद्ध चिद्रूपके लब्धे कर्तव्यं किंचिदस्ति न अन्य, कार्यकृतो चिंता वृथा मे मोहसम्भवा ॥१०॥११॥

भावार्थ-शुद्ध चैतन्य रूपके लाभ होनेपर कोई और काम करना रहा नहीं। इससे मोहमई अन्य कार्यकी चिंता मेरे लिये वृथा है।

सवैया ३१ सा--पूर्व बन्ध नासे सो तो संगीत कला प्रकासे, नव बन्ध रोधि ताल तोरत उछारिके ॥ निशंकित आदि आठ अंग संग सखा जोरि, समता अलाप चारि करे स्वर भरिके ॥ निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदंग बाजे, छक्यो महानन्दमें समाधि रीझी करिके ॥ सत्ता रंगभूमिमें मुकत भयो तिहूं काल, नाचे शुद्धदृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ६० ॥

इति निर्जरा द्वार समाप्त। अथ प्रविशति बन्ध.-

आठवां बंध अधिकार।

दोहा-कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधन हार। अब कछु बंध प्रबन्धको, कहूं अल्प विस्तार॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-रागोद्गारमहारसेन सकलं कृत्वा प्रमत्तं जग-
त्क्रीडन्तं रसभावनिर्भरमहानाट्येन बन्धं धुनत्।
आनन्दामृतनित्यभोजिसहजावस्थां स्फुटन्नाटय-
द्धीरोदारमनाकुलं निरुपधिज्ञानं समुन्मज्जति ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-ज्ञानं समुन्मज्जति-ज्ञान कहतां शुद्ध जीव, समुन्मज्जति कहतां प्रगट होइ छे। भावार्थ-इहांसे लेइ करि जीवका शुद्ध स्वरूप कहिजे छे। किसो छे शुद्ध ज्ञान आनन्दामृतनित्यभोजि-आनन्द कहतां अतींद्रिय सुख इसो छे अमृत ... तिहिंको नित्यभोजि कहतां निरन्तर आस्वादन शील छे। स्फुटं सहजा...

नाट्यत्-स्फुट कहता प्रगटपने, सहजावस्था कहता आत्मा शुद्ध स्वरूप कहु नाट्यत् कहता प्रगट करै छै। और किसो छै धीरोदार-धीर कहता अविनश्वर सत्ता रूप छै। उदार कहता धाराप्रवाह रूप परिणमन स्वभाव छै। और किसो छै, अनाकुल-कहता सर्व दुख तहिं रहित छै। और किसो छै। निरुपधि-कहता समस्त कर्मकी उपाधि तहिं रहित छै। कायो करतो होतो ज्ञान प्रगट होइ छै। बन्ध धुनत्-बन्ध कहता ज्ञानावरणादि तिहिको, धुनत् कहता मेटतो होतो। किसो छै बंध, क्रीडन्त कहता प्रगटपने गाज छै, किसे करि क्रीडै छै। रसभावनिर्भरमहानाट्येन-रसभाव कहता समस्त जीव राशिको अपने वश करि उपजो छै, अहङ्कार लक्षण गर्व तिह करि, निर्भर कहता भर्यो छै इसो जो, महानाट्येन कहता अनन्तकाल तहिं लेइ करि अखारेको समुदाय तिह करि, कायोकरि इसो छै बंध, सकल जगत् प्रमत्त कृत्वा-सकल जगत कहता सब संसार जीवराशि तिहिको प्रमत्त कृत्वा कहता जीवको शुद्धस्वरूप तहिं भृष्ट करि, किसे करि-रागोद्गारमहारसेन-राग कहता रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणति तिहको, उद्गार कहता अति ही आधिक्यपनो इसो जो महारस कहता मोहरूप मदिरा तिहकरि। भावार्थ इसो जो यथा कोई जीव मदिरा पिवाइ करि विकल कीजे छै, सर्वस्व छिनाइ लीजे छै। पदतैं भृष्ट कीजे छै तथा अनादि तहिं लेइ करि सर्व जीवराशि रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणाम करि मतवाला हुओ छै, तिहितैं ज्ञानावरणादि कर्मको बंध होइ छै। इसा बंधको शुद्ध ज्ञानको अनुभव मेटनशील छै, तिहितैं शुद्ध ज्ञान उपादेय छै।

भावार्थ-यहां बंध तत्वको कहते हुए शुद्ध ज्ञानके अनुभवकी महिमा बताई है। जिस बंधने अनादिसे संसारी जीवोंको अपने पदसे भ्रष्ट कर रक्खा है उस बंधको स्वात्मानुभव नाश कर डालता है।

सवैया ३१ सा—मोह मद पाइ जिनि संसारी विकल कीन, याहीतें अजानबाहु बिरद बहत है॥ ऐसो बंधवीर विकराल महा जाल सम ज्ञान मंद करै चंद, राहु ज्यों गहत है॥ ताको बल भंजिवेको घटमें प्रगट भयो उद्धत उदार जाको उद्दिम महत है॥ सो है समकित सूर आनन्द अंकूर ताहि नीरखि बनारसी नमोनमो कहत है॥ १॥

छंद पृथ्वी—न कर्म्मबहुलं जगन्न चलनात्मकं कर्म्म वा—
नैककरणानि वा न चिदचिद्वधो बन्धकृत।
यदैक्यमुपयोगभू समुपयाति रागादिभि
स एव किल केवलं भवति बन्धहेतुर्नृणाम्॥ २॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-प्रथम ही बंधको स्वरूप कहिजे छे। यत् उपयोगभू रागादिभि ऐक्य समुपयाति स एव केवलं किल नृणां बंधहेतु भवति-यत् कहता जो,

उपयोग कहता चेतनागुण सोई छे, भूः कहता मूळ वस्तु, रागादिभिः कहतां रागद्वेष मोह रूप अशुद्ध परिणाम त्यांह सो ऐक्यं कहतां मिश्रितपनो तिहको, समुपयाति कहतां तिहरूप परिणवै छे, एव कहतां एतावन्मात्र केवलं कहता अन्य सहाय विना, किल कहता निहचासों, नृणां कहतां जावंत संसारि जीव राशि त्यांहको, बंधहेतुः भवति कहतां ज्ञानावरणादि कर्म बंधको कारण होइ छे । इहा कोई प्रश्न करै छे जो बंधको कारण इतनो ही छे, कै और फुनि किछु बंधको कारण छे, समाधान इसो जो बंधको कारण इतनो ही है, और तो क्यो न छे इसो कहिजै छे, कर्म्मबहुलं जगत न बंधकृत वा चलनात्मकं कर्म्म न बंधकृत व अनेककरणानि न बंधकृत वा चिदचिद्वधः न बंधकृत–कर्म कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप बधिवाको योग्य छे जे कार्मण वर्गणा त्याह करि बहुलं कहतां घृतघटकीनाई भर्यो छे इसो जो, जगत कहता तीनसै तेतालीस राजू प्रमाण लोकाकाश प्रदेश न बंधकृत कहतां सो फुनि बंधको कर्ता न छै । समाधान इसो जो रागादि अशुद्ध परिणाम विना कार्मण वर्गणा मात्र करि बंध होतौ तो मुक्त जीव छे त्यांह फुनि बंध होतो । भावार्थ इसो–जो रागादि परिणाम छै तो ज्ञानावरणादि कर्मको बंध छै तो फुनि कार्मण वर्गणाको सारो क्यों न छे । जो रागादि अशुद्धभाव न छे तो कर्मको बंध न छे, तौ फुनि कार्मण वर्गणाको सारो कर्म न छे, चलनात्मक कहतां मनोवचकाय योग, न बंधकृत कहतां सो फुनि बन्धको कर्ता न छै भावार्थ इसो जो–मन वचन काय योग बन्धको कर्ता होतो तो तेरहवें गुणस्थान मनोवचन काय योग छै त्यांह करि फुनि कर्मको बन्ध होतो तिहितै जो रागादि अशुद्ध भाव छे तो कर्मको बंध छे तो फुनि मनोवचन काय योगइंको सारो क्यों न छे । रागादि अशुद्ध भाव न तो कर्मको बंध न छे तो फुनि मनो वचन कायका योगको सारो क्यों न छै । अनेक करणानि कहता पांच इंद्रिय, ब्योरो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, छठो मन, न बंधकृत कहता फुनि बन्धको कर्ता न छे । समाधान इसो जो सम्यग्दृष्टि जीवको पांच इंद्रिय छै, मन फुनि छै, त्याह करि पुद्गल द्रव्यका गुणको ज्ञायक फुनि छै । जो पंच इन्द्रिय मन मात्र करि कर्मको बन्ध होतो तो सम्यग्दृष्टि जीवको फुनि बन्ध सिद्ध होतो तिहितै, भावार्थ इसो जो रागादि अशुद्ध भाव छे तो कर्मको बन्ध छे तो फुनि पंच इंद्रिय छठा मनको सारो कर्म न छे । जो रागादि अशुद्ध भाव न छै तो कर्मको बन्ध न छे तो फुनि पंच इंद्रिय छठा मनको सारो क्यों न छे । चित् कहतां जीवको सम्बन्ध एकेंद्रियादि शरीर, अचित् कहतां जीव रहित बिना पाषाण लोह माटी त्याहको, वध कहतां मूलतहि विनाश, अथवा बीच न बन्धकृत कहता सो फुनि बन्धको कर्ता न होइ । समाधान इसो–जो कोई महा मुनीश्वर [illegible] देखि, देवसंयोग सूक्ष्म जीवहको बाधा होइ छे, सो तो जीव मात्र कर्म

कर्मबंधको नहीं करै छे । किसा छे सम्यग्दृष्टी जीव । रागादीन् उपयोगभूमिं अनयन्-रागादीन् कहता अशुद्धरूप विभाव परिणामहको उपयोग, भूमिं कहतां परिचेतनामात्र गुण प्रति, अनयन् कहता विन परिणवतो होतो । केवलज्ञानं भवेत-कहता मात्र ज्ञान स्वरूप रहै छे । भावार्थ इसो जो-सम्यग्दृष्टी जीवको बाह्य आभ्यंतर सामग्री ज्यों थी त्यों ही छे परंतु रागादि अशुद्ध रूप विभाव परिणमन नहीं छे तिहिंते ज्ञानावरणादि कर्मको बंध न छे। ततः लोकः कर्म अस्तु न तत् परिस्पंदात्मकं कर्म्म अस्तु अस्मिन् तानि करणानि संतु च तत् चिदचित् आपादनं अस्तु ततः कहता तिहि कारण तहि, लोकः कर्म अस्तु कहता कार्मण वर्गणा करि भर्यो छे जो समस्त लोकाकाश सो तो ज्यों छे त्योंही रहो। च कहतां और, तत् परिस्पदात्मक अस्तु कहतां इसो छे जो आत्मप्रदेश कम्परूप मनोवचन कायके तीन योग ते फुनि ज्यों छे त्योंही रहो तथापि कर्मको बंध नहीं। क्यों हुवे संते, तस्मिन कहता रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणामको गए सते, तानि करणानि संतु कहता ते फुनि पांच इंद्रिय तथा मन मोड छे त्योंही रहो, च कहता और, तत चिदचित् व्यापादनं अस्तु कहता पूर्वोक्त चेतन अचेतनको घात ज्यों होइथो त्योंही रहो। तथापि शुद्ध परिणामके होतां कर्मको बंध न छे।

भावार्थ-यहा यह बताया है कि सम्यग्दृष्टी जीवके ऐसा कुछ शुद्ध आत्माका प्रकाश भीतर होजाता है कि वह मिथ्यादृष्टीकी तरह मनोवचन कायसे बाहरी क्रिया करता रहता भी व भोग भोगता भी बंधको नहीं प्राप्त होता। मिथ्यादृष्टी जब लिप्त रहता है तब सम्यग्दृष्टी जलमें कमलकी तरह अलिप्त रहता है। अनन्तानुबंधी व मिथ्यात्व कर्मके उदय न होनेसे न तो उनके मोह है न गाढ़ रागद्वेष है। इसीसे उसके संसारवर्द्धक बंध नहीं होता है। बाहरमे दिखता है कि रागी है परंतु वह भीतर वीतरागी है। जैसा तत्व० में कहा है-

[illegible] विकल्प [illegible] सन्तः । पिबन्ति क्लेशनाशाय जलं शैवालवर्जितम् ॥ [illegible] ॥

भावार्थ-ज्ञानी जैसे प्यास दूर करनेको जलके ऊपर आई हुई काईको हटाकर निर्मल जलका पान करता है उसी तरह सम्यग्दृष्टी जीव सर्व अशुद्ध विकल्पोंको हटाकर अपने आत्माका ध्यान करके स्वच्छ आनन्दामृतका पान करता है।

सवैया ३१ मा—[illegible] मादि, मन वच कायको [illegible] ॥ [illegible] पुरुषमें, विषै भोग [illegible] ॥ [illegible], [illegible] ॥ यातैं विचक्षण [illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] छन्द—तथापि न निरर्गलं चरितुमिष्यते ज्ञानिनां
तदायतनमेव सा किल निरर्गला व्यापृतिः ।

अकामकृतकर्म तन्मतमकारण ज्ञानिना
द्वय न हि विरुध्यते किमु करोति जानाति च ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तथापि ज्ञानिनां निरर्गलं चरितु न इष्यते-तथापि कहतां यद्यपि कार्मण वर्गणा, मनो वचन काय योग, पांच इन्द्रिय मन, जीवको घात इत्यादि बाह्य सामग्री कर्मबंधको कारण न छै। कर्मको बंधको कारण रागादि अशुद्धपनो छै, वस्तुको स्वरूप योंही छै तो पुनि, ज्ञानिनां कहतां शुद्ध स्वरूपको अनुभवनशील छे जे सम्यग्दृष्टि जीव त्याहको निरर्गल चरितु कहतां प्रमादी हो करि विषयभोग सेया तो सेया ही। जीवहको घात हुओ तो हुओ ही। मनो, वचन काय ज्यों प्रवर्ते त्यों ही इसी निरंकुश वृत्ति, न इष्यते कहतां जानि करि करतां हमको बंध नहीं छै। सो तो गणधरदेव नहीं मानहि छे। किया पै नहीं मानें छे। जिहिते सा निरर्गला व्यापृति किल तदायतन एव-सा कहतां पूर्वोक्त निरर्गला, व्यापृति कहता बुद्धिपूर्वक जानि करि अन्तरंग रुचि करि विषय कषायह विषै निरंकुशपने आचरण किल कहता निहचासों तदायतन एव कहतां अवश्य करि मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध भाव लीया छे, जिहिते कर्मबंधको कारण छे। भावार्थ इसो-जो इसी युक्तिका भाव मिथ्यादृष्टि जीवका होहि है सो मिथ्यादृष्टि कर्मको कर्ता छतो ही छे, जिहिते, ज्ञानिनां तत् अकामकृत कर्म अकारण मत-ज्ञानिनां कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहको, तत् कहतां जो कछु पूर्वबद्ध कर्मके उदै फैरे छे, अकामकृत् कर्म कहतां सो समस्त अवांछित क्रियारूप छे। जिहितें अकारण मत कहता कर्मबंधको कारण न छे। इसो गणधरदेव, मान्यो और योंही छे। कोई कस्मिं करोति जानाति च-करोति कहता कर्मके उदय करि होइ छे। जो भोग सामग्री सा हुई होनी अन्तरंग रुचि सुहाइ छे। इसो पुनि छे, जानाति च कहतां शुद्ध स्वरूपका अनुभवे छे समस्त कर्म जनित सामग्रीको हेय रूप जाने छे। इसो पुनि छे, इसो भाइ कै छे सा सुगे छ। जिहितें द्वय, किमु न हि विरुद्ध्यत-द्वय कहतां जाता पुनि वांछक पुनि इसी दोइ क्रिया, किमु नहि विरुद्धयते कहतां विरुद्ध नहीं कायो अपि तु सर्वथा विरुद्ध है।

भावार्थ-यहांपर इस बातको स्पष्ट कर दिया है कि कोई हो तो वास्तवमें मिथ्या *दृष्टि, और अपनेको सम्यग्दृष्टि मान ले, और यह समझ ले कि शास्त्रमें सम्यग्दृष्टिको* भोग भोगते हुए भी कनका बंध नहीं कहा है इसलिए मैं स्वच्छंद हो कर खूब भोग भोगूं मैं तो आप पाको भिन्न मानता हूं। मैं जीवका स्वभाव कर्ता भोक्ता नहीं है ऐसा समझता हूं, इससे मुझ कर्मका बंध नहीं होगा। जिस किसीके यह विपरीत बुद्धि होगी वह सम्यग्दृष्टी नहीं है मिथ्यादृष्टी ही है। सम्यग्दृष्टी भीतर निःकांक्षित अंग होना

भावार्थ—यह शरीरादि सर्व परद्रव्य है सो कर्माधीन है, कर्मके क्षयसे अवश्य नाश होजायगा। इसमें संशय नहीं है, ऐसा जानकर ज्ञानी इनके नाश होते हुए रंच मात्र भी शोक नहीं करते है।

सवैया ३१ सा—तिहू लोक माहि तिहू काल सब जीवनिको, पूरब करम उदै आय रस देत है॥ कोऊ दीरघायु धरै कोऊ अल्प आयु मरै, कोऊ दुखी कोऊ सुखी कोऊ समचेत है॥ याही मैं जियाऊं याहि मारूं, याहि सुखी करूं, याहि दुखी करूं ऐसे मूढ मान लेत है॥ याहि अहं बुद्धिसों न बिनसै भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम बन्ध हेत है॥ १५॥

वसन्ततिलका—अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य पश्यन्ति ये मरणजीवितदुःखसौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति॥७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ये परात परस्य मरणजीवितदुःखसौख्यं पश्यंति—ये कहता जे केई अज्ञानी जीवराशि, परात कहता अन्य जीवतहि, परस्य कहता अन्य जीवको, मरणजीवितदुःखसौख्य कहतां मरिवो जीवो दुःख सुख, पश्यंति कहता मानहि छे। कायोकरि। एतत् अज्ञानं अधिगम्य—एतत् अज्ञान कहतां मिथ्यात्वरूप अशुद्ध परिणाम, अधिगम्य इसो अशुद्धपनो पाइकरि। ते नियतं मिथ्यादृशः भवंति—ते कहता जे जीवराशि इसो मानहि छे, नियतं कहता निश्चांसो, मिथ्यादृशः भवति कहतां सर्वप्रकार मिथ्यादृष्टी राशि छे। किसो छे। अहंकृतिरसेन कर्माणि चिकीर्षवः—अहंकृति कहता हौं देव, हौं मानुष्य, हौं तीर्यंच, हौं नारक, हौं दुःखी, हौं सुखी। इसा कर्मजनित पर्याय तिहिविषै छे आत्मत्वबुद्धि। इसो रस कहतां मगनपनो तिहिकरि, कर्माणि कहता कर्मके उदै छे जावंत क्रिया, चिकीर्षव: कहतां हौं करौ छौ, मैं कीयो हौ, इसो करिस्यों इसो अज्ञानको लियो माने छे। और किसा छे। आत्महनः कहता आपणा घातनशील छे।

भावार्थ—यहां भी यही भाव है कि कर्मोदयको नहीं समझकर एकसे दूसरे जीवको सुख दुःख जीवन मरण मानते है वे मिथ्यादृष्टी आत्मघाती है क्योंकि वे कर्मजनित दशाको ही अपना स्वरूप मान लेते है इनको कभी भी अपने शुद्ध आत्माका अनुभव नहीं होता है।

[illegible] कहते है—

[illegible] ॥ ८० ॥

भावार्थ—[illegible] मिथ्यात्वभावमें परिणमता हुआ विपरीत तत्वको मानता है। [illegible]

सवैया ३१ सा—[illegible] ॥ १६ ॥

भावार्थ-अपने आत्माके यथार्थ स्वरूपको न समझकर जो कोई अज्ञानी रागद्वेषमय वर्तन करता है वह अपने मिथ्यात्व भावके कारणसे कर्मबंधको प्राप्त होता है-

चौपाई—मैं करता मैं कीन्ही कैसी। अब यों करो कहै जो ऐसी॥
ए विपरीत भाव है जामें। सो वरते मिथ्यात्व दशामें॥ २३॥

श्लोक-अनेनाध्यवसायेन निःफलेन विमोहितः।
तत्किञ्चनापि नैवाऽस्ति नात्माऽऽत्मानं करोति यत् ॥९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-आत्मा आत्मानं यत् न करोति तत् किंचन अपि न एव अस्ति-आत्मा कहतां मिथ्यादृष्टि जीव, आत्मान कहतां आपको, यत् न करोति कहता जिहि रूप न आस्वादै, तत् किंचन कहता इसो पर्याय इसो विकल्प, न एव अस्ति कहतां त्रैलोक्य माहिं छे ही नहीं। भावार्थ इसो जो-मिथ्यादृष्टी जीव जिसो पर्याय धरे जिस ही भावको परिणवे तेता समस्त आपो जानि अनुभवे, तिहितै कर्मको स्वरूप जीवके स्वरूपते भिन्न करि नहीं जानैं छे, एक रूप अनुभव करैं छे। अनेन अध्यवसायेन-कहतां इहिको मारुं, इहको जिवाऊं, यह मैं मार्‍यो, यह मैं जिवायो, यह मैं सुखी कीयो, यह मैं दुःखी कीयो इसा परिणाम करि, विमोहित' कहता गहलो हूओ छे; किसो छे परिणाम, निःफलेन कहता झूठो छे। भावार्थ इसो जो-यद्यपि मारिवा कहै छे, जिवाइवा कहे छे, तथा कर्मका उदयके हाथ छे। इहिका परिणामहको सारे न छे। यह आपणा अज्ञानपनाको लीयो अनेक झूठा विकल्प करैं छे।

भावार्थ-अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीवको शुद्ध आत्माका और कर्मोंके बन्ध, उदय, सत्ता आदिका भेद विदित नहीं है। इसलिये वह जिस शरीरको धरता है उसमें पूर्णपने मगन होजाता है। मैं देव, मैं नारकी, मैं पशु, मैं मनुष्य, ऐसा मानकर किसीको यदि उससे सुख पहुंचता है तो वह अहंकार कर लेता है मैंने सुखी किया। यदि किसीको दुख पहुंचता है तो यह अहंकार करता है, मैंने दुःखी किया। यदि कोई उसके निमित्तसे मर गया तो यह मद करता है कि मैंने इसको मार डाला। यदि कोई इसके निमित्तसे बच गया तो यह अहंकार करता है, मैंने बचा दिया। यदि रागद्वेष भाव कर्मोंके उदयसे होता है व अन्य कोई भी विभाव होता है उस सबको यह अपना ही भाव मान लेता है। तीन लोकमें जितने पर भाव हैं, व पर्याय हैं उन सबको यह अपना माना करता है। यही बावलेपनेकी चेष्टा इसके लिये घोर संसारका कारण है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

[illegible] ॥ ७८ ॥

भावार्थ—जो [illegible] पर्यायमें [illegible] जीव हैं वे नाना प्रकार कर्मोंको बांधकर संसारमें भ्रमण करते हैं—

तिहितै पर्यायको आपो करि अनुभवै छे इसा मिथ्यात्व भावके छूटता ज्ञानी भी सांचो साचरण भी सांचो ।

भावार्थ—ज्ञानी जीव वही है जिसके अंतरंगमें आतमा एकाकार शुद्ध झलकता है जो कर्मकृत अवस्थाओंको अपनी नहीं मानता है, जिसने मिथ्यात्व भावको जडसे उखाड़ डाला है। परमात्मा प्रकाशमें कहा है—

अप्पा माणुसु देउ णवि, अप्पा तिरिउ ण होइ। अप्पा णारउ कहिंवि णवि, णाणिउ जाणइ जोइ ॥९१॥

भावार्थ—यह आतमा निश्चयसे न तो मनुष्य है, न देव है, न पशु है, न नारकी है, ज्ञानी इस बातको पहचानता है।

अडिल्ल—सदा मोहसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो। मोह विकलता मानि मिथ्याती हो रह्यो॥
करे विकल्प अनन्त, अहमति धारिके। सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिके ॥ ३० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द- सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यग्निश्चयमेकमेव तदमी निःकम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम् ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अमी सन्तः निजे महिम्नि धृतिं किं न बध्नंति—अमी सन्त कहता सम्यग्दृष्टी जीवराशि, निजे महिम्नि कहतां आपणा शुद्ध चिद्रूप स्वरूप विषै, धृति कहतां स्थिरता रूप सुखको, किं न बध्नंति कहतां कायो न करहि छे। अपि तु सर्वथा करै छे किसो छे निज महिमा—शुद्धज्ञानघने—कहतां रागादि रहित इसो ज्ञान कहतां चेतनागुण तिहको घन कहता समूह छे। कायो करि, तत् सम्यग्निश्चयं आक्रम्य—तत कहता तिहि कारण तहि सम्यग्निश्चयं कहतां निर्विकल्प वस्तु मात्र तिहिको, आक्रम्य कहतां ज्यों छे त्यों अनुभव गोचर करि, किसो छे निश्चो एकं एव—कहता निर्विकल्प वस्तु मात्र छे निश्चयसों। और किसो छे, निःकम्पं—कहता सर्व उपाधि तहि रहित छे। यत सर्वत्र अध्यवसानं अखिलं एव त्याज्यं—यत कहतां जिहिकारण तहि, सर्वत्र अध्यवसानं कहतां हौं मारौं, हौं जिवाऊं, हौं दुखी करौं हौं सुखी करौं, हौं मनुष्य, इत्यादि छे जे मिथ्यात्वरूप अध्यवसान [illegible] मात्र परिणाम, अखिलं एव त्याज्यं कहतां समस्त परिणाम हेय छे, किसा छे परिणाम, जिनैः उक्तं—कहता परमेश्वर केवलज्ञान विराजमान त्यांको इसो कह्यो छे, [illegible] तत् मन्ये कहता तिहिको इसो मानों निखिलः अपि व्यवहारः त्याजितः एव—निखिल अपि कहतां जावंत छे, सत्य रूप अथवा असत्य रूप [illegible] शुद्ध स्वरूप मात्र नहि विपरीत जावंत मनोवचन कायके विकल्प, [illegible] सर्व [illegible] छोड्यो। भावार्थ इसो—जो पूर्वोक्त मिथ्या भाव तिहिके छूटे तिहि

समस्त व्यवहार छूट्यो । जिहिंते मिथ्यात्वके भाव तथा व्यवहारके भाव एक वस्तु छे । किसो छे व्यवहार, अन्याश्रय'—अन्य कहतां विपरीतपनो सोई छे, आश्रय कहतां अवलम्बन जिहिको इसो छे ।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि सम्यग्दृष्टी जीव अपने एक शुद्ध ज्ञान स्वरूप आत्मामें ही थिरता भजते हैं । वे सब ही पराश्रित भावोंको त्यागने योग्य समझकर उनसे ममता नहीं करते हैं । वास्तवमें वे परालम्बन रूप सर्व व्यवहारसे उदास हैं । व्यवहारमें रतिमात्र यही मिथ्यात्वभाव है । निज आत्मामें रमणभाव सो ही सम्यग्दर्शनभाव है । परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

अप्पा मिल्लिवि णाणियहं अण्णु ण सुन्दरु वत्थु । तेण ण विसयहं मणु रमइ जाणंतहं परमत्थु ॥२ ॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुषोंको आत्माको छोड़कर और कोई सुन्दर वस्तु नहीं दिखती है । इसीसे उनका मन परमार्थको जानते हुए विषयोंमें रमण नहीं करता है ।

सवैया ३१ सा—असंख्यात लोक परमान जे मिथ्यात भाव तेई व्यवहार भाव केवली उकत है ॥ जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यग्दरस भयो ते नियत लीन व्यवहारसौं मुकत है ॥ निरविकल्प निरुपाधि आतम समाधि साधि जे सुगुण मोक्ष पंथको ढुकत है ॥ तेई जीव परम दशामें थिर रूप ह्वैके धरममें धुके न करमसौं रुकत है ॥ २१ ॥

उपजाति छन्द—रागादयो बन्धनिदानमुक्तास्ते शुद्धचिन्मात्रमहोऽतिरिक्ताः ।
आत्मा परो वा किमु तन्निमित्तमिति प्रणुन्नाः पुनरेवमाहुः ॥ १२ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ—पुनः एवं आहुः—कहतां इसो कहै छे ग्रंथका कर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य, किसा छे । प्रणुन्नाः—कहतां इसी प्रश्नरूप नम्र होइ पूछे छे । किसो प्रश्न—ते रागादयः बन्धनिदानं उक्ताः—हो स्वामिन् ते रागादयः कहतां अशुद्ध चेतना रूप छे रागद्वेष मोह इत्यादि असंख्यात लोक मात्र विभाव परिणाम, बन्धनिदानं उक्ताः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मबंधको कारण छे । इसो कह्यो, सुण्यो, जाण्यो, मान्यो किसा छे ते भाव शुद्धचिन्मात्रमहोतिरिक्ताः—शुद्ध चिन्मात्र कहतां शुद्ध ज्ञान चेतना मात्र छे । इसो मह कहतां ज्योतिस्वरूप जीव वस्तु तिहिंते अतिरिक्ताः कहतां बाहिरा छे । सावन एक प्रश्न यहां करी छां । तन्निमित्तं आत्मा वा परः तन्निमित्त कहतां स्याद् रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणामहको कारण कौन छे आत्मा कहतां जीव द्रव्य कारण छे वा परः कहतां मोह कर्मरूप परिणयो छे । पुद्गल द्रव्यको पिंड सो कारण छे । इसा पूछ्यां होतां आचार्य उत्तर कहै छे ।

भावार्थ—यहां शिष्यने प्रश्न किया कि जब रागादिभाव आत्माके नहीं हैं तब इनका कारण कौन है । क्या यह पुद्गलके ही हैं ? इसका समाधान आगे है ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द- इत्यालोच्य विवेच्य तत्किल परद्रव्यं समग्रं बला-
त्तन्मूलां बहुभावसन्ततिमिमामुद्धर्तुकामः समम् ।
आत्मानं समुपैति निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम्
येनोन्मूलितबन्ध एष भगवानात्माऽऽत्मनि स्फूर्जति ॥ १९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एषः आत्मा आत्मनि समुपैति येन आत्मनि स्फूर्जति-एष. आत्मा कहता प्रत्यक्ष छे जो जीव द्रव्य, आत्मान समुपैति कहतां अनादिकालको स्वरूप तहि भ्रष्ट हूओ थो तथापि एने अनुक्रम आपणा स्वरूप कहु प्राप्त हूओ, येन कहता स्वरूपकी प्राप्ति करि, आत्मनि स्फूर्जति कहता परद्रव्यसो सम्बंध छूटयो, आपसो सम्बंध रह्यो, किसो छे उन्मूलितबंधः-उन्मूलित कहतां मूल सत्ता तहि दूर कियो छे, बंधः कहता ज्ञानावरणादि कर्मरूप पुद्गल द्रव्यको पिंड जेने इसो छे, और किसो छे, भगवान कहतां ज्ञान स्वरूप छे। किसो करि अनुभवे छे, निर्भरवहत्पूर्णैकसंविद्युतम-निर्भर कहता अनंत शक्तिको पुंजरूप छे, तिहिंन वहत् कहता निरंतरपनै परिणवै छे, इसो जो एक संवित् कहता विशुद्ध ज्ञान तिहकरि, युत कहता मिल्यो छे। इसो शुद्ध स्वरूपको अनुभवे छे। और किसो छे आत्मा, इमां बहुभावसंततिं समं उद्धर्तुकामः-इमां कहतां कह्यो छे स्वरूप जिहिको इसो छे बहु भाव कहता राग द्वेष मोह आदि अनेक प्रकार अशुद्ध परिणाम तिहिको, संततिम् कहता परंपरा तिहिको समं कहता एक ही काल, उद्धर्तुकाम. कहतां उखाड़ि दूर करिवाको छे अभिप्राय जिहिको इसो छे, किसो छे, भाव संतति, तन्मूलां कहतां परद्रव्यको स्वामित्वपनो छे मूल कारण जिहिको इसो छे, कायोकरि-किल बलात् तत समग्र परद्रव्यं इति आलोच्य विवेच्य-किल कहता निहचासों, बलात् कहता ज्ञानके बल करि, तत् कहतां द्रव्य कर्म भावकर्म नोकर्म रूप, समग्र परद्रव्य कहतां इसो छे जावंत पुद्गल द्रव्यकी विचित्र परिणति तिहिको, इति आलोच्य कहता पूर्वोक्त प्रकार विचारि करि, विवेच्य कहता शुद्ध ज्ञान स्वरूप तहि भिन्न कीयो छे। भावार्थ इसो-जो शुद्ध स्वरूप उपादेय छे, अन्य समस्त परद्रव्य हेय छे।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी ज्ञानी जीव अपने भेद ज्ञानके बलसे अपने आत्माके सिवाय सर्व परद्रव्योंसे व परभावोंसे मोह छोड़कर एक निज आत्माको ही पहचानकर उसीके अनुभवमें उसी लिये मगन होजाता है कि जिससे उसके भावोंके उत्पन्न होनेके मूल कारण [illegible] सम्बंध [illegible] होजाते हैं और तब यह भगवान आत्मा आप आपमें ही [illegible] है। [illegible] है—

[illegible]

और कार्यो कहतां हुयो होइ छे। कार्य बन्धं अधुना सद्य एव प्रणुद्य—कार्यं कहतां रागादि अशुद्ध परिणाम होतां होइ छे इसो, बन्धं कहतां धाराप्रवाहरूप होइ छे पुद्गल कर्मको बंध तिहिको, अधुना सद्य एव कहतां जेनैकाल रागादि मिट्यातैही काल, प्रणुद्य कहतां मेटि करि, किसो छे बंध, द्विविधं—कहतां ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि असंख्यात लोक मात्र छे। कोई वितर्क करिसे जो इसो तो द्रव्यरूप छतो ही छे। तथापि प्रगटरूप बंधके दूरि करतां हूओ।

भावार्थ—ज्ञानी जीवके भीतर रागादि दोष नष्ट भए तब उनका कार्यबंध भी नष्ट हुआ तब ज्ञानमई ज्योति जैसीकी तैसी अनुभवमें भले प्रकार आगई। यही अनुभूति आत्माके सर्व बंधको काटकर उसको पूर्ण ज्ञानानंदमय कर देती है- अतएव स्वात्मानुभव करना ही परम हित है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पि अप्पउ जो जि। दसणु णाणु चरित्तु जिउ, मुक्खहं कारणु सो जि ॥१३८॥

भावार्थ—जो आत्मासे आत्माको देखता जानता व अनुभवता है वह रत्नत्रयमई जीव मोक्षका कारण होजाता है।

सवैया ३१ सा—जैसे कोउ मनुष्य अजान महा बलवान, खोदि मूल वृक्षको उखारे गहि बाहुसों ॥ तैसे मतिमान द्रव्यकर्म भावकर्म त्यागि, व्है रहे अतीत मति ज्ञानकी दशाहुसों ॥ याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे जोति केवल प्रधान सविताहुसों ॥ चूके न शकतिसों लुके न पुद्गल माहि, धुके मोक्ष थलको रुके न फिरि काहुसों ॥ ५७ ॥

दोहा—बंधद्वार पूरण भयो, जो दुख दोष निदान। अब वरणूं संक्षेपसे, मोक्षद्वार सुखथान ॥५८॥

इतिश्री नाटक समयसार राजमल्लि टीकाको बंधद्वार समाप्त। बंधो निस्तमितः। अथ प्रविशति मोक्ष।

नवमां मोक्ष अधिकार।

शिखरिणी छंद—द्विधाकृत्य प्रज्ञाक्रकचदलनाद्बन्धपुरुषौ
नयन्मोक्षं साक्षात्पुरुषमुपलम्भैकनियतं।
इदानीमुन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं
परं पूर्णं ज्ञानं कृतसकलकृत्यं विजयते ॥१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—इदानीं—कहतां इहां तहि लेइ करि, पूर्णं ज्ञानं—समस्त आवरणको विनाश होतां होइ छे शुद्ध वस्तु प्रकाश, विजयते कहतां आगामि अनंतकाल पर्यंत तेहीरूप रहे छे। अन्यथा नहीं होइ छे, किसो छे शुद्ध ज्ञान, कृतसकलकृत्यं—कृत कहतां कीनो छे, सकलकृत्यं कहतां करिवा योग्य थो जो समस्त कर्मको विनाश जेने तैसे इसो छे, और किसो छे, उन्मज्जत्सहजपरमानन्दसरसं—उन्मज्जत् कह

अनादिकाल तहिं गयो थो सो प्रगट हुओ छे। इसो सहज परमानन्द कहता द्रव्यके स्वभाव तहिं परिणम्‍‍‍‍‍यो छे, अनाकुलत्व लक्षण अतींद्रिय सुख तिहिं करि सास कहता संयुक्त छे। भावार्थ इसो–जो मोक्षको फल अतींद्रिय सुख छे। कायो करता ज्ञान प्रगट होइ छे। पुण्य साक्षात् मोक्ष नयत्–पुन्य कहतां सकल कर्मको विनाश होता शुद्धत्व अवस्थाको प्रगटपनो तिहिको, नयत् कहतां परिणमावतो होतो। भावार्थ इसो–जो इहां तहिं आरम्भ करि सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्षको स्वरूप निरूपीजै छे। और किसो छे, पर कहता उत्कृष्ट छे और किसो छे, उपलंभैकनियत कहता एक निश्चय स्वभावको प्राप्त छे, कायो करता आत्मा मुक्ति होइ। बंधपुरुषौ द्विधा कृत्य–बंध कहता द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मकी उपाधि, पुरुष कहतां शुद्ध जीवद्रव्य तिहिको, द्विधा कृत्य कहता सर्व बंध हेय, शुद्ध जीव उपादेय इसा भेदज्ञान प्रतीति उपजाइ करि इसी प्रतीति ज्यों उपजै छे त्यों कहिये छे। प्रज्ञा क्रकचदलनात्–प्रज्ञा कहता शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य, अशुद्ध रागादि उपाधि बंध इसी भेदज्ञान रूपी बुद्धि इसी छे क्रकच कहता करौत तिहिको दलनात् कहता निरंतरपने अनुभवको अभ्यास करता। भावार्थ इसो जो–यथा करोत के वारवार चालता करता पुद्गलवस्तु काठ इत्यादि दोइ खंड होइ छे तथा भेदज्ञान करि जीव पुद्गलको वार २ भिन्न २ अनुभवता भिन्न २ होइ छे तिहिते भेदज्ञान उपादेय छे।

भावार्थ–मोक्षका उपाय यह है कि भेदज्ञानका वारवार अभ्यास करके द्रव्यकर्मादिसे भिन्न आत्माका वारवार अनुभव किया जावे। स्वात्मानुभवमे ही कर्मकी निर्जरा होती है। मोक्ष एक परम उत्कृष्ट आत्माकी अवस्था है जहां नित्य परमानन्द रहता है व पूर्ण ज्ञान रहता है तथा इसका कभी नाश नहीं होता है। उसका उपाय उसीका अनुभव है।

परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जो परमप्पा णाणमउ, सो हउं देउ अणंतु। जो हउं सो परमप्पु पर एहउ भावि णिभंतु॥२६॥

भावार्थ–जो अनन्त ज्ञानमई परमात्मा देव है सोही मैं हूं व जो मैं हूं सोही परमात्मा है इसीकी भावना सन्देह रहित होकर कर।

सवैया ३१ सा—भेदज्ञान आरासौं दुफारा करे ज्ञानी जीव आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरे॥ अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै करम भरमको खजानो खालि खरचे॥ योंही मोक्ष मग धावै केवल निकट आवै पूरण समाधि लहै परमको परचे। भयो निरदौर याहि करनो न कछु और ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसि अरचे॥१॥

स्रग्धरा छंद–प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः

सूक्ष्मेऽन्तःसंधिबंधे निपतति रभसादात्मकर्मोभयस्य।

आत्मानं मग्नमन्तःस्थिरविशदलसद्धाम्नि चैतन्यपूरे
बन्धं चाज्ञानभावे नियमितमभितः कुर्वती भिन्नभिन्नौ ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो—जीवद्रव्य तथा कर्मपर्यायरूप परिणयो छे पुद्गलद्रव्यको पिंड त्याहि दुवेको एक बंध पर्यायरूप सम्बन्ध अनादितहि चल्यो आयो छे। सो इसो सम्बन्ध यदा चूके जीवद्रव्य आपणा शुद्ध स्वरूप परिणवै अनंत चतुष्टय रूप परिणवे तथा पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्म पर्याय कहु छोड़े जीवका प्रदेशइ तहि सर्वथा अबंध रूप होइ सम्बन्ध चूके। जीव पुद्गल दूवे भिन्न २ होहि तिहिको नाम मोक्ष इसो कहिजे। तिहि भिन्न २ होवाको कारण इसो जो मोह राग द्वेष इत्यादि विभावरूप अशुद्ध परणतिके मिटता जीवको शुद्धत्वरूप परिणमन, तिहिको व्यौरो—इसो जो शुद्धत्व परिणमन सर्वथा सकल कर्मका क्षय करिवाको कारण छे। इसो शुद्धत्व परिणमन सर्वथा द्रव्यको परिणमन रूप छे, निर्विकल्प रूप छे, तिहितै वचन करि कहिवाको समर्थपनो नहीं छे, तिहितै इसो करि कहिजे छे। जो जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभवरूप परिणवे छे ज्ञान गुण सो मोक्षका कारण छे। तिहिको समाधान इसो जो शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप छे जो ज्ञान सो जीवको शुद्धत्व परिणमनको सर्वथा लीया छे, जिहिको शुद्धत्व परिणमन होइ तिहि जीवको शुद्ध स्वरूपको अनुभव अवश्य होइ धोखो नहीं, अन्यथा सर्वथा प्रकार अनुभव न होइ। तिहितै शुद्ध स्वरूपको अनुभव मोक्षका कारण छे। इहां अनेक प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव नानाप्रकार विकल्प करै छे त्यांहको समाधान कीजे छे। केई कहै छे जो जीवको स्वरूप बंधको स्वरूप जान्यो होतो मोक्षमार्ग छे, केई कहै छे जो बंधको स्वरूप जानि करि इसो चितवन कीजे जु बंध कब मिटे क्यों मिटे इसी चिंता मोक्षका कारण छे इसो कहे छे ते जीव झूठा छे मिथ्यादृष्टि छे। मोक्षको कारण ज्यों कहिजे छे त्यों छे—इयं प्रज्ञाछेत्री आत्मकर्मोभयस्य अंतःसंधिबंधे निपतति इयं कहता वस्तु स्वरूप छता छे, प्रज्ञा कहता आत्माको शुद्ध स्वरूप अनुभव समर्थ इसिका परिणवे छे, जीवको ज्ञान गुण सोई छे. छेत्री कहता छैनी, भावार्थ इसो जो—सामान्यतै जे ज्यों वस्तु भानि दोइ कीजे छे, सो छैनी करि भानिजे छे। इहां फुनि जीव कर्म भानि दोइ कीजे छे तिहिको दोइ भानिवाको स्वरूप अनुभव समर्थ ज्ञानरूप छैनी छे। [illegible] सो दूसरो कारण न हुओ न होइसी। इसी प्रज्ञाछैनी ज्यों भानि दोइ करै छे सो कहिजे छे, आत्मकर्मोभयस्य-आत्मा कहता चेतना मात्र, द्रव्य कर्म कहता पुद्गल [illegible] अशुद्ध परिणति इसो छे, उभयस्य कहता दोइ वस्तु तिहिके [illegible] कहता [illegible] छे अबतांतिम [illegible] छे, अशुद्धत्व विभाव

परिणवो छे तथापि माहोमांहे संधि छे निसंधि नहीं हुवा छे, दोय द्रव्यको एक द्रव्य रूप नहीं हुओ छै। इसो छै वधे कहता ज्ञान छैनी पैठ वाकी ठौर तिहि विषै, निपतति कहता ज्ञान छैनी पैठे छे, पैठा होनी भांति करि भिन्न भिन्न करहि छै। किसो छे प्रज्ञा छैनी। शिता-कहतां ज्ञानावर्णी कर्मको क्षयोपशम होता मिथ्यात्व कर्मको नाश होता शुद्ध चैतन्य स्वरूप विषै अत्यंत पैठन समर्थ छे। भावार्थ इसो-जो यथा यद्यपि लोहसार छैनी अति पैनी होइ छे तो पुनि संधि विचारि दीनी होती भांति दोइ करै छे तथा यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीवको ज्ञान अत्यंत तीक्ष्ण छे तथापि जीव कर्मकी छे जो माहे संधि तिहि विषै प्रवेश करने सने प्रथम तो बुद्धिगोचर भांति दोइ करै छे। पछै सकल कर्म क्षय हुवा थकी साश्वत भांति२ करै छै। किधो जे जीवकर्मको संधि बंध, सूक्ष्मे कहता अति ही दुर्लभ संधि छे, तिहिको व्यौरो इसो-जो द्रव्य कर्म छे ज्ञानावरणादि, पुद्गलको पिंड यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छे तिहि सों तो जीव तहे भिन्नपनाकी प्रतीति विचारतां उपजै छे। जिहितै द्रव्य कर्म पुद्गल पिंड रूप छे। यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छे तथापि भिन्न भिन्न प्रदेश छे अचेतन छे, बंधै छ, छूटै छे। इसो विचारता भिन्नपनाकी प्रतीति उपजै छे। नोकर्म छे शरीर मनो वचन त्याहसो पुनि ऐसे प्रकार विचारता भेद प्रतीति उपजै छे। भावकर्म कहता मोह राग द्वेषरूप अशुद्ध चेतनारूप परिणाम ते अशुद्ध परिणाम सावत जीव सो एक परिणमनरूप छे। तथा अशुद्ध परिणाम हू सावत जीव व्याप्य व्यापक रूप परिणवे छे। तिहिन त्याह परिणामह सो जीव तहि भिन्नपनाको अनुभव कठिन छे। तथापि सूक्ष्म संधिक भेद पारतो भिन्न प्रतीति होइ छे। तिहिको विचार इसो जो यथा स्फटिकमणि स्वरूप करि स्वच्छता मात्र वस्तु छे। राती पीरी कारी बुरीके संयोग पावायकी रातो पीरो कारो ऐसे रूप स्फटिकमणि झलकै छे सांवत स्वरूपक विचारता स्वच्छता मात्र भूमिका स्फटिकमणि वस्तु छे। तिहिविषै रातो पीरो कारो पनो पर संयोगकी उपाधि छे। स्फटिकमणिको स्वभाव गुण नहीं छै। तथा जीवद्रव्यको स्वच्छ चेतना मात्र स्वभाव छे, अनादि संतानरूप मोहकर्मके उदयथकी मोह रागद्वेषरूप रंजक अशुद्ध चेतना रूप परिणवै छे। तथापि सांवत स्वरूपक विचारता चेतना भूमि मात्र तो जीव वस्तु छे। तिहि विषै मोह रागद्वेष रूप रंजकपनो कर्मकी उदयकी उपाधि छ। वस्तुको स्वभाव गुण नहीं छे। यो करि विचारतां भेद भिन्न प्रतीति उपजै छे, अनुभव गोचर छ। कोई प्रश्न करै छे जो कतकाल, मांहि प्रज्ञा छैनी पडै छे, भिन्न भिन्न करै छे। उत्तर इसो, रभसात् कहता अति सूक्ष्मकाल एक समय मांह परै छे, तेही काल भिन्न२ करै छे, किसी छे प्रज्ञा छैनी। निपुणै कथमपि पातिता-निपुणै कहतां आत्मानुभव विषै प्रवीण छे जे सम्य

दृष्टि जीव त्यांह करि, कथमपि कहता संसारको निकटपनो इसो काल लब्धि पाया थकी, पातिता कहतां स्वरूप विषै पैसारी होती पैसे छे। भावार्थ इसो—जो भेदविज्ञान बुद्धिपूर्वक विकल्परूप छे, ग्राह्य ग्राहकरूप छे, शुद्ध स्वरूपकी नाई निर्विकल्प नहीं छे। तिहितैं उपाय रूप छे, किसा छे सम्यग्दृष्टि जीव, सावधानैः कहता जीवको स्वरूप कर्मको स्वरूप तिहिको भिन्नर विचार विषै जागरूक छे, प्रमादी नहीं छे, किसी छै प्रज्ञा छैनी, अमितः भिन्नभिन्नौ कुर्वती अमितः कहता सर्वथा प्रकार, भिन्नभिन्नौ कुर्वती कहता जीवको कर्मको जूदा जूदा करै छे—भिन्न भिन्न करे छे त्यो कहिजे छे-चैतन्यपूरे आत्मानं मग्नं कुर्वती अज्ञानभावे बंधं नियमितं कुर्वती-चैतन्य कहता स्वपर स्वरूप ग्राहक इसो प्रकाश गुण तिहिको, पूरे कहता त्रिकालगोचर प्रवाह तिहि विषै, आत्मानं कहता जीव द्रव्य तिहिको, मग्न कुर्वती कहता एक वस्तु रूप इसो साधे छे। भावार्थ इसो जो—शुद्धचेतना मात्र जीवको स्वरूप इसो अनुभवगोचर आवे छे। अज्ञानभावे कहता रागादिपनो तिहि विषै नियमित बंध कुर्वती कहता नियमसे बन्धको स्वभाव इसो साधे छे। भावार्थ इसो जो—रागादि अशुद्धपनो कर्मबन्धकी उपाधि छे, जीवको स्वरूप नहीं छे इसो अनुभवगोचर आवे छे। किसो छे चैतन्यपूर, अंतः कहतां सर्व असंख्यात प्रदेश विषै एक स्वरूप इसो छे। स्थिर कहता सर्व काल शाश्वतो छे, विशद कहता सर्वकाल शुद्ध स्वरूप इसो छे, लसत् कहतां सर्वकाल प्रत्यक्ष इसो छे, धाम्नि कहतां केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुंज जिहिको इसो छे।

भावार्थ—भेद विज्ञानके द्वारा सम्यग्दृष्टि पुरुष अपने आत्म स्वरूपको सर्व द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्मसे भिन्न प्रतीतिमें लाकर सर्व अन्य भावोंको छोड़कर एक निज स्वरूपको ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् स्वात्मानुभवमें लीन होजाते हैं, यही मोक्षका उपाय है। मात्र जाननेसे ही काम नहीं चलेगा। पुरुषार्थ करके स्वानुभवके अभ्यासकी जरूरत है। आग-महाग्रन्थमें कहा है-

[illegible] ॥८४॥

भावार्थ—[illegible] उत्कट बनानेपर व सर्व इंद्रियके व्यापारोंको नष्ट कर [illegible] आपने स्वभावमें तन्मय होता है तब वह परमात्मा स्वरूप होजाता है।

सवैया [illegible] [illegible], [illegible] बुद्धि [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] होती है [illegible] [illegible] होती है। [illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible]

सवैया [illegible]

भेद वचनकरि उपजाया होता उपजै छे, तदा भिद्यतां कहतां तो वचनमात्र भेद होहु। परतु चिति भावे कहतां चैतन्य सत्ता विषै तो काचन भिदा न कहतां कोई भेद न छे। निर्विकल्प मात्र चैतन्य वस्तुको सत्व छे, किसो छे चैतन्यभाव, विभौ कहतां आपणा स्वरूपको आपन शीली छे, और किसो छे, विशुद्धं कहतां सर्व कर्मकी उपाधि तहि रहित छे।

भावार्थ-जिम ज्ञानीको स्वात्मानुभव होता है वह एकरूप अभेद निज आत्माको उसके शुद्ध लक्षणको ग्रहण कर अनुभव करता है। उसके अनुभवमें द्रव्य कर्म व भावकर्म, व नोकर्मसे तो भिन्नता दीखती ही है। इसके सिवाय जितने विकल्प आत्माके सम्बन्धमें भी व्यवहारमें वचन द्वारा कहे जाते है कि यह अमुक२ स्वभाव व अमुक२ गुणका धारी है सो भी नहीं उठते हैं। शुद्ध ज्ञान चेतनारूप ही स्वानुभव होता है।

आराधनासारमें कहते हैं—

विसयकसायरहिओ णाणसहावेण भाविओ संतो। लीलइ अप्पसहावे तक्काले मोक्खसुहरूवे सो ॥२७॥

भावार्थ-जिस समय स्वात्मानुभव होता है तब यह मन इन्द्रिय विषयोंके आलम्बनसे रहित हो ज्ञान स्वभावकी भावना करता करता मोक्ष सुखमई आत्माके स्वभावमें बिलकुल लीन जाता है या तन्मय होजाता है।

सवैया ३१ सा—कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें, लक्षण विभेद भिन्न करमको जाल है ॥ जाने आप आपकोजु आपकरी आपविषै, उतपति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥ सारे विकलप मोसो न्यारे सरवथा मेरे, निश्चय स्वभाव यह व्यवहार चाल है ॥ मेरो शुद्ध चेतन अनन्त चिन्मुद्रा धारि, प्रभुता हमारि एकरूप तीहू काल है ॥ ८ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद्दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजे-
　　　　त्तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत् ।
　　　　तत्त्यागे जडता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
　　　　दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित् ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तेन चित् नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु-तेन कहतां तिहि कारण तहि, चित् कहता चेतना मात्र सत्ता नियत कहता अवश्य करि, दृग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु कहतां दर्शन इसो नाम, ज्ञान इसो नाम, दोइ नाम संज्ञा करि उपदेश होहु। भावार्थ इसो जो—शुद्ध सत्वरूप चेतना तिहिका नाम दोइ। एक तो दर्शन इसो नाम, दूजो ज्ञान इसो नाम, इसो भेद होइ छै सो होइ विरुद्ध तो कांई न छै। इसा अर्थको दृढ करै छै। यदि जगति चेतना अद्वैता अपि तत् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत् सा अस्तित्वं एव त्यजेत्—[illegible] [illegible], जगति कहता [illegible] जीवद्रव्य विषै प्रगट छै, चेतना कहता स्वपर [illegible] [illegible] [illegible], अद्वैता [illegible] कहता [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] दृग्ज्ञप्तिरूप त्यजेत् कहता

दर्शनरूप चेतना, ज्ञानरूप चेतना इसा दोइ नाम कहु छोड़े तो तीन दोष उपजे एक दोषपर, सा अस्तित्व एव त्यजेत्-कहता आपणा सत्वको अवश्य छाड़े। भावार्थ इसो-जो चेतना सत्व न छै। इसो भाव पाइये, किसा थकी। सामान्यविशेषरूपविरहात्-सामान्य कहता सत्ता मात्र, विशेष कहता पर्यायरूप तिहिके, विरहात् कहता रहित पना थकी। भावार्थ इसो-जो यथा समस्त जीवादि वस्तु सत्वरूप छै सोई सत्व पर्यायरूप छै। तथा चेतना अनादि निधन सत्ता स्वरूप वस्तु मात्र निर्विकल्प छै। तिहिते चेतनाको दर्शन इसो नाम कहिये छै। जिहिते समस्त ज्ञेय वस्तुको ग्रहै छै, जिसे तिसे ज्ञेयाकार परिणवे छै। तिहिते चेतनाको ज्ञान इसो नाम छै। इसी दोइ अवस्थाको छोड़तो चेतना वस्तु नहीं छै। इसी प्रतीति उपजे। इहा कोइ आशंका करिसे जो चेतना नहीं तो नहीं लाभो। जीव द्रव्य तो छतो छै-उत्तर इसो जो चेतना मात्र करि जीव द्रव्य साध्यो छै। तिहिते चेतनाबिन सिद्ध होतां, जीव द्रव्य पुनि सधिसै नहीं अथवा जो सधिसे तो पुद्गल द्रव्यकी नाई अचेतन सधिसे चेतन नहीं सधिसे। इसो अर्थ कहिये छ-दूजो दोष इसो, तत्त्याग चितः अपि जड़ता भवति तत्त्याग कहता चेतनाको अभाव होता, चित अपि कहता जीव द्रव्यको पुनि, जड़ता भवति कहतां पुद्गल द्रव्यकी नाई जीव द्रव्य पुनि अचेतन छै। इसी प्रतीति उपजे छै। च कहता ही जो दोष इसो सा-व्यापकात् विना व्याप्य आत्मा अन्त उपैति-व्यापकात् विना कहता चेतना गुणके अभाव होता, व्याप्य आत्मा कहता चेतना गुण मात्र छै जो जीव द्रव्य, अन्त उपैति कहता मूल नहि जीव द्रव्य न छै। इसी प्रतीति पुनि उपजे इसा तीन दोष मोटा दोष छै। त्या दोषको थकी जो कोई भय करै छै, सो इसो मानिज्यो जो चेतना दर्शन ज्ञान इसो दोइ नाम सञ्ज्ञा विराजमान छै। इसो अनुभव सम्यक्त छै।

भावार्थ-यहा यह बताया है कि सब वस्तु सत्ता सामान्य विशेष रूप है, चेतना सबको जानने देखनेवाली है। सामान्य निर्विकल्प ग्रहण होनेसे चेतना दर्शनरूप है। विशेष ज्ञेयाकार ग्रहण होनेसे चेतना ज्ञानरूप है। यदि दर्शन या ज्ञानरूप उभयरूप चेतना न होवे तो चेतनाकी सत्ता सिद्ध न हो। एक दोष यह आवे। दूसरा दोष यह हो कि चेतना विना जीव जड़ पुद्गल होजावे। तीसरा दोष यह हो कि जीवका नाश ही होजावे। सो ऐसा कभी नहीं होसक्ता, इससे दर्शन ज्ञानमई चेतना है। वह एकरूप होकर भी उभयरूप है। ऐसा ही वस्तुका स्वरूप है व ऐसा ही मानना सम्यक्त है।

सवैया ३१ सा—निराकार चेतना कहावै दर्शन गुण साकार चेतना शुद्ध गुण ज्ञान सार है॥ चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरब माहि सामान्य विशेष सत्ताहीको विस्तार है॥ कोउ कहै चेतना चिह्न नाहीं आतमामें, चेतनाके नाश होत त्रिविध विकार है॥ लक्षणको नाश सत्ता नाश मूल वस्तु नाश तातें जीव दरबको चेतना आधार है॥ ॥

दोहा—चेतना लक्षण आतमा, आतम सत्ता माहि। सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहमें नाहि ॥१०॥

सवैया २३ सा—ज्यों कलधौत सुनारकी संगति, भूषण नाम कहै सब कोई ॥ कंचनता न मिटी तिहि हेतु, वहे फिरि औटिके कंचन होई ॥ त्यों यह जीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप हुवो नहि दोई ॥ चेतनता न गई कबहूं तिहि, कारण ब्रह्म कहावत सोई ॥ ११ ॥

सवैया २३ सा—देख सखी यह ब्रह्म विराजत, याकी दशा सब याहिको सोहे ॥ एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद लिये दुविधा महि दो है ॥ आप संभारि लखे अपनो पद, आप विसारिके आपहि मोहे ॥ व्यापकरूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कौन अज्ञानमें को है ॥ १२ ॥

सवैया २३ सा—ज्यों नट एक धरे बहु भेष, कला प्रगटे जग कौतुक देखे ॥ आप लखे अपनी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत पेखे ॥ त्यों घटमें नट चेतन राव, विभाव दशा धरि रूप विसेखे ॥ खोलि सुदृष्टि लखे अपनो पद, दुंद विचार दशा नहि लेखे ॥ १३ ॥

उपजाति छंद—एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम् ।

ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—चितः चिन्मयः भावः एव—चितः कहतां जीवद्रव्यको चिन्मयः कहता चेतना मात्र इसो भावः कहता स्वभाव छे। एव कहतां निहचासों योही छे, अन्यथा नहीं छे। किसो छे चेतना मात्र भाव, एकः कहतां निर्विकल्प छे, निर्भेद छे, सर्वथा शुद्ध छे। किल ये परे भावा ते परेषां—किल कहता निहचासो, ये परे भावाः कहतां शुद्ध चैतन्य स्वरूप तिन भिन्ना छे जे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म संबन्धी परिणाम, ते परेषां कहतां सो समस्त पुद्गल कर्मका छे जीवका नहीं छे। ततः चिन्मयः भावः ग्राह्यः एव परे भावाः सर्वतः हेया एव—ततः कहतां तिहि कारणतहि, चिन्मयः भावः कहतां शुद्ध चेतनामात्र छे जो स्वभाव जीवको स्वरूप छे, ग्राह्यः एव कहता इसो अनुभव करिवा योग्य छे, परे भावाः कहता इहिसो तिनि भिन्ना छे जे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म स्वभाव, सर्वतः हेया एव कहता सर्वथा प्रकार जीवको स्वरूप नहीं छे इसो अनुभव करिवाको योग्य छे। इसो अनुभव सम्यक्त छे। स्वरूपगुण मोक्षको कारण छे।

भावार्थ यहां बताया है कि जो भव्यजीव अपने स्वाधीन स्वभावरूप मोक्षको प्राप्त करना चाहें उनको उचित है कि अपने शुद्ध चैतन्यमई स्वभावका ही अनुभव करें। अन्य सर्व रागादि भाव रूप अनुभव नहीं करें। क्योंकि ये परभाव पुद्गलरूप हैं, जीवके निज स्वभाव नहीं हैं। आगे कलशमें कहा है—

जत्थ ण झाणं झेयं झायारो णेव चिंतणं किंपि णय धारणा वियप्पो तं सुण्ण सुट्ठु भाविज्ज ॥७८॥

भावार्थ—जहां न ध्यान, ध्येय व ध्याताके विकल्प हैं न कोई चिंतना ही है न कोई धारणा है न कोई विकल्प है वही परसे शून्य आतमभाव है उसका ही अनुभव करना योग्य है।

सवैया २३ सा—चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ॥ राग विरोध विमोह दशा, समझै भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥ भोग संयोग वियोग व्यथा, अवलोकि कहै यह कर्मजु घेरो ॥ है जिन्हको अनुभौ इह भांति, सदा तिनको परमारथ नेरो ॥ १६ ॥

श्लोक—परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अपराधवान्—कहतां शुद्ध चिद्रूप अनुभव स्वरूप तहि भ्रष्ट छे जो जीव बध्येत-कहता ज्ञानावरणादि कर्मइ करि बांधिजै छे, किसो छे। परद्रव्य ग्रहं कुर्वन्—परद्रव्य कहता शरीर मनो वचन, रागादि अशुद्ध परिणाम तिहिको, ग्रहं कहता आत्म बुद्धिरूप स्वामित्व कहु, कुर्वन् कहता करतो होतो। अनपराधः मुनि न बध्येत-अनपराध कहतां कर्मके उदयको भाव आत्माको जानि नाहीं अनुभवै छे। इसो छे जो, मुनि कहतां परद्रव्य तहि विरक्त सम्यग्दृष्टी जीव, न बध्येत कहतां ज्ञानावरणादि कर्म पिंड करि नहीं बांधिजै छे। भावार्थ इसो—जो यथा कोई चोर परद्रव्य चुरावै छे, गुणहगार होइ छे। गुणहगार थको बांधिजे छे, तथा मिथ्यादृष्टी जीव परद्रव्य रूप छे द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म त्याहको आपो जानि अनुभवै छे, शुद्ध स्वरूप अनुभव तहि भ्रष्ट छे। परमार्थ बुद्धि विचारता गुणहगार छे। ज्ञानावरणादि कर्मको बंध छे। सम्यग्दृष्टी जीव इसा भाव तहि रहित छे। किसा छे सम्यग्दृष्टी जीव—स्वद्रव्ये संवृतः-कहतां अपने आतम द्रव्यके वि मगन रूप छे। अर्थात् आत्मा माहि मगन छे।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी ज्ञानी स्वद्रव्यको अपना व परद्रव्य रागादिको कर्मका स्वरूप जानता है। वह परमाणु मात्र भी परद्रव्यको अपनाता नहीं, इससे वह अपराधी नहीं होता और कर्मोंसे नहीं बांधा जाता। जब कि मिथ्यादृष्टी अपने शुद्ध द्रव्य स्वरूपको भूलकर पुद्गल रागादि भावोंको अपना ही स्वरूप मानकर व धन धान्यादिका मैं स्वामी हूं ऐसा अहंकार करके अपराधी होता है और कर्मोंसे बांधा जाता है। इष्टोपदेशमें कहते हैं—

[illegible] ॥

भावार्थ—जो कोई पर द्रव्यको अपनाता है उसका सम्बंध वह पुद्गल कर्मोंसे [illegible] होता है। अर्थात् वह अपराधी कर्मोंसे बंधा हुआ [illegible] है।

अशुद्धपना तहि भिन्न शुद्ध चिद्रूप मात्र इसो जीव द्रव्य तिहिको सेवी कहतां अनुभव विराजमान छै सम्यग्दृष्टी जीव, निरपराधः भवति कहतां समस्त अपराध तहि रहित है, तिहितें कर्मको बन्धक न होइ।

भावार्थ-मिथ्यादृष्टी जीव सदा ही अपने आत्माको अशुद्ध रूप ही अनुभव करता है। मैं देव, मैं नारकी, मैं पशु, मैं मनुष्य, मैं रागी, मैं क्रोधी, मैं परोपकारी, मैं बड़ा, मैं दीन, मैं तपस्वी। इस तरह पर कृत भावोंको व अवस्थाओंको अपनी मानता है। इसलिये वह अपराधी होता हुआ निरंतर कर्मोंको बांधता है। सम्यग्दृष्टी जीव कभी भी पररूप अपने आत्माको अनुभव नहीं करता है। किन्तु जैसा उसका स्वभाव है वैसा ही उसको मानकर उसे शुद्ध स्वरूप ही अनुभव करता है। इसलिये वह अपराधी न होता हुआ कर्मोंसे नहीं बंधता है। योगसारमें कहते हैं—

जो णवि जाणइ अप्प पर णवि परभाउ चएइ। सो जाणउ सत्थइ सयलु ण हु सिवसुक्खु लहेवि ॥९५॥

भावार्थ-जो अपने आत्मा व परके भेदको नहीं पहचानता है व परभावोंका त्याग नहीं करता है वह अनेक शास्त्रोंको पढ़कर भी मोक्षके आनंदको अनुभव नहीं करता है।

दोहा—जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव। रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥२५॥

[illegible] मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध। परको माने आतमा, करै करमको बंध ॥२६॥

झूठी करनी आचरै, झूठे सुखकी आस। झूठी भगती हिय धरै, झूठो प्रभुको दास ॥२७॥

सवैया ३१ सा—माटी भूमि सैलकी सो संपदा बखानै निज, कर्ममें अमृत जानै ग्यानमें जहर है। अपना न रूप गहै औरहीसौं आपा कहै, साता तो समाधि जाके असाता कहर है। कोपको कृपान लिये मान मद पान कियें, मायाकी मरोर हिये लोभकी लहर है। याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं, सांचसौं विमुख भयो झूठमें बहर है ॥ २७ ॥

सवैया ३१ सा—तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है। तासों कहै यह मेरो दिन यह मेरी राति, यह मेरी घरी यह मेरोही पहर है ॥ खेहको खजानो जोरै तासौं कहै मेरो गेह, जहां बसै तासौं कहै मेरो ही सहर है। याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतिसौं, सांचसौं विमुख भयो झूठमें बहर है ॥ २८ ॥

दोहा—जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ग्यान कला घट मांहि। परचै आतम रामसौं, ते अपराधी नांहि ॥२९॥

मालिनी—अतो हताः प्रमादिनो गताः सुखासीनतां प्रलीनं चापलमुन्मूलितमालम्बनम्। आत्मन्येवालानितं च चित्तमासम्पूर्णविज्ञानघनोपलब्धेः ॥ ९ ॥ (!)

परिणामथी होइ छे प्रदेशह आकुलता, मलीन कहतां सो पुनि हेय छे, आत्मध्वन इन्दू
छिन आलम्बन कहतां बुद्धिपूर्वक ज्ञान करिने सने जायन पढ़िवो, विचारिवो निरखो स्मरण
करिवो इत्यादि, उन्मूलित कहतां मोक्षका कारण नहीं छे। इसो जानि हेय कीयो, आत्मनि
एव चित्त आत्मनि-आत्मनि एव कहतां शुद्ध स्वरूप विषे एकाग्र होइ करि। किंच
आत्मनि कहतां मन बांध्यो। इयो काय ज्यों हुओ त्यो कहिये छे, आत्मसम्पूर्णविज्ञान
घनोपलब्धे–आत्मसम्पूर्णविज्ञान कहतां निरावरण केवलज्ञान तिहिको घन कहतां समूह छे।
आत्मद्रव्य तिहिकी, उपलब्धि कहतां प्रत्यक्षपने प्राप्ति तिहि थकी।

भावार्थ–जो शुद्ध स्वरूपके अनुभवमें मग्न हैं वे ही धन्य हैं जिन्होंने सांसारिक
व्याकुलता छोड़ी, व जिन्होंने शास्त्रादि पठन पाठनके आलम्बनको भी त्यागा व एकाग्र
अपने आपमें अपने मनको मार दिया, जिनके भावोंमें अपने शुद्ध स्वरूपका पूर्ण स्वरूप
यथार्थ झलक रहा है। परन्तु संसारके सुखमें मग्न होकर आत्म कार्यमें आलसी हैं वे निकृष्ट
दृष्टी अवश्य धिक्कारने योग्य हैं, क्योंकि वे अपने हाथों अपना बिगाड़ कर रहे हैं।

योगसारमें कहा है—

इसो–जो कृपासागर छे सूत्रका कर्ता आचार्य इसो कहै छे। नानाप्रकारका विकल्प करि साध्य सिद्धि तो नहीं छे। किसा छे नानाप्रकार विकल्प करे छे। किसो छे जन। अधः अधः प्रपतन् कहतां जिसे जिसे अधिकी क्रिया करै छे, अधिको अधिको विकल्प करै छे तैसे तैसे अनुभव थकी भृष्ट तहि भृष्ट होइ छे। तिहि कारण तहि, जनः ऊर्द्ध ऊर्द्ध किं न अधिरोहति–जनः कहतां संसारी जीव राशी, ऊर्द्ध ऊर्द्ध कहता निर्विकल्प तहि निर्विकल्प अनुभव रूप, किं न अधिरोहति कहतां क्यों नहीं परिणवै छे, किसो छे जन, निःप्रमादः कहता निर्विकल्प है। किसो छे निर्विकल्प अनुभव। यत्र प्रतिक्रमणं विषं एव प्रणीतं–यत्र कहता जिहि विषै, प्रतिक्रमणं कहतां पठन पाठन, स्मरण, चिंतन, स्तुति, वन्दना इत्यादि अनेक क्रियारूप विकल्प, विषं एव प्रणीतं कहता विषकी नाईं कह्यो छे। तत्र अप्रतिक्रमणं सुधा कुतः एव स्यात्-तत्र कहतां तिहि निर्विकल्प अनुभव विषे, अप्रतिक्रमण कहतां न पढिवो न पढाइवो, न वंदिवो, न निंदवो। इसो भाव सुधा कुतः एव स्यात् कहतां अमृतको निधानकी नाईं छे। भावार्थ इसो–जो निर्विकल्प अनुभव सुखरूप छे तिहितै उपादेय छे, नानाप्रकारका विकल्परूप आकुलतारूप छे, तिहितै हेय छे।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि निश्चय मोक्षमार्ग निश्चय रत्नत्रयरूप स्वानुभव या स्वसमय या स्वचारित्र है जहां मन, वचन, कायकी कोई क्रिया नहीं है मात्र आत्मा आत्मामें स्थिर है वही अमृतका कुण्ड है। उसके सामने पढना पढाना, पश्चात्ताप आलोचना करना आदि व्यवहार धर्म विषके समान है। क्योंकि इनमें शुभ भाव होनेसे पुण्यका बंध है जब कि स्वानुभव बंधके नाशका उपाय है। इसलिये व्यवहार चारित्रमें मगन जीवको आचार्यने शिक्षा दी है कि तू अधिकर व्यवहारमें फसकर क्यों नीचे गिरता है। स्वानुभवके समान ऊंचे स्थानपर क्यों नहीं चढता है। वास्तवमें यही मोक्षके लिये सोपान है। तत्व०में कहा है–

चौपाई—जे प्रमाद संयुक्त गुसांई उठहिं गिरहिं गिंदुक की नांई।
जे प्रमाद तजि उद्धत होई तिनको मोक्ष निकट दिग सोई॥ १७॥
घटमें है प्रमाद जब तांई पराधीन प्राणी तब तांई॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासे तब प्रधान अनुभौ परकासै॥ १८॥
दोहा—ता कारण जगपंथ इत उत शिव मारग जोर। परमादी जग कूं धुके अपरमादि शिव ओर॥१९॥

मालिनी छंद—प्रमादकलितः कथं भवति शुद्धभावोऽलसः
कषायभरगौरवादलसता प्रमादो यतः।
अतः स्वरसनिर्भरे नियमितः स्वभावे भवन्
मुनिः परमशुद्धतां व्रजति मुच्यते चाचिरात्॥ ११॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अलसः प्रमादकलितः शुद्धभावः कथं भवति—अलस कहता अनुभव विषै शिथिल छे इसो जीव शुद्धभाव कथं भवति कहता शुद्धोपयोगी कहां थकी होइ। अपि तु न होइ। यतः अलसता प्रमादः कषायभरगौरवात्—यतः कहता जिहि कारण थकी, अलसता कहता अनुभव विषै शिथिलता। प्रमादः कहता नानाप्रकार विकल्प क्रियाथकी होइ छे। कषाय कहता रागादि अशुद्ध परिणति भर कहतो उदय तिहिको गौरवात् कहता तीव्रपना थकी होइ छे। भावार्थ इसो—जो जीव शिथिलछे विकल्पी छे सो जीव शुद्ध न छे। जिहितैं शिथिलपना विकल्पपनो अशुद्धपनाको मूल छे। अतः मुनिः परमशुद्धतां व्रजति च अचिरात् मुच्यते—अतः कहता इहि कारण थकी, मुनि कहता सम्यग्दृष्टी जीव, परमशुद्धतां व्रजति कहता शुद्धोपयोग परिणति परिणवै छे। च कहता इसो होता अचिरात् मुच्यते कहता तेही काल कर्मबंध नहिं मुक्त होइ छे, किसो छे मुनि। स्वभावे नियमितः भवन्—स्वभाव कहता शुद्ध स्वरूप विषै, नियमितः भवन् कहतो एकाग्रपनै मग्न होतो संतो, किसो छे स्वभाव, स्वरसनिर्भरे—स्वरस कहतां चेतनागुण तिहिकरि निर्भर कहता परिपूर्ण छे।

भावार्थ—कोई ऐसा मानते हैं कि मात्र आत्माका ज्ञान करनेसे मुक्ति होजायगी, स्वानुभव करनेकी जरूरत नहीं ऐसा मानकर अन्य कार्योंमें रात दिन लीन रहते हैं परन्तु स्वरूप चिंतन व अनुभवमें प्रमादी हैं उनको आचार्य कहते हैं कि यदि तुम्हारे प्रमादभाव है तो अवश्य तीव्र कषायका उदय है। इससे तो बंध होगा। शुद्ध स्वरूपका निश्चय करके स्वरूपमें अनुभव पाना ही मात्र एक मुक्तिका उपाय है, जहां प्रमादका नाम भी नहीं रहता रहता है। इसलिये सदा अप्रमत्त रहना ही योग्य है। आराधनासारमें कहा है—

[illegible]॥ ४७

भावार्थ—हे भव्य जीव! तू आर्तरौद्र ध्यानको दूर करके अपने आत्माको परम शुद्ध

कर्ता सत्ताको नाश तिहिको उपे य कहता इसी अवस्थाको पाइकरि और कायो करनो इसो होइ छे। तत समग्र परद्रव्य स्वय त्यक्त्वा-कहता द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म साम ग्रीको मूल तहि ममत्वको स्वय छोडिकरि, किसो छे पाद्र य अशुद्धिविधायि-कहता अशुद्ध परिणतिको बहारुप निमित मात्र छे। किल कहता निश्चासों। य स्वद्रव्ये रति एति-य कहता जो सम्यग्दृष्टि जीव स्वद्रव्ये कहतां शुद्ध चेतन य विषै, रति एति कहतां निर्विकल्प अनुभवनें डाग्यो छे सुप निहानौ मग्नपनाको भाव हुयो छे। भावार्थ इसो-जो सर्व अशुद्धपनाके मिटता होइ छे शुद्धपनो तिहिका सागको छ शुद्ध चिद्रूपको अनुभव इसो मोक्षमार्ग छे।

भावार्थ-यह है कि मोक्षका मार्ग मात्र एक स्व मानुभव है जहां रागद्वेष मोह नहीं है, जहा कोई परिग्रह नहीं है। इसी स्वानुभवको शाग्नि कहते हैं। इसीसे सर्व-कर्म मल जाते हैं और आत्मा परमात्मा होता हुआ मुक्त हो जाता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है–
सयलहिं रायहिं छहि रसहिं पंचहि रूवहि जन्तु। चित्त णिवारिवि झाइ तुहुं अ॥ देउ अणन्तु॥१९१॥

भावार्थ-सब प्रकार रागादि भावोंसे छ रसोंके स्वादसे पाच तरहके रूपोंसे अपने मनको हटा करके तू एक मात्र अनन्त गुणधारी आत्माका ही ध्यान कर यही मोक्षमार्ग है।

चौपाई—जे समकिती जीव समचेती तिनकी कथा कहू तुमसेती।
जहा प्रमाद क्रिया नहिं कोई निरविकल्प अनुभौ पद सोइ॥४६॥
परिग्रह त्याग जोग थिर तीनो करम बध नहिं होय नवीनो।
जहा न राग द्वेष रस मोह प्रगट मोक्ष मारग मग सोह॥४७॥
पूरब बंध उदय नहिं व्यापै, जहां न भेद पुण्य अरु पापै।
द्रव्य भाव गुण निमल धारा बोध विधान विविध विस्तारा॥४८॥
जिन्हकी सहज अवस्था ऐसी तिनके हिरदे दुविधा कैसी।
जे मुनि क्षपक श्रेणि चढ धाय ते केवलि भगवान कहाय॥४९॥

दोहा-इह विधि जे पूरण भये अष्टकर्म वन दाहि। तिन्हकी महिमा जो लखै नमै बनारसि ताहि॥५०॥

मन्दाक्रान्ता छन्द–बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत

न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।

एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधीरं

पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि॥१९॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं-एतत् कहता या जो कह्यो छे, पूर्ण ज्ञान कहता समस्त कर्ममल कलंकको विनाश होता जीव द्रव्य जिसो थो अनन्त गुण विराजमान तिसो, ज्वलित कहतां प्रगट हुओ। किसो प्रगट हुओ। मोक्ष कलयत्-मोक्ष कहतां जीवकी निःकर्म अवस्था तिहिको, कलयत् कहतां तिहि अवस्थारूप परिणवतो होतो

[illegible]दो छे मोक्ष, अक्षयं- कहतां आगामि अनन्तकाल पर्यन्त अविनश्वर छे। अतुलं-कहतां उपमा रहित छे, किसा थकी। बन्धछेदात्-बन्ध कहतां ज्ञानावरणादि अष्टकर्म तिहिको [illegible] कहतां मूल सत्ता नाश तिहि थकी, किसो छे शुद्ध ज्ञान, नित्योद्योतं स्फुटितसहजावस्थां-नित्योद्योतं कहता शाश्वतो प्रकाश तिहिं करि स्फुटित कहतां प्रगट हुई छे, सहज अवस्था कहता अनन्तगुण विराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिहिको इसो छे। और किसो छे [illegible]शुद्ध-कहतां सर्वथा प्रकार शुद्ध है और किसो छे। अत्यन्तगम्भीरधीरं-अत्यंत गंभीर कहता अनन्तगुण विराजमान इसो छे, धीर कहता सर्व काल शाश्वतो छे। किसा थकी-[illegible] एकाकार कहता एकरूप हुओ छे, स्वरस कहतां अनन्तज्ञान [illegible], अनंतसुख, अनन्तवीर्य, तिहिको, भरतः कहतां अतिशय थी। और किसो छे स्वस्य महिम्नि लीनं-स्वस्य महिम्नि कहतां आपणो प्रताप विषै, लीनं कहता मग्नरूप छे [illegible] इसो-जो सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष विषै आत्मद्रव्य स्वाधीन छे। अन्यत्र [illegible] [illegible] विषै जीव पराधीन छे। मोक्षको स्वरूप कह्यो।

[illegible]र्थ-यहां मोक्षका स्वरूप बताया है कि मोक्ष आत्माका पूर्ण शुद्ध स्वभाव [illegible] केवलज्ञान प्रगट है, जो स्वाभाविक अवस्था क्षय रहित है, क्योंकि कर्मके क्षय प्रगट है तथा अनुपम है व परमानन्दरूप है। ऐसा मोक्षपद परमानंदमई है, उसको [illegible] [illegible] भी पाते हैं। आराधनासारमें कहते हैं—

[illegible] त्रि गुणा य तहा सागस्स ण दुल्लइ किंपि ॥[illegible]

भावार्थ-सर्व कर्मोंके बन्ध नाश होजानेपर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय व अन्य अनेक गुण प्रगट होजाते हैं। आत्मवर्य ध्यानसे ऐसी कोई कठिन बात नहीं है जो सिद्ध न होसके।

[illegible]

[illegible] ॥[illegible]॥

दशवा शुद्धात्म द्रव्य अधिकार।

दोहा—इति श्री नाटकग्रंथमें कह्यो मोक्ष अधिकार। अब ग्यानी हरखो कर विशुद्धीद्वार ॥१॥

मंदाक्रांता छन्द–नीत्वा सम्यक् प्रलयमखिलान् कर्तृभोक्त्रादिभावान्

दूरीभूतः प्रतिपदमयं बन्धमोक्षप्रक्लृप्तेः ।

शुद्धः शुद्धस्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि–

ष्टङ्कोत्कीर्णप्रकटमहिमा स्फूर्जति ज्ञानपुंजः ॥ १ ॥

खंडान्वय सहित अर्थ–अयं ज्ञानपुंज स्फूर्जति–अयं कहता विद्यमान छे, ज्ञानपुञ्ज कहता शुद्ध जीव द्रव्य, स्फूर्जति कहता प्रगट हो छे। भावार्थ इसो–जो यहां तहि लेइ करि जीवको जैसो शुद्ध स्वरूप छे तिसो कहिजे छे। किसो छे ज्ञानपुञ्ज टङ्कोत्कीर्णप्रकट महिमा–टङ्कोत्कीर्ण कहता सर्व काल एकरूप इसो छे। प्रगट कहता स्वानुभव गोचर महिमा कहता स्वभाव जिहिको इसो छे। और किसो छे, स्वरसविसरापूर्णपुण्याचलार्चि–स्वरस कहता शुद्ध ज्ञान चेतना तिहिको विसर कहता अनंत अंश भेद तिहि करि आपूर्ण कहता संपूर्ण छे, इसी पुण्य कहता निरावरण ज्योति, अचल कहता निश्चल अर्चि कहता प्रकाश स्वरूप जिहिको इसो छे। और किसो छे, शुद्ध शुद्ध–दोइवार कहनते अति ही विशुद्ध छे। और किसो बन्धमोक्ष प्रक्लृप्ते प्रतिपदं दूरीभूत–बंध कहता ज्ञानावरणादि कर्म पिंड सो सबन्धरूप एक क्षेत्रावगाह, मोक्ष कहता सकल कर्मको नाश होता जीव स्वरूपको प्रगटपनो तिहि थकी, प्रक्लृप्ते कहता इसो जो विकल्प तिहि थकी, प्रतिपद कहता एकेंद्रिय आदि देइ पचेंद्रिय पर्यायरूप जहां छे तहां, दूरीभूत कहता अति ही भिन्न छे। भावार्थ इसो–जो एकेन्द्रिय आदि देइ पचेंद्रिय पर्याय करि जीवद्रव्य जहां तहां द्रव्य स्वरूपके विचार बंध इसो, मुक्त इसो विकल्प तहि रहित छे, द्रव्यको स्वरूप ज्योंही छे त्योंही छे। कायों करता जीवद्रव्य इसो छे। अखिलान् कर्तृभोक्त्रादि भावान् सम्यक् प्रलय नीत्वा–अखिलान् कहता गणना करता अनंत छे इसा जे, कर्ता कहता जीव कर्ता छे, इसो विकल्प, भोक्ता कहता जीव भोक्ता छे इसो विकल्प इहि आदि देइ करिके अनंत भेद त्यांहको सम्यक् कहता मूल तहि, प्रलय नीत्वा कहता विनाश करि इसो कहिजे छे। १।

भावार्थ–यहां शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे जीव द्रव्यकी महिमा बताई है कि यह जीव, सदा ही शुद्ध है, पर पदार्थके बंधमें रहित है इसमें बंध व मोक्षकी कल्पना नहीं है न यह परभावोंका कर्ता है न परभावोंका भोक्ता है, यद्यपि एकेंद्रियादि पर्यायमें गया व रहा तथापि द्रव्यरूप जैसाका तैसा ही बना रहा। यही अनुभव परम हितकारी है। सब जीवोंको एक समान द्रव्य दृष्टिसे देखना ही साम्यभाव प्राप्त कराना है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं–

दोहा—त्रि मण्णइ जीव जिय, इयठवि एकसहाव। तासु ण थक्कइ भाउ समु, भवसायरि जो णाव ॥२२३॥

भावार्थ-जो सब जीवोंको एक स्वभाव रूप नहीं मानता है उसको समभाव नहीं होता है। समभाव भवसागरसे तिरनेके वास्ते नावके समान है।

सवैया ३१ सा—कर्मनिको करता है भोगनिको भोगता है, जाके प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है। जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नाहि सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है ॥ ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुभाव जाको, लोक व्यापि लोकातीत लोकमें महित है। शुद्ध वंश शुद्ध चेतनाके रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥१॥ दोहा—जो निश्चै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अंत। सो चिद्रूप बनारसी, जगत माहि जयवंत ॥२॥

श्लोक कर्तृत्वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत्।
अज्ञानादेव कर्त्ताऽयं तदभावादकारकः ॥ २ ॥

खण्डान्वयसहित अर्थ-अस्य चितः-कहतां चैतन्य मात्र स्वरूप जीव कहुं, कर्तृत्वं कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको करै अथवा रागादि परिणामको करै। इसो न स्वभावः कहतां अैसो इसो सहजको गुण नहीं छै। दृष्टान्त कहिजे वेदयितृत्ववत्-कहता यथा जीवकर्मको भोक्ता फुनि न छै। भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य कर्मको भोक्ता होइ तो कर्ता होइ सो तो भोक्ता फुनि नहीं छै। तिहिसें कर्ता फुनि ना छै। अयं कर्ता अज्ञानात् एव-अयं कहता यो जीव कर्ता कहता रागादि अशुद्ध परिणामको करै छै इसो फुनि छै किसाथकी, अज्ञानात् एव कहता कर्मजनित भावविषे आत्मबुद्धि इसो छै जो मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम तिहिथकी जीव कर्ता छै। भावार्थ इसो—जो जीववस्तु रागादि विभाव परिणामको कर्ता छै इसो जीवको स्वभाव गुण नहीं छै। परन्तु अशुद्ध रूप विभावपरिणति छै। तदभावात् अकारकः तदभावात् कहता मिथ्यात्व रागद्वेषरूप विभाव परिणति मिटै छै तिहिके मिटतां थका कहता जीव सर्वथा अकर्ता होइ छै।

चौपाई—जीव करम करता नहिं ऐसे, रस भोक्ता स्वभाव नहिं तैसे।
मिथ्या मतिसों करता होई, गये अज्ञान अकरता सोई ॥ १ ॥

शिखरिणी छंद–अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—अयं जीव अकर्ता इति स्वरसतः स्थितः—अयं जीव कहतां विद्यमान छे जो चैतन्य द्रव्य, अकर्ता कहतां ज्ञानावरणादिको अथवा रागादि अशुद्ध परिणामको कर्ता न छे। इति कहतां इसो सहज, स्वरसतः स्थितः कहतां स्वभाव थकी अनादि निधन योंही छे। किसो छे विशुद्धः कहतां द्रव्यकी अपेक्षा द्रव्यकर्म भावकर्म, नोकर्म तहिं भिन्न छे। स्फुरच्चिज्ज्योतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः—स्फुरत् कहतां प्रकाशरूप छे। इसी चिज्ज्योतिर्भि कहतां चेतना गुण तिहि करि, छुरित कहतां प्रतिबिंबित छे, भुवनाभोगभवनः कहतां अनंत द्रव्य आपणा अतीत अनागत वर्तमान पर्याय सहित जिहि विषै इसो छे। तथापि किल इह अस्य प्रकृतिभिः यत् असौ बन्धः स्यात्—तथापि कहतां शुद्ध छे जीव द्रव्य, तौ पुनि किल कहतां निहचासों, इह कहतां संसार अवस्था विषै, अस्य कहतां जीवको, प्रकृतिभिः कहतां ज्ञानावरणादि कर्मरूप यत् असौ बंध स्यात् कहतां जो कछु बंध होइ छे। स खलु अज्ञानस्य कोपि महिमा स्फुरति—स कहतां बंध होइ छे। इसो खलु कहतां निहचासों, अज्ञानस्य कोऽपि महिमा स्फुरति कहतां मिथ्यात्व रूप विभाव परिणमन शक्तिको कोई इसो ही स्वभाव छे, किसो छे, गहनः कहतां असाध्य छे। भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य संसार अवस्था विभावरूप मिथ्यात्व रागद्वेष मोह परिणामरूप परिणयो छे तिहितै ज्यौं परिणयो छे तिसा भावको कर्ता होइ छे। अशुद्ध भावको कर्ता होइ छे, अशुद्ध भावहके मिटता जीवको स्वभाव अकर्ता छे।

भावार्थ–निश्चय नयसे जीव शुद्ध स्वभावी है ज्ञाता दृष्टा है यह कर्ता नहीं है। जबतक इसके मिथ्यात्व है तबतक अज्ञानसे यह कर्मजन्य भावोंमें आपा मानकर कर्ता भोक्ता बनता है और बंधको पाता है व संसारमें भ्रमण किया करता है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं–

दुक्खहं कारणि जे विसय ते सुहहेउ रमेइ। मिच्छाइट्ठिउ जीवडउ, इत्थु ण काइं करेइ ॥८४॥

भावार्थ–मिथ्यादृष्टी जीव दुःखके कारण जो इंद्रियोंके विषय हैं उनको सुखका कारण मानकर रमण करता है ऐसे अज्ञानीसे क्या क्या अकार्य संभव नहीं हैं।

सवैया ३१ मात्रा—निहचै निहारत स्वभाव जांहि आतमाको आतमीक धाम परम परकासना॥
अतीत अनागत ... जाको करत स्वरूप गुण लोक अलोक भासना ॥ सोई जीव संसार—

[illegible] माहि करमको करतासो [illegible] लिये भाम उपासना। यहै महा मोहको पसार यहै मिथ्या[illegible], यहै भी विराग यह व्यवहार वासना ॥ ४ ॥

श्लोक–भोक्तृत्वं न स्वभावोऽस्य स्मृतः कर्तृत्ववच्चितः।
अज्ञानादेव भोक्ताऽयं तदभावादवेदकः ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–अस्य चितः भोक्तृत्वं स्वभावः न स्मृतः–अस्य चितः कहतां चैतन्य द्रव्यको, भोक्तृत्वं कहतां ज्ञानावरणादि कर्मको फल अथवा सुख दुःख रूप कर्म फल चेतनारूप अथवा रागादि अशुद्ध परिणामरूप कर्म चेतनाको भोक्ता जीव छे इसो, स्वभावः कहतां जीव द्रव्यको सहज गुण, न स्मृतः कहता गणदेवांह इसो तो न कह्यो छे, जीवको भोक्ता स्वभाव न छे इसो कह्यो छे। दृष्टांत कहै छे। कर्तृत्वत् कहतां यथा जीव द्रव्य कर्मको कर्ता फुनि न छे। अयं जीवः भोक्ता–कहतां योही जीव द्रव्य आपणा सुख दुःख रूप परिणामको भोगवे छे, इसो फुनि छे सो किसा थकी। अज्ञानात् एव–कहतां [illegible] कर्मको संयोग छे, तिहिंने मिथ्यात्व रागद्वेष रूप अशुद्ध विभाव परिणवो छे, तिहि [illegible] भोक्ता छे। तदभावात् अवेदकः–कहतां मिथ्यात्वरूप विभाव परिणामको [illegible] जीव द्रव्य साक्षात् अभोक्ता छे। भावार्थ इसो–यथा जीव द्रव्यको अनंतचतुष्टय स्वरूप छे तथा कर्मको कर्तापनो भोक्तापनो स्वरूप नहीं छे, कर्मकी उपाधि थकी विभाव रूप अशुद्ध परिणतिको विकार छे तिहिंते विनाशीक छे, तिहि विभाव परिणतिके [illegible] जीव अकर्ता अभोक्ता छे। आगे मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यकर्मको अथवा भावकर्मको कर्ता छे, सम्यग्दृष्टि कर्ता नहीं छे इसो कहिजे छे।

भावार्थ–यहांपर यही बताया है कि निश्चयनयमे न तो जीव परभावका कर्ता है न भोक्ता है, [illegible] है। कर्मकी उपाधिमे जो रागादि भाव होते [illegible] सम्यग्दृष्टि [illegible] मानता है, उसमे वह कर्ता भोक्ता बनता नहीं [illegible] कि मिथ्यादृष्टी जीव अज्ञानसे उन विभाव भावोंको अपना मानकर कर्ता तथा भोक्ता [illegible] है। [illegible] कहा है—

[illegible] ॥ [illegible] ॥

भावार्थ–[illegible] परमात्मा व [illegible] है।

चौपाई–[illegible]।
[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible]–अज्ञानी प्रकृतिस्वभावनिरतो नित्यं भवेद्वेदको
ज्ञानी तु प्रकृतिस्वभावविरतो नो जातुचिद्वेदकः।

इत्येवं नियमं निरूप्य निपुणैरज्ञानिता त्यज्यतां

शुद्धैकात्ममये महस्यचलितैरासेव्यतां ज्ञानिता ॥ ५ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-निपुणैः अज्ञानिता त्यज्यतां-निपुणैः कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहको, अज्ञानिता कहतां परद्रव्य विषै आत्म बुद्धि इसी मिथ्यात्व परिणति त्यज्यतां ज्यों मिटै त्यों सर्वथा मेटिवो योग्य छे। किसा छे सम्यग्दृष्टि जीव, महसि अचलितैः -कहतां शुद्ध चिद्रूपको अनुभव विषै अखण्ड धारारूप मग्न छे, किसो छे महसि, शुद्धैकात्ममये-शुद्ध कहतां समस्त उपाधि तहि रहित इसो जे, एक आत्म कहतां एकलो जीव द्रव्य, मये कहता तिहिको स्वरूप छ और कायो करवा छ। ज्ञानिता आसेव्यतां-कहता शुद्ध वस्तुको अनुभव रूप सम्यक्त परिणति रूप सब काल रहिवो उपादेय छे। कासो जानि इसो हो इति एवं नियमं निरूप्य-इति कहतां ज्यों कहिये छे, एवं नियमं कहता इसो वस्तु स्वरूप परिणमनको निहचौ, निरूप्य कहता अवधारि करि, सो वस्तुको स्वरूप किसो, अज्ञानी नित्यं वेदकः भवेत्-अज्ञानी कहता मिथ्यादृष्टी जीव, नित्यं कहता सब काल विषै, वेदकः भवेत् कहतां द्रव्यकर्मको, भावकर्मको भोक्ता होय। इसो निहचौ छ मिथ्यात्वको परिणत इसो ही छे। किसो छे अज्ञानी, प्रकृतिस्वभावनिरत प्रकृति कहता ज्ञानावरणादि अष्टकर्म तिहिको स्वभाव कहतां उदय होता नाना प्रकार चतुर्गति शरीर रागादि भाव सुख दुःख परिणति इत्यादि तिहि विषै, निरत कहता आपो जानि एकत्व बुद्धि करि परिणयो छे। तु ज्ञानी जातु वेदकः नो भवेत् तु कहता मिथ्यात्वके मिटवा थी फुनि छे, ज्ञानी कहता सम्यग्दृष्टी जीव, जातु कहता कदाचित्, वेदकः नो भवेत् कहतां द्रव्यकर्मको, भावकर्मको भोक्ता न होइ इसो वस्तुको स्वरूप छे, किसो छे ज्ञानी। प्रकृतिस्वभावाविरत -प्रकृति कहता कर्म तिहिको, स्वभाव कहता उदयको कार्य तिहि विषै, विरत कहतां हेय जानि करि छूट्यो छ स्वामित्व पनो जिहितै इसो छे। भावार्थ इसो-जो जीवको सम्यक्त होता अशुद्धपनो मिटै छे तिहिते भोक्ता नहीं छ।

भावार्थ-सम्यग्दृष्टी जीवोंने अज्ञान छोड़ दिया है इसलिये वे परद्रव्य व परभावका कर्ता अपनेको नहीं मानते हैं मात्र एक शुद्ध ज्ञान स्वभावकी ही उपासना करते हैं। वे कर्मोंके उदयको पर रूप उपाधि जान अत्यन्त वैरागी हैं। मिथ्यादृष्टी जीवको यह श्रद्धान नहीं होता है इससे वह कर्मोंके उदयमें मगन होता है, यही अनुभव किया करता है कि मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं सुन्दर, मैं बलवान मैं धनी, मैं नृप, मैं सेवक, मैं पशु, मैं देव, मैं रागी, मैं द्वेषी, मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मरा, मैं जिया, मैंने भला किया, मैंने बुरा किया-

मणुदि परवि वियाणियइ जे अप्प मुणियण । सो णिय अप्प जाणि तुहुं जोइय णाणबलेण ॥१०४॥

भावार्थ हे योगी ! जिस आत्माके जाननेसे आप व पर सर्व जैसाका तैसा जाना जाता है उसही अपने शुद्ध आत्माको तू अपने ज्ञानके बलसे जान व अनुभव कर।

सवैया ३१ मा—चिन्मुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुण रतन भण्डारी आप हारी कर्म रोगको । प्यारो पण्डितनको हुल्यारो मोक्ष मारगमें न्यारो पुद्गलसों उजारो उपयोगको ॥ ज्ञान जेय पर लख रहे जगमें विरत गहे न ममत मन वच काय जोगको । ता कारण ज्ञानी ज्ञानावरणादि कर्मको, करता न होइ भोगता न होय भोगको ॥ ७ ॥

दोहा—निर्भिलाष करणी करै भोग अरुचि घट माहि । ज्ञान मात्र शिवपथ करता भुक्ता नाहि ॥८॥

श्लोक-ये तु कर्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसा तताः ।
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोऽपि मुमुक्षताम् ॥ ७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-तेषां मोक्षः न-तेषा कहता इसा मिथ्यादृष्टी जीवहुको मोक्ष कहता कर्मको विनाश, शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति नहीं छे, किसा छे ते जीव, मुमुक्षतां अपि-कहता जैन मताश्रित छे, घणो भण्या छे द्रव्य क्रिया रूप चारित्रपालै छे, मोक्षका अभिलाषी छे तौ फुनि त्याहि मोक्ष न छे, कौनके नाई । सामान्यजनवत्-कहता यथा तपयोगी भरड़ा इत्यादि जीवहुको मोक्ष न छे। भावार्थ इसो-जो जीव जानिसे, जैन मत आश्रित छे। कांई विशेष होइ छे। सो विशेष तो कांई न छ, किसा छे ते जीव। ये आत्मानं कर्तारं पश्यन्ति-तु कहता जिहि इसा छे, ये कहता ये कई मिथ्यादृष्टी जीव, आत्मानं कहता जीव द्रव्यको, कर्तारं पश्यन्ति कहता ज्ञानावरणादि कर्मको, रागादि अशुद्ध परिणामको करै छै। इसो जीव द्रव्यको स्वभाव छै इसो मानहि छै। प्रतीत करै छौ आस्वादहि छै, और किसा छै। तमसा तताः-कहता मिथ्यात्व भाव इसा अंधकार करि व्याप्त छै, आंधा हुवा छै। भावार्थ इसो-जो महामिथ्यादृष्टी छै। जे जीवको स्वभाव कर्ता रूप मानहि छै जिहिसे कर्तापनो जीवको स्वभाव नहीं छ, विभावरूप अशुद्ध परिणति छै सो फुनि पराए सयोग करि छे, विनाशीक छै।

भावार्थ-जो कोई आत्माका स्वभाव परभावका कर्ता है, रागादिरूप है ऐसा समझते रहेंगे वे महा अज्ञानी व मिथ्यादृष्टी हैं, उनका आत्मा परभावोंसे कभी भी छूटकर शुद्ध नहीं होसक्ता। जो अपने आत्माका स्वभाव सब पुद्गलजन्य विकारोंसे रहित अनुभवेंगा वही मोक्षका पात्र है अन्य नहीं। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

जं भावइ तं करहि जिय जं भावइ करि तं जि केमइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहं सुद्धि ण जं जि ॥१६५॥

भावार्थ-जहा चाहे जाओ व जो चाहे क्रिया करो परन्तु जबतक जिसका चित्त शुद्ध न होगा, निर्विकारी न होगा तबतक वह मोक्ष नहीं पासक्ता।

कवित्त—जो [illegible] विकल मि[illegible]ान धर, मृषा सकल विकलप उपजावत। गहि एकांत [illegible] आतमको, [illegible] मानि अधोमुख धावत ॥ त्यों जिनमती द्रव्य चारित्र कर, करनी करि [illegible]। [illegible] मुक्ति तथापि मूढमति, विन समकित भव पार न पावत ॥ ९ ॥

श्लोक नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥ ८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ- तत्र परद्रव्यात्मतत्त्वयोः कर्तृता कुतः- तत् कहतां तिहि कारण तहि परद्रव्य कहतां ज्ञानावरणादि रूप पुद्गलको पिंड, आत्मतत्त्व कहतां शुद्ध जीव-द्रव्य [illegible], कर्तृता कहतां जीवद्रव्य पुद्गल कर्मको कर्ता, पुद्गल द्रव्य जीव भावको कर्ता [illegible] कुतः कहतां क्यों होइ, अपि तु क्यों नहीं होइ। किसा छे। कर्तृकर्म सम्बन्धाभावे- कर्तृ कहतां जीव कर्ता, कर्म कहतां ज्ञानावरणादि कर्म इसो छे जो [illegible] कहतां दुवे द्रव्यको एक सम्बन्ध तिहिके अभावे कहतां द्रव्यको स्वभाव यों न छे, तिहित सो फुनि किसा थकी। सर्वः अपि सम्बन्धः नास्ति—सर्वः कहतां जो कसो [illegible] छे, अपि कहतां यद्यपि एक क्षेत्रावगाह रूप छे। तथापि सम्बधः नास्ति कहतां आपो [illegible] कोई द्रव्यको, कोई द्रव्य सो तन्मयरूप नहीं मिले छे। इसो वस्तु [illegible] छे तिहित जीव पुद्गल कर्मको कर्ता न छे।

भावार्थ—जब आत्मा और पुद्गल दो भिन्न २ द्रव्य हैं व दोनोंका स्वभाव भिन्न २ है [illegible] दोनोंमें कर्ता कर्मपना बन ही नहीं सक्ता है। निश्चयसे जीव अपने जीव [illegible] भावोंका व पुद्गल अपनी पर्यायोंका कर्ता है, परस्पर कर्ता कर्म मानना ही अज्ञान है। ज्ञानी परद्रव्यमें रंच मात्र राग नहीं रखते हैं। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

स्वरूप इसो छे, तं कहतां जीवद्रव्यको भेदावबोधात् अधः कहतां शुद्ध स्वरूप परिणमन रूप सम्यक्त्व नहिं भूट छे मिथ्यादृष्टि होतो संतो मोह रागद्वेष रूप परिणवै छे तावंत काल, कर्तां किन् कल्पयंतु कहतां मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध चेतन परिणामको कर्ता जीव छे इसो मान्यह मानहु प्रतीति करहु। तु कहतां सोई जीव, इद्ध कहता यदाकाल मिथ्यात्व परिणाम छूटै, आपणै शुद्ध स्वरूप सम्यक्त्व भाव रूप परिणवै, तदा एनं च्युतकर्तृभावं कहतां छोड्यो छे रागादि अशुद्ध भावको कर्तापनो जिहि इसो, पश्यंतु कहता श्रद्धा करहु, प्रतीति करहु, सो अनुभवहु। भावार्थ इसो—जो यथा जीवको ज्ञानगुण स्वभाव छे सो ज्ञानगुण संसार अवस्था अथवा मोक्ष अवस्था न छूटै तथा रागादिपनो जीवको स्वभाव नहीं छे तथापि संसार अवस्था जावत कर्मको संयोग छे तावतकाल मोह रागद्वेष रूप अशुद्धपनै विभावरूप जीव परिणवै छे तावत कर्ता छे, जीवको सम्यक्त्वगुण परिणया उपरांत इसो जानिजो उद्धतबोधधामनियतं—उद्धत कहता सकल ज्ञेय पदार्थ जानिवाको उतावलो इसो, बोधधाम कहता ज्ञानको प्रताप, तिहि करि, नियत कहता सर्वस्व तिहिको इसो छे, और किसो छे। स्वयं प्रत्यक्षं—कहता आपको आपणपे प्रगट हुओ छे, और किसो छे, अचलं कहतां आगि रागादि परिणमें रहित हुओ छे और किसो छे, ज्ञानारं कहता ज्ञान मात्र स्वरूप छे, और किसो छे, एकं एकं कहता रागादि अशुद्ध परिणति तहिं रहित शुद्ध वस्तु मात्र छे।

, आत्मा स्वभावमें तो अपने ही त्रिकाल अबाधित शुद्ध भावोंका ही कर्ता व भोक्ता है। परमात्मप्रकाशमें ज्ञानीका अनुभव बताया है—

अट्ठ वि कम्मइं बाहिरउ सयलइं दोसइं चत्तु दंसणणाणचरित्तमउ अप्पा भावि णिरुत्तु ॥ ६७ ॥

भावार्थ—आत्मा आठों कर्म व सर्व दोष रागादिसे रहित है व सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मई है ऐसी भावना कर।

सवैया ३१ सा—भ्रम बौद्धमति कहै अलग अकरता है सर्वथा प्रकार करता न होय कबहीं ॥ तबे जिनमति गुरुमुख एक पक्ष सुनि याहि भांति माने सो एकांत तजो अबहीं ॥ जैसे दुर्मति बौद्धो करमको करता है सुमती सदा अकरता कहो सबही ॥ जाके घट ज्ञायक स्वभाव जग्यो जबहीस सो तो अपनापन निरख्यो भयो तबही ॥ २७ ॥

मालिनी—क्षणिकमिदमिहैकः कल्पयित्वात्मतत्त्वं निजमनसि विधत्ते कर्तृभोक्त्रोर्विभेदम्।
अपहरति विमोहं तस्य नित्यामृतौघैः स्वयमयमभिषिञ्चंश्चिच्चमत्कार एव ॥१४॥

खण्डान्वय सहित अर्थ बौद्धमती मतीबुद्ध कीन छै, इह एकः निजमनसि कर्तृभोक्त्रो विभेदं विधत्ते—इह कहता साम्प्रत विद्यमान छै इसो, एकः कहता बौद्धमतको मानै छै। इसो कोई जीव, निजमनसि कहता आपणा ज्ञान विषै, कर्तृभोक्त्रो कहता कर्ताको भोक्ताको, विभेदं विधत्ते कहता विहरो करै छै। भावार्थ इसो जो इसो कहै छै क्रियाको कर्ता कोई अन्य छै। भोक्ता कोई अन्य छै इसो क्या मानहि छै। इदं आत्मतत्त्वं क्षणिकं कल्पयित्वा—इदं आत्मतत्त्व कहता अनादि निधन छै जो चैतन्य स्वरूप जीव द्रव्य तिहिको, क्षणिक कल्पयित्वा कहता यथा आपणे नेत्र रोग करि कोई श्वेत शंखको पीरो करि मानै छै तथा अनादि निधन छै जीव द्रव्य तिहिको मिथ्या भ्रांति करि इसो मानै छै जो एक समय मात्र पूर्विलो जीव मूलताहि विनशि जाइ छै। अन्य नवो जीव मूलताहि उपजै छै इसो मानतो होतो मानै छै कि क्रियाको कर्ता अन्य कोई जीव छै, भोक्ता अन्य कोई जीव छै। इसो अभिप्राय मिथ्यात्वको मूल छै। तिहिनै इसो जीव समझाइजै छै। अयं चिच्चमत्कार तस्य विमोहं अपहरति—अयं चिच्चमत्कार कहता कोई जीव बाल्यावस्थामें कोई इक, नगरको देख्यो थो कछु काल गया और तरुणाईपैने ही नगरको देखै छै, तदा इसो ज्ञान उपजै छै सोई यह नगर छै जो नगर म्हा बालकपनै देख्यो थो। इसो छै अतीत अनागत वर्तमान शाश्वतो ज्ञान मात्र वस्तु, तस्य विमोहं अपहरति कहता क्षणिकवादीका मिथ्यात्वको दूर करै छै। भावार्थ इसो—जो जीव तत्त्व क्षण विनश्वर होतो, पूर्व ज्ञानका अनुभव कोई इक होइ छै जो वर्तमान ज्ञान कीन कछु होइ तिहितै जीवद्रव्य सदा शाश्वतो छै। इसो कहता क्षणिकवादी प्रतिबुद्ध होइ छै। किसो छै जीव वस्तु। नित्यामृतौघैः स्वयं अभिषिञ्चन्—नित्य कहता सदाकाल अविनश्वरपनो, अमृत कहता द्रव्यको जीवन

मूल तिष्ठिको, अपि कहतां समूह तिष्ठिकरि स्वयं अभिषिञ्चन् कहतां आपणी शक्तिकरि आप पुष्ट होतो संतो एव कहतां निश्चयसौं योही जानिज्यौं अन्यथा नहीं।

भावार्थ—यहां उनके मिथ्यात्वको दूर किया है जो जीवको सर्वथा क्षणभंगुर मानते हैं। ऐसा यदि जीव होय तो पूर्वकी स्मृति व प्रत्यभिज्ञान न हो कि यह वही है जो पहले जाना था। इसलिये कर्ता कोई और भोक्ता कोई और, ऐसा एकांत मिथ्यात्व है। जीव द्रव्य अविनाशी है, जो कर्ता है वही भोक्ता है। मात्र पर्यायकी अपेक्षा अंतर है। जो भाव परिणति कर्ताके समय थी वह परिणति भोक्ताके समय नहीं है। सर्वथा क्षणिक व अनित्य जीव नहीं है। द्रव्यापेक्षा नित्य है पर्याय अपेक्षा अनित्य है, इस सत्यको मानना ही सम्यक्त है।

दोहा—[illegible] जो जीव है, [illegible] समयमें नाहि ॥२८॥
[illegible], [illegible] काम जो करे। सो न भोगे सर्व, और भोगता होय ॥२९॥
[illegible], [illegible] काज। [illegible] कथा, भाखे श्रीजिनराज ॥३०॥
[illegible] लखे, कहै नगर यह सोय ॥३१॥
[illegible], [illegible] पुरुषको [illegible], और न जाने जीव ॥३२॥
[illegible], [illegible] पुरुष, [illegible] ॥३३॥

श्लोक—वृत्यंशभेदतोऽत्यन्तं वृत्तिमन्नाशकल्पनात्।
अन्यः करोति भुंक्तेऽन्य इत्येकान्तश्चकास्तु मा ॥१५॥

निश्चौ चल्यो आयो भिन्न तो हूओ नहीं इसो मानि, तत्रापि कहतां तिहि जीव विषै, अनिशं अशुद्धि मत्वा, जीवद्रव्य अशुद्ध छे शुद्ध छे ही नहीं इसी प्रतीति करे छे जे जीव त्यांहिं पुनि वस्तुकी प्राप्ति न छे। मतांतर कहिजे छे। अपरैः अतिव्याप्तिं प्रपद्य-मानैः-कहतां एकांत मिथ्यादृष्टी जीव केई इसा छे। अतिव्याप्ति प्रपद्य कहतां कर्मकी उपाधिको नहीं मानै छे। आत्मानं परिशुद्धिं ईप्सुभिः-कहतां जीव द्रव्यको सर्व काल सर्वथा शुद्ध मानहिं छे त्यांहिं पुनि स्वरूपकी प्राप्ति न छे। किसो छे एकांतवादी-निःसूत्र मुक्तेक्षिभिः-निःसूत्र कहतां स्याद्वाद सूत्र विना, मुक्तेक्षिभिः कहतां सकल कर्मको क्षय लक्षण मोक्षको चाहै छे, त्यांहि प्राप्ति न छे। तिहिको दृष्टांत, हारवत्-कहतां हारकी नाई। भावार्थ इसो-जो यथा सूत विना मोती नहीं सधै छे, तथा स्याद्वाद सूत्रका ज्ञान पावे (विना) एकांत वादहं करि आत्माको स्वरूप नहीं पावै छे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति नहीं होइ छे, तिहिंते स्याद्वाद सूत्र करि ज्यों आत्माको स्वरूप पाइयो छे त्यों मानिज्यों जे कई आपको सुख चाहै छे।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि वस्तुका स्वरूप अनेकांत या अनेक स्वभाववाला है, ऐसा ज्ञान स्याद्वाद नयके आश्रय विना हो नहीं सक्ता है। जो कोई मोतियोंका हार तो चाहै, परन्तु सूतको नहीं ले उसको कभी भी हार नहीं मिल सक्ता है। इसी तरह जो मुक्ति तो चाहै, परन्तु स्याद्वाद सूत्रका अभिप्राय नहीं समझे उसको वस्तुकी प्राप्तिरूप मोक्ष नहीं प्राप्त होसक्ती है। आत्मा नित्य व अनित्य दोनों स्वभाववाला है। द्रव्यार्थिक नयसे नित्य व पर्यायार्थिक नयसे अनित्य है। जो कोई बौद्धमती आत्माको सर्वथा अनित्य व क्षणिक मानते हैं उनको आत्माके यथार्थ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होसक्ती है। इसी तरह जो ऐसा मानते हैं कि आत्मा अशुद्ध ही है उनको कभी शुद्ध आत्माके स्वरूपका अनुभव नहीं होगा। व जो मानते हैं कि आत्मा सदा शुद्ध ही है ऐसा भी एकांत आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञानकरानेवाला नहीं है। वास्तवमें यह आत्मा निश्चयनयकी अपेक्षा शुद्ध है। तथापि व्यवहारनय या कर्मोंकी उपाधिकी अपेक्षा अशुद्ध है। इस तरह जो स्याद्वादसे समझेंगे उनहीको स्वरूपकी प्राप्ति होवेगी।

मोह न सुगह देय दग तहाँ देखि आन कलसौ डाइ भेग माहसौं वहरी ॥ ऐसे दुबुद्धि मूरि हूओ फरोख मूलि फूनी फिर ममता जनीतिसौ अकरी ॥ ३८ ॥

कवित्त—देह कहे जीव क्षणभंगुर देह वट करम करतार । देह कम रहित नित जहाँ सब अमन नाना दरकार । ज एकांत गहे ते मूरख पण्डित अनेकांत पक्ष धार । जैसे भिन्न भिन्न मुक्ता गन, गुणसौ गहत कहावे हार ॥ ३९ ॥

दोहा-यथा सूत्र थमह विना मुक्त माल नहिं होय । तथा स्यादवादी विना, मो ग न साधै कोय ॥ ४० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-कर्तुर्वेदयितुश्च युक्तिवशतो भेदोऽस्त्वभेदोऽपि वा

कर्ता वेदयिता च मा भवतु वा वस्त्वेव सञ्चिन्त्यतां ।

प्रोता सूत्र इवात्मनीह निपुणैर्भेत्तुं न शक्या क्वचि

च्चिच्चिन्तामणिमालिकेयमभितोऽप्येका चकास्त्येव न ॥ १७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-निपुणैं वस्तु एव सञ्चिन्त्यतां-निपुणैं कहता शुद्ध स्वरूप अनुभवको प्रवीण छे । इसा जे सम्यग्दृष्टी जीव त्याहको, वस्तु एव कहतां समस्त विकल्प करि रहित निर्विकल्प सत्ता मात्र चैतन्य स्वरूप सञ्चिन्त्यतां कहता स्वसंवेदन प्रत्यक्षपनै अनुभव करिवो योग्य छे । कर्तुं च वेदयितु युक्तिवशत. भेद अस्तु अथवा अभेद अस्तु-कर्तु कहता कर्ताको, च कहता और, वेदयितु कहता भोक्ताको, युक्तिवशत कहता द्रव्यार्थिक नय पर्यायार्थिक नय भेद करता, भेद अस्तु कहता अन्य पर्याय करै छे, अन्य पर्याय भोगवै छे पर्यायार्थिक नय करि इसो भेद छ तौ इसो होउ, इसो साधतां साध्यसिद्धि तो कांई न छे । अथवा अभेद अस्तु, अथवा कहता द्रव्यार्थिक नय करि, अभेद कहता जो द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्मको करै छे सोई द्रव्य भोगवै छे । इसो, अस्तु कहतां जो फुनि छ तो यौंही होउ इह माहे फुनि साध्यसिद्धि तो कांई न छे । वा कर्ता च वेदयिता भवतु वा मा भवतु-वा कहता कर्तृत्व नय करि, कर्ता कहतां जीव आपणा भावहका कर्ता छे, च कहता तथा, भोक्तृत्व नय करि, वेदयिता कहता जिहिरूप परिणवै छे त्याह परिणामको भोक्ता छे, भवतु कहता यौं छे त्यौं ही होउ । इसो विचारतां शुद्ध स्वरूपको अनुभव नहीं छ । जिहितै इसो विचारिवो अशुद्धरूप विकल्प छे, वा कहतां अथवा, अकर्तृत्व नय करि जीव अकर्ता छे, च कहता तथा, अभोक्तृत्व नय करि जीव, मा कहतां भोक्ता नहीं छे सो भक्ति ही होहु । इसो विचारतां फुनि शुद्ध स्वरूपको अनुभव नहीं छे । जिहितै प्रोता इह आत्मनि क्वचित् कर्तुं न शक्य प्रोता कहतां कोई नय विकल्प जिहिको ब्यौरो अन्य करै छे अन्य भोगवै छे इसो विकल्प, अथवा जीव कर्ता छे भोक्ता छे इसो विकल्प, अथवा जीव कर्ता न छे भोक्ता न छे इसो विकल्प, इहि आदि देइ अनंत विकल्प छे तौ

न छे। इसो कहिजे छे व्यवहारिकदृशा एव केवलं–कहतां झूठा व्यवहार दृष्टि करि ही, तस्य कहता कर्ता, च कहतां तथा, कर्म्म कहतां कीयो कार्य, विभिन्नं इष्यते कहतां भिन्न२ छे जीव ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मको कर्ता इसो कहिवाको छतो छे। जिहिंते तकरीर इसी जो रागादि अशुद्ध परिणामको जीव करे छे। रागादि अशुद्ध परिणामहको होता ज्ञानावरणादि रूप पुद्गल द्रव्य परिणवे छे। जिहिंते कहिवाको इसो छे जो ज्ञानावरणादि कर्म जीवें कीयो, स्वरूप विचारतां इसो कहिवो झूठा छे जिहिंते, यदि निश्चयेन चिंत्यते–यदि कहतां जो, निश्चयेन कहता सांची व्यवहारदृष्टि करि जो देखिजे, सो कांयो देखिजे, वस्तु कहतां स्वद्रव्य परिणाम, परद्रव्य परिणाम रूप वस्तुको स्वरूप। सदा एव कर्तृकर्म एकं इष्यते–सदा एव कहतां सर्व ही काल, कर्तृ कहता परिणवे छे जो द्रव्य, कर्म कहतां द्रव्यको परिणाम एकं इष्यते कहतां जो कोई जीव अथवा पुद्गल द्रव्य आपणा परिणामहसो व्याप्य व्यापक रूप छे तिहिंते कर्ता सोई, परिणाम जिहि द्रव्यसौं कहतां व्याप्य व्यापकरूप छे तिहिंते कर्म इसो, इष्यते कहता विचारतां घटाट छे अनुभव आवे छे। अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्य कर्ता अन्य द्रव्यको परिणाम अन्य द्रव्यको कर्म इसो, तो अनुभव माहे घटाट नहीं जिहिंते दोय द्रव्यको व्याप्य व्यापकपनो नहीं छे।

भावार्थ–यहां यह बताया है कि हरएक द्रव्य अपने स्वभावमें ही परिणमन करता है, कोई द्रव्य अन्य द्रव्यरूप नहीं परिणमन कर सक्ता है, जीव अचेतन रूप व अचेतन चेतनरूप नहीं होता है। जब जो द्रव्य परिणमता है तब व्यवहार दृष्टिसे यह कहते हैं कि द्रव्य जो कर्ता है व उसका परिणाम उसका कर्म है, निश्चयसे दोनों एक ही हैं। यह कहना कि जीवने ज्ञानावरणादि कर्म किये। इसलिये जीव कर्ता है। आठ कर्म जीवका कर्म है [illegible] ही अपना व्यवहार है। क्योंकि आठों कर्मरूप स्वयं पुद्गल द्रव्य [illegible] होते हैं तब अशुद्ध रागादि भावोंका निमित्त होता है। स्वानुभवके समयमें कर्ता कर्मका [illegible] उचित नहीं है। [illegible] आत्माको ही अनुभवना योग्य है।

[illegible] कहते हैं –

[illegible] सहित अर्थ–अर्थ कह्यो थो सो गाढ़ो कीजे छे। येन इह एकं वस्तु अन्य वस्तुनः न–येन कहतां जिहि कारण तहि, इह कहतां छ द्रव्य माहे कोई, एकं वस्तु कहतां जीव द्रव्य अथवा पुद्गल द्रव्य सत्तारूप छतो छे, अन्य वस्तुनः न कहतां अन्य द्रव्य सो सर्वथा न मिले इसी द्रव्यहको स्वभावकी मर्याद छे। तेन खलु वस्तु तत् वस्तु तेन कहता तिहि कारण तहि, खलु कहता निहचासो, वस्तु कहता जो कोई द्रव्य, तत् वस्तु कहतां [illegible], स्वरूप छे ज्यों छे त्योंही छे। अयं निश्चयः–कहता इसो तो निहचो छे। [illegible] इसो छे, अनुभवगोचर फुनि आवे छे। कः अपरः बहिर्लुठन्नपि अपरस्य किं करोति–कः अपरः कहतां इसो कौन द्रव्य छे जो, बहिर्लुठन्नपि कहतां ज्ञेय वस्तुको जाने छे तथापि, अपरस्य किं करोति कहता ज्ञेय वस्तु सो सम्बध करि न सके। भावार्थ इसो–जो वस्तु स्वभावकी मर्यादा तो इसी छे जो कोई द्रव्यसों एकरूप नहीं होइ छे। इसा उपरांत जीवका स्वभाव छे जो ज्ञेय वस्तुको जाने इसो छे तो होउ तौं फुनि धोखो तो काई न छे। जीव द्रव्य ज्ञेयको जाननो होनो आपणो स्वरूप छे।

भावार्थ–इस विश्वमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल ऐसे छः मूलद्रव्य हैं। इनमें अगुरुलघु नामका एक साधारण गुण है जिसके द्वारा कोई द्रव्य अपनी मर्यादाको नहीं उल्लंघन कर सक्ता है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होसक्ता है। तब यह निश्चय है [illegible] द्रव्य यदि अपने ज्ञान स्वभावसे सर्व ज्ञेयोंको जानता है तौभी वह अपने स्वभा[illegible] ही [illegible] है, जिनको जानता है उनरूप कदापि नहीं होता है।

[illegible]–[illegible] ॥
[illegible] ॥ ५० ॥

[illegible]–यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किंचनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात् ॥ ?१॥

सो कहतां रागद्वेष दोइ जाति अशुद्ध परिणाम वस्तुत्वप्रणिहितदृशा दृश्यमानौ कहतां सत्ता स्वरूप दृष्टि विचारया होता, न किंचित् कहतां कछु वस्तु नाहीं। भावार्थ इसो-जो जैसे सत्ता स्वरूप एक जीव द्रव्य छतो छे तथा रागद्वेष कोऊ द्रव्य नाहीं। जीवकी विभाव परिणति छे, सोई जीव जो आपणा स्वभाव परिणवे, तौ रागद्वेष सर्वथा मिटे। इसो सुगम छे। किछु मुशकिल नाहीं-अशुद्ध परिणति मिटे छे, शुद्ध परिणति होइ छे।

भावार्थ-यह है कि मिथ्यात्वके उदयसे यही ज्ञान रागद्वेष रूप विभाव परिणामको परिणमन कर जाता है। यदि निश्चय दृष्टिसे विचारा जावे तो रागद्वेष भाव किसी एक द्रव्यका निज स्वभाव नहीं है। अनादिसे अनंतकाल तक गुण गुणीके समान सत्ता रूप रहनेवाली वस्तु नहीं है। मोह कर्मके निमित्तसे आत्माके ज्ञानभावमें झलकते हैं। यदि आत्मा अपने ज्ञानभावमें ही परिणवै रागद्वेष न होवै तो इनका कहीं पता भी न चले। ये तो न आत्माके स्वभाव हैं न पुद्गलके ही स्वभाव हैं। निमित्त नैमित्तिक नाशवन्त क्षणिक औपाधिक भाव हैं। ये हमारा स्वरूप नहीं, ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टी जीव अपने स्वरूप रूप रहकर स्वानुभव करता रहता है, उससे रागद्वेष मिटते हैं और वह वीतरागी होता हुआ पूर्ण ज्ञानी होजाता है। परमात्मप्रकाशमें कहते हैं—

अप्पइ णाणु परिच्चयहि, अण्णु ण अत्थि सहाउ। इउ जाणेविणु जोइयहु परइ म बंधउ राउ॥२८६॥

भावार्थ-आत्मा ज्ञान स्वभाव है इसके सिवाय और कोई स्वभाव इसका नहीं है ऐसा जानकर हे योगी तू पर पदार्थमें राग मत बांध।

अवस्था कहतां द्रव्यको स्वरूप देखतां सांची दृष्टिकरि । रागद्वेषोत्पादक कहतां अशुद्ध चेतनारूप छे जे रागद्वेष परिणाम त्यहको उपजाइवा समर्थ, न वीक्ष्यते कहतां नहीं देखिये छे। क्यों अर्थ गाढ़ो कीजै छे । यस्मात् सर्वद्रव्योत्पत्तिस्वस्वभावेन अंतश्चकास्ति-अन्तः कहतां जिहि कारण जिहि, सर्वद्रव्य कहतां जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश तिहिकी उत्पत्ति कहतां अखंड धारा रूप परिणाम, स्वस्वभावेन कहतां आपणा २ स्वरूप सों छे, अन्तश्चकास्ति कहतां योंही अनुभव ठहराई अर योंही वस्तु सधै अन्यथा विपरीत छे। जिसी छे परिणति अत्यंत व्यक्त-कहतां अति ही प्रगट छे।

भावार्थ-यहां यह स्पष्ट किया है कि रागद्वेष परिणाम जीवका ही विभाव भाव है क्योंके जीवमें एक तरहकी वैभाविक शक्ति है जिससे मोह कर्मके उदयके निमित्तसे जीवका ज्ञानभाव स्वयं विभाव रूप होजाता है । कोई दूसरा द्रव्य बलात्कार रागद्वेष नहीं उत्पन्न कर देता है । जैसे पानीमें उष्णरूप परिणमनकी शक्ति है तब अग्निके संयोग होनेसे उष्ण होजाता है। यदि जीवमें विभाव परिणमन शक्ति न होती तो रागद्वेषका झलकाव कभी होही नहीं सकता था।

सवैया ३१ सा—कोउ शिष्य कहै स्वामी राग द्वेष परिणाम ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कौन है ॥ पुद्गल करम जोग किधौं इन्द्रिनिके भोग, कीधौं धन कीधौं परिजन कीधौं भौन है ॥ गुरु कहै छहौं द्रव्य अपने अपने रूप सबनिको सदा असहाई परिणौन है ॥ कोउ द्रव कहूको न प्रेरक कदाचि तातें राग द्वेष मोह मृषा मदिरा अचौन है ॥ ६० ॥

काव्य-यदिह भवति रागद्वेषदोषप्रसूतिः कतरदपि परेषां दूषणं नास्ति तत्र ।
स्वयमयमपराधी तत्र सर्पत्यबोधो भवतु विदितमस्तं यात्वबोधोऽस्मि बोधः ॥ २० ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-इसो जो जीव द्रव्य संसार अवस्था विषैं रागद्वेष मोह अशुद्ध चेतनारूप परिणवै छ। सो वस्तुको स्वरूप विचारतां जीवको दोष छे। पुद्गल द्रव्यको दोष कांई न छे। जिहिते जीवद्रव्य आपणो विभाव मिथ्यात्व परिणवतो होतो आपणा अज्ञानपणासे हीयो रागद्वेष मोहरूप आप परिणवै छे जो कदाचि शुद्ध परिणति रूप होइ करि शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप परिणवै रागद्वेष मोह रूप न परिणवै तो पुद्गल द्रव्यको कांई जारो छे। इह यदि रागद्वेषप्रसूतिः भवति तत्र कतरत् परेषां दूषणं नास्ति-इह कहतां अशुद्ध अवस्था विषै, यत् कहतां जो वस्तु रागद्वेष, प्रसूति कहतां इत्यादि अशुद्ध परिणति होइ छे, तत्र कहतां अशुद्ध परिणतिकै होतां; कतरत् अपि कहतां अति ही थोरो पुनि, परेषां दूषणं नास्ति कहतां अन्य ज्ञानावरणादि कर्मको उदय अथवा शरीर मनो वचन अथवा पंचेन्द्रिय भोग सामग्री इत्यादि घणी सामग्री छे। त्याह मांहे कोईको दूषण तो न्ही छ। सो क्यों छे। अयं स्वयं अपराधी, तत्र अबोधः

सन्दधिति—अयं कहतां संसारी जीव, स्वयं अपराधी कहतां आपे मिथ्यात्व रूप परिणवतो होतो शुद्ध स्वरूपका अनुभव तहि भ्रष्ट छे कर्मको उदय थकी हुआ छे, अशुद्ध भाव तिहिको आपो करि माने छे, तत्र कहतां अज्ञानको अधिकार होतां, अबोधः सर्पति कहतां रागद्वेष मोहरूप अशुद्ध परिणति होइ छे। भावार्थ इसो जो जीव आपे मिथ्यादृष्टी होतो परद्रव्य आपो जानि अनुभवै तदा रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणति होतां कौन रोकै। तिहितै पुद्गल कर्मको कौन दोष ? विदितं भवतु—कहता योंही होउ। रागादि अशुद्ध परिणतिरूप जीव परिणवै छे सो जीवको दोष छे, पुद्गल द्रव्यको दोष नहीं। सांपत आगलो विचार क्यों छे कौन छे। उत्तर इसो जो आगिलो यह विचार जो, अबोधः अस्तं यातु—अबोधः कहतां मोह रागद्वेष रूप छे अशुद्ध परिणति तिहिको विनाश होउ, तिहिको विनाश हुआ थको। बोधः अस्मि—कहता हौं शुचि रूप अविनश्वर अनादि निधन जिसो हौं तिसो छतो ही छौं। भावार्थ इसो—जो जीव द्रव्य शुद्ध स्वरूप छे तिहिको अन्तर मोह रागद्वेषरूप अशुद्ध परिणति तिहि अशुद्ध परिणतिको मेटिवाका उपाय जो सहज ही द्रव्य शुद्धस्वरूप परिणवै अशुद्ध परिणति मिटै। और तो कोई करतूति उपाय नहीं छे तिहि अशुद्ध परिणतिके मिटवा जीव वस्तु जिसो छे तिसो छे काई घाट बाढि तो नहीं।

भावार्थ—यहांपर यह दिखलाया है कि रागद्वेष भावोंके होनेमें पुद्गलादि द्रव्यो [illegible] कोई दोष नहीं है। इस जीवमें विभाव परिणमनकी शक्ति है व इसके साथ अनादि [illegible] कर्मोंका बंध व उदय चला आता है उनके निमित्तसे यह स्वयं अज्ञानी होकर [illegible] रागद्वेष मोह करता है। यदि यह अपने शुद्ध स्वरूपको ग्रहण करे [illegible] ही [illegible] और [illegible] प्राप्त होजावे।

[illegible] रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।

[illegible] मात्र आपणी कृति न छे, आपणी विभाव परिणति करतां विकार छे। आपणी शुद्ध परिणति होता निर्विकार छे, इसो कहिजे छे। एते अज्ञानिनः किं रागद्वेषमयी भवंति सहजां उदासीनतां किं मुंचंति–एते अज्ञानिनः कहतां छता छे जे मिथ्यादृष्टी जीवराशी, किं रागद्वेषमयी भवंति कहतां रागद्वेष मोह अशुद्ध परिणतिसो मग्न इसा क्यों होहि छे, तथा सहजां उदासीनतां किं मुंचंति कहता सहज ही छे जो सकल परद्रव्य तहि भिन्नपनो इसी प्रतीतिको क्यों छोडे छे। भावार्थ इसो–जो वस्तुको स्वरूप प्रगट छे। विचल हि छे सो पूरो अचंभो छे। किसा छे अज्ञानी जीव तत् वस्तुस्थितिबोधवंध्यधिषणा। तत् वस्तु कहतां शुद्ध जीवद्रव्य तिहिकी, स्थिति कहतां स्वभावकी मर्यादा तिहिको, बोध कहतां अनुभव तिहिंते, वंध्य कहतां शून्य छे। इसी धिषणा कहता बुद्धि जांहकी इसा छे। जिहि कारण नहि अयं बोधा कहता इसो छे जे चेतनामात्र जीवद्रव्य, बोध्यात् कहतां समस्त ज्ञेयको जाने छे तिहिथकी, । कामपि विक्रियां न यायात कहतां रागद्वेष मोहरूप कोनहु विक्रियाको नहीं परिणमे छे। किसो छे जीवद्रव्य, पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा-पूर्ण कहतां जसो छे तैसा तिहिसो इसो छे, एक कहतां समस्त विकल्प तहि रहित इसो छे, अच्युत कहतां अनंतकाल पर्यंत स्वरूप तहि नहीं चले छे इसो छे, शुद्ध कहता द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म नहि रहित छे इसो छे, बोध कहता ज्ञानगुण सोई छे, महिमा कहतां सर्वस्व तिहिको इसो छे। दृष्टांत कहिजे छे। ततः इतः प्रकाश्यात् दीपः इव–ततः इतः कहतां [illegible] आगे पीछे, प्रकाश्यात् कहता दीवाका उजाला करि देखिजे छे घटो [illegible] इत्यादि तिहिथकी, दीप इव कहता ज्यों दीवाको कछो विकार नहीं उपजे छे। भावार्थ इसो [illegible], दीपक प्रकाश स्वभाव छे घट पटादि अनेक वस्तुको प्रकाशे छे, प्रकाशतो [illegible] प्रकाश मात्र स्वरूप सो रहे छे। विकार तो कोई देख्यो नहीं। तथा जीवद्रव्य ज्ञान स्वरूप छे, समस्त ज्ञेयको जाने छे, जानतो हौतो जो आपणो ज्ञान मात्र [illegible] रहे छे। ज्ञेयके जानतें विकार कोई न छे इसो वस्तुको स्वरूप जाने न छे [illegible]।

खण्डान्वय सहित अर्थ—स नित्योदयं समयस्य सारं अचिरात् अवश्यं विंदति—स कहता इसो छे जो सम्यग्दृष्टि जीव। नित्योदय कहता नित्य उदयरूप, समयस्य सारं कहता सकल कर्मको विनाश करि प्रगट हुओ छे जो शुद्ध चैतन्य मात्र तिहिको, अचिरात् कहता अति ही थोरा काल माहे, अवश्य विंदति कहता सर्वथा आस्वाद करै छे। भावार्थ इसो जो निर्वाण पदको प्राप्त होई। किसो छे। यः तत्र एव स्थितिं एति—यः कहता जो सम्यग्दृष्टि जीव, तत्र कहता शुद्ध चैतन्य मात्र वस्तु विषे, एव कहता एकाग्र होइ करि, स्थितिं एति कहता स्थिरताको करे छे। च तं अनिशं ध्यायेत् च कहता तथा, तं कहता शुद्ध स्वरूपको अनिशं ध्यायेत् कहता निरन्तर अनुभवे छे, च तं चेतति—कहता वारंवार तिहि शुद्ध स्वरूपको स्मरण करै छे, च कहता और, तस्मिन् एव निरंतरं विहरति—तस्मिन् कहता शुद्ध चिद्रूप विषे, एव कहता एकाग्र होई करि निरंतर विहरति कहता अखण्डधारा प्रवाह रूप प्रवर्ते छे। किसो होतो संतो, द्रव्यान्तराणि अस्पृशन्—कहता समस्त कर्मके उदय तहिं नानाप्रकार अशुद्ध परिणतिको सर्वथा छोडतो होतो। सो चिद्रूप कैसो छे। यः एष दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मकः—यः एष जो यह आत्माको प्रत्यक्ष छे। दृग कहता दर्शन, ज्ञप्ति कहता ज्ञान, वृत्त कहता चारित्र सोई छे आत्मा कहता सर्वस्व तिहिको इसो छे, और किसो छे। मोक्षपथ—कहतो जिहिके शुद्ध स्वरूप परिणमता सकल कर्म क्षय होहि छे। और किसो छे। एकः कहता समस्त विकल्प तहि रहित छे और किसो छे, नियत—कहतो द्रव्यार्थिक दृष्टि देखता जिसो छे तिसो छे तिहिंते हीन रूप नहीं छे, अधिक नहीं छे।

भावार्थ—जो कोई अपने ही शुद्ध आत्माको ध्याता है, स्मरण करता है, अनुभव करता है वही शीघ्र नित्य उदयरूप परमात्मपदको पाता है। शुद्ध आत्माका ध्यान ही निश्चय रत्नत्रयमई मोक्षमार्ग है। इसके सिवाय और कोई मार्ग हो नहीं सकता। यही सर्व विकल्प रहित मात्र स्वानुभवगम्य है। तत्व०में कहा है—

शुद्धे स्वे चिद्रूपे या स्थितिरिह रतिस्सम्यक्। सम्यक्चारित्रं परं विद्धि निश्चयात्कर्मनाशकम् ॥१८।१८॥

भावार्थ—जो शुद्ध निज आत्माके स्वरूपमें निश्चलताके साथ थिर होना है वही निश्चयसे सम्यक्चारित्र है, वही कर्मोंका नाश करनेवाला है।

सवैया ३१ सा—कोउ दृग ज्ञान चरणातममें बैठि ठौर भयो निरमोह पर वस्तुको न परसै ॥ शुद्धता विचारै ध्यावै शुद्धतामें केलि करै शुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा बरसै ॥ त्यागि तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमको करि थान भ्रष्ट नष्ट करै और करसै ॥ सोई विकलप विजई अलप काल माहि त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसै ॥ ११५ ॥

दोहा—गुण पर्यायमें दृष्टि न दीजै। निर्विकल्प अनुभव रस पीजै ॥
आप समाइ आपमें लीजै। तनुपौ मेटि अपनपौ कीजै ॥ ११६ ॥

मंत्र निमित्त कारण मानते हैं और शुद्धात्मानुभवको ही मोक्षका उपाय मानते हैं वे ही मोक्षमार्गी हैं। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

ति विंतुदिवन्हि नवइ मृग णिमतु, एवहि लजइ णाणियउ बधइ हउ मुणतु ॥ २१५ ॥

भावार्थ–शिष्यादि करनेमें व शास्त्रोंके पठन पाठनमें मूढ़ लोग निःसंदेह हर्ष मानते हैं। परन्तु जो आत्मज्ञानी हैं वे इस रागको बन्धका कारण जानते हुए इन कार्योंको करते हुए अपनेको छोटा मानते हैं व लज्जा का पात्र समझते हैं। ये सब क्रिया प्रमत्त गुणस्थानमें होती हैं। अप्रमत्त गुणस्थानमें एकाग्रपने शुद्धात्माका ध्यान है इसीको सार कार्य समझते हैं।

सवैया ३१ सा—केई मिथ्यादृष्टी जीव धरै जिन मुद्रा भेष क्रियामें मगन रहे कहै हम यती हैं ॥ अतुल अखण्ड मल रहित सदा उद्योत ऐसे ज्ञान भावसों विमुख मूढमती हैं ॥ आगम संभाल दोष टालें व्यवहार भाले पाले व्रत यद्यपि तथापि अविरती हैं। आपको कहावें मोक्ष मारगके अधिकारी मोक्षसों सदैव रुष्ट दुष्ट दुरमती हैं ॥ ११८ ॥

आर्या छन्द–व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः।

तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तंदुलम् ॥ ४८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–जनाः कहता कोई ऐसा छे मिथ्यादृष्टी जीव। परमार्थं कहतां शुद्ध ज्ञान मोक्षमार्ग छे, इसी प्रतीतिको नो कलयन्ति–कहता नहीं अनुभव करे छे, किसा छे, व्यवहारविमूढदृष्टयः–व्यवहार कहता द्रव्य क्रिया मात्र तिहि विषै, विमूढ कहता क्रिया मोक्षको मार्ग इसो मूढपनो, इसी झूठी छे दृष्टि कहता प्रतीति जाहको इसा छे। दृष्टांत कहिजे छे-यथा लोक, वर्तमान कर्मभूमि विषै। तुषबोधविमुग्धबुद्धयः जनाः तुष कहता धानके ऊपरको तुष मात्र ताको, बोध कहता इसो ही मिथ्याज्ञान तिहि करि, विमुग्ध कहता विकल हुई छे बुद्धि कहतां मति जाकी इसा छे, जनाः कहता केई मूर्ख लोग, इह कहता वस्तु ज्यों छे त्योंही छे तथापि अज्ञानपने थकी, तुषं कलयन्ति कहता तुसको अंगीकार करे छे, तंदुलं न कलयन्ति कहता चावलको मरम नहीं पावे छे। तथा जे केई क्रिया मात्रको मोक्षमार्ग जाने छे, आत्माको अनुभव नहिं जाने छे, ते पुनि इसा जानिवा।

भावार्थ–जैसे कोई तुष मात्रको ही चावल माने परन्तु उसके भीतर जो सफेद चावल है उसको चावल न माने तो ऐसे मूर्खको तुष ही मिलेगा, चावलका लाभ कभी नहीं होगा। इस तरह जो मात्र बाहरी क्रियाकाण्डको ही मोक्षमार्ग मानते हैं, परन्तु स्वानुभव रूप अंतरंग मोक्षमार्गको नहीं पहचानते हैं उनको बाहरी चारित्रसे पुण्य बंध तो हो जायगा परन्तु मोक्षमार्ग या मोक्षका लाभ नहीं होगा। मोक्षमार्ग जीवका निज भाव है।

परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जे दंसणि अवयारणु अवलवि एव मुण तु परमसमाहिविवज्जिउ ...ज्झि हवइ सि ...३ ॥ १२

अस्तिरूप भी है नास्तिरूप भी है। एकरूप भी है अनेक रूप भी है। नित्यरूप भी है अनित्यरूप भी है, इत्यादि। सो इस प्रकरणको कहेंगे। दूसरे यह भी बतावेंगे कि मोक्षका उपाय क्या है व मोक्ष क्या पदार्थ है।

चौपाई—अद्भुत ग्रन्थ अध्यातम वाणी। समुझे कोई विरला प्राणी॥
यामें स्याद्वाद अधिकारा। ताको जो कीजे विस्तारा॥ १॥
तोजु ग्रन्थ अति शोभा पावे। वह मंदिर यह कलश कहावे॥
तब चित अमृत वचन गट खोले। अमृतचन्द्र आचारज बोले॥

दोहा—कुन्दकुन्द नाटक विषै, कह्यो द्रव्य अधिकार। स्याद्वाद न साधि मैं, कहूं अवस्था द्वार॥ ३॥
कहूं मुक्ति पदकी कथा, कहूं मुक्तिको पंथ। जैसे घृत कारिज जहां, तहां कारण दधि मन्थ॥ ४॥

चौपाई—अमृतचन्द्र बोले मृदुवाणी। स्याद्वादकी सुनो कहानी॥
कोऊ कहे जीव जग माहीं। कोऊ कहे जीव है नाहीं॥ ५॥

दोहा—एकरूप कोऊ कहे, कोऊ अगणित अंग। क्षणभंगुर कोऊ कहे, कोऊ कहे अभंग॥ ६॥
नय अनन्त इहविधी है, मिले न काहूं कोय। जो सब नय साधन करे, स्याद्वाद है सोय॥७॥
स्याद्वाद अधिकार अब, कहूं जैनका मूल। जाके जाने जगत जन, लहे जगत जलकूल॥८॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-बाह्यार्थैः परिपीतमुज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभव-
द्विश्रान्तं पररूप एव परितो ज्ञानं पशोः सीदति।
यत्तत्तदिह स्वरूपत इति स्याद्वादिनस्तत्पुन-
र्दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः पूर्णं समुन्मज्जति॥ २॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-इसो जो ज्ञानमात्र जीवको स्वरूप तिहि विषैं फुनि प्रश्न चारि करवाको छे ते कौन। एक तो प्रश्न इसो जो ज्ञान ज्ञेयको साराको छे कै आपणा साराको छे। दूजो प्रश्न इसो जो ज्ञान एक छे कै अनेक छे, तीजो प्रश्न इसो जो ज्ञान अस्ति है कै नास्ति है, चौथा प्रश्न इसो जो ज्ञान नित्य छे कै अनित्य छे। त्यांको उत्तर इसो जो जावंत वस्तु छे ता तेत द्रव्यरूप छे, पर्यायरूप छे, तिहिको व्योरो-द्रव्यरूप कहतां निर्विकल्प ज्ञानमात्र वस्तु, पर्याय रूप कहतां स्वज्ञेय अथवा परज्ञेयको जानता ज्ञेयकी आकृति प्रतिबिंबरूप परिणवै छे ज्ञान, भावार्थ इसो-जो ज्ञेयको जाननेरूप परिणति ज्ञानको पर्याय, तिहितैं ज्ञानको पर्याय रूपकै कहतां ज्ञान ज्ञेयको साराको छे वस्तु मात्रकै कहतां आपणा साराको छे। एक प्रश्नको समाधान इसो। दूजो प्रश्नको समाधान इसो जो ज्ञानको पर्याय मात्रकै कहतां ज्ञान अनेक छे, वस्तु मात्रकै कहतां एक छे। तीजो प्रश्नको उत्तर इसो जो ज्ञानको पर्याय रूपकै कहतां ज्ञान नास्ति छे। ज्ञानको वस्तु रूप विचारतां ज्ञान अस्ति छे। चौथो प्रश्नको उत्तर इसो जो ज्ञानको पर्याय मात्रकै कहतां ज्ञान अनित्य छे, वस्तु मात्रकै कहतां ज्ञान नित्य छे। इसो प्रश्न करतां इसो समाधान

स्वरूप, इहिको नाम छे। वस्तुको स्वरूप यों ही है तथा योंहै साधना वस्तु
मात्र छे। जे केई मिथ्यादृष्टी जीव वस्तुको वस्तुरूप छे तथा सोई वस्तु पर्यायरूप
छे इसा नहीं मानहि छे। सर्वथा वस्तुरूप मानहि छे अथवा सर्वथा पर्याय मात्र मानहि छे
त्यहि एकांतवादी मिथ्यादृष्टि कहिजे। जिहिते वस्तु मात्र विना मानता पर्याय मात्र
मानता पर्याय मात्र फुनि नहीं सधे छे तहां अनेक प्रकार साधन बाधन छे अवसर पाय
कहि। अथवा पर्यायरूप विन मानता वस्तुमात्र मानतां वस्तु फुनि नहीं सधे छे तहां
भी अनेक युक्ति छे अवसर पाय कहिस्या। एतह मांहे केई मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानको
वस्तुरूप मानहि छे वस्तुरूप नहीं मानहि छे इसो मानता ज्ञानको ज्ञेयको साधको मानहि
छे तहको समाधान इसो जो यो तो एकांतपने ज्ञान सधे नहीं। जिहिते ज्ञान आपणा
स्वरूप छे इसो कहिजे छे। पशो ज्ञान सीदति-पशो कहता एकांतवादी मिथ्यादृष्टिको
मानै छे जो ज्ञान पर ज्ञेयको साधको छे इसा मानतां, ज्ञान कहता शुद्ध जीवकी सत्ता,
सीदति कहता अस्तित्वपनो वस्तुपनाको नहीं पावै छे। भावार्थ इसो-जो एकांतवादीके
इसा वस्तुको अभाव सधे छे। वस्तुपनो नहीं सधे छे जिहिंते किसो मानै छे मिथ्यादृष्टि
जीव, इसो मानै छे किसो छे ज्ञान, बाह्यार्थ परिपीतम्-बाह्यार्थ कहता ज्ञेय वस्तु त्याह
करि, परिपीत कहता सर्व प्रकार निगल्यो छे। भावार्थ इसो जो मिथ्यादृष्टि जीव इसो मानै
छे जो ज्ञान वस्तु नहीं छे ज्ञेय करि छे सो फुनि जेही काल उपजै छे तेही काल विनसै छे।
जैसा घट ज्ञान घट छतां छे, प्रतीति इसी जो जो घट छे तो घटज्ञान छे। यदा घट नहीं थो
तदा घटज्ञान नहीं थो, यदा घट न होयसी तदा घटज्ञान न होयसी। केई मिथ्यादृष्टी
जीव ज्ञान वस्तुको विन मानता ज्ञानको पर्याय मात्र मानता इसो मानहि छे। और किसो
मानहि छे। किसो छे ज्ञान। उज्झितनिजप्रव्यक्तिरिक्तीभवत्-उज्झित कहतां
मूल तहि विनश्यो छे इसी निज प्रव्यक्ति कहता ज्ञेयका मानपने मात्र ज्ञान इसो पायो छे
नाम मात्र जिहिकरि, रिक्तीभवत् कहतां ज्ञान इसा नाम तहि फुनि विनश्यो छे इसो
मानहि मिथ्यादृष्टी एकांतवादी जीव। और किसो मानहि छ। किसो छे ज्ञान। परित
पररूप एव विश्रांत-परित कहता मूल तहि ऐह करि, पररूप कहता ज्ञेय वस्तु निमित्त,
एव कहतां एकांतपनो, विश्रांत कहतां ज्ञेय करि हुओ ज्ञेय करि विनश्यो। भावार्थ इसो-
जो यथा भीति विषै चित्रो यदा भीति न थी तदा न थो, यदा भीति छ तदा छे, यदा
भीति न होयसी तदा न होयसी, इहिते प्रतीति इसी उपजै छे चित्रको सर्वस्व भीति कारण
छे। तथा यदा घट छे तदा घटज्ञान छे, यदा घट न थो तदा घटज्ञान न थो, यदा घट न
होयसी तदा घट ज्ञान न होयसी, तिहिते इसी प्रतीति उपजै छे जो ज्ञानको सर्वस्व ज्ञेय

करतां छे, केई अज्ञानी एकांतवादी इसो मानहि छे तिहिंतै इसा अज्ञानीके मत विषै ज्ञान वस्तु इसो नहीं पाइमै छे। स्याद्वादीके मत विषैं ज्ञान वस्तु इसी पाइजे छे। पुनः स्याद्वादिनः तत् पूर्ण समुन्मज्जति-पुनः कहतां एकांतवादी कहै छे त्यो न छे, स्याद्वादी कहै छे त्यो छे । स्याद्वादिनः कहतां एक सत्ताको द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप मानहि छे इसा जे सम्यग्दष्टि जीव त्यांइके मत विषैं, तत् कहतां ज्ञान वस्तु, पूर्ण कहतां ज्यों छे त्योंही छे। ज्ञेयतै भिन्न स्वय सिद्ध आप करि छे, समुन्मज्जति कहतां एकांतवादीके मत मूलतहि मिटयो थो सोई ज्ञान स्याद्वादीके मत ज्ञान वस्तु प्रगट हूओ। किसाथकी प्रगट हूओ। दूरोन्मग्नघनस्वभावभरतः-दूरं कहता अनादि तहि लेइ करि, उन्मग्न कहतां स्वयं सिद्ध वस्तुरूप प्रगट छे इसो, घन कहतां अमिट, स्वभव कहतां ज्ञान वस्तुको सहज तिहिको, भरतः कहतां न्याय करतां अनुभव करतां यों छे इसा सत्यपना थकी। किसो न्याय किसो अनुभव इसा दूवे ज्यो होहि छे त्यों कहिजे छे। यत् तत् स्वरूपतः तत् इति-यत् कहतां जो वस्तु, तत् कहतां सो वस्तु, स्वरूपतः तत् कहतां आपणा स्वभाव थकी वस्तु छे, इति कहता इसो अनुभतां अनुभव फुनि उपजै छे। मुक्ति फुनि प्रगट होइ छे। अनुभव निर्विकल्प छे मुक्ति इसी जो ज्ञान वस्तु द्रव्यरूप विचारतां आपणे स्वरूप छे, पर्यायरूप विचारतां ज्ञेय करि छे। यथा ज्ञान वस्तु द्रव्यरूप ज्ञानमात्र छे पर्यायरूप घट ज्ञान मात्र छे तिहिंतै पर्यायरूप देखतां घटज्ञान ज्यों कह्यो छे घटके छतां छे घटके विन छतां नहीं छे त्योंही छे। द्रव्यरूप अनुभवतां घट ज्ञान इयो न देखिंजे, ज्ञान इसो देखिंजे तो घट तहि भिन्न आपणे स्वरूप मात्र स्वय सिद्ध वस्तु छे। इसे प्रकार अनेकांतके साधतां वस्तु स्वरूप सधै छे। एकांतपनै जो घट करतां घट ज्ञान छे ज्ञान वस्तु नहीं छे तो इयो चाहिजे। जो यथा घटके पासि बैठ्या पुरुषको घट ज्ञान होइ छे तथा जो कोई वस्तु घटके पासि धरिजे तीहै घट ज्ञान होमै इसा होता थांभाके पास घटको होता थांभाके घट ज्ञान चाहिमै सो योतो नहीं देखिंजे छे। तिहिंतै इसो भाव प्रतीति आवै छे। जिहि माहे ज्ञान शक्ति छती छे, तिहिको घटके पासि बैठ्या घटको देखतां विचारतां घट ज्ञानरूप यह ज्ञानको पर्याय परिणवै छे। तिहिंतै स्याद्वाद वस्तुको साधक छे, एकांतपनो वस्तुको नाश कर्ता छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि ज्ञान और ज्ञेय दो वस्तु स्वयं सिद्ध हैं। ज्ञान आत्माका गुण है वह अपने स्वभावसे ही ज्ञेयोंको जानता है यह वस्तु स्वभाव है, जैसे दर्पण अपनी कांतिके द्वारा ही झलकता है। ज्ञेय जो पर पदार्थ ज्ञानमें झलकते हैं वे भिन्न सत्ताको रखते हैं। ज्ञानकी सत्ता आत्मामें है, घट ज्ञेयकी सत्ता घटमें है। परस्पर ज्ञेय

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो जो कोई मिथ्यादृष्टी इसो छे जो ज्ञानको द्रव्यरूप मानै छे, पर्यायरूप नहीं मानै छे। तिहितै यथा जीव द्रव्यको ज्ञानवस्तु करि मानै छे तथा ज्ञेय जे पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य त्यांहको फुनि ज्ञेय वस्तु नहीं मानै छे, ज्ञान वस्तु मानै छे, तं हे प्रति समाधान इसो जो ज्ञान ज्ञेयको जानै छे इसो ज्ञानको स्वभाव छे तथापि ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप छे, ज्ञानरूप नहीं छे। पशुः स्वच्छंदं आचेष्टते—पशुः कहता एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, स्वच्छंद कहतां स्वेच्छाचार तिहिको व्यौरो जो किछू हेयरूप कछु उपादेय रूप इसो भेद नहीं करै छे। समस्त त्रैलोक्य उपादेय इसी बुद्धि करै छे। आचेष्टते कहतां इसी प्रतीति करितो निःशंकपनै प्रवर्तै छे। पशुः इव कहतां यथा तिर्यंच किसो होइ प्रवर्तै छे। विश्वमयः भूत्वा—कहतां अहं विश्वं इसो जानि आप विश्वरूप होई प्रवर्तै छे, इसो क्यों छे जिहितै, सकलं स्वतत्त्वाशया दृष्ट्वा—सकलं कहता जावंत ज्ञेय वस्तुको, स्वतत्त्वाशया कहता ज्ञानवस्तु बुद्धिकरि, दृष्ट्वा कहतां इसी गाढ़ी प्रतीतिको करि, इसी गाढी प्रतीति क्यों होइ छे जिहिनै, विश्वं ज्ञानं इति प्रतर्क्य—कहतां त्रैलोक्यरूप जो कोई छे सो ज्ञान वस्तु रूप छे इसो जानिकरि। भावार्थ इसो—जो ज्ञान वस्तु पर्यायरूप ज्ञेयाकार होइ छे सो मिथ्यादृष्टी पर्यायको भेद नहि मानै छे। समस्त ज्ञेयको ज्ञानवस्तु करि मानै छे। तीहे प्रति उत्तर इसो जो ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप छे ज्ञानरूप नहीं छे। इसो कहिजै छे। पुनः स्याद्वाददर्शी स्वतत्त्वं स्पृशेत—पुनः कहतां एकांतवादी ज्यों कहै छे त्यों ज्ञानको वस्तुपनो नहीं सिद्ध होइ छे। स्याद्वादी ज्यों कहै छे त्यों वस्तुपनो ज्ञानको सधै थे। जिहितै एकान्तवादी इसो मानै छे जो समस्त ज्ञानवस्तु छे सो योंकै मानतां लक्ष्य लक्षणको अभाव होइ छे। तिहिनै लक्ष्य लक्षणको अभाव होतां वस्तुकी सत्ता नहीं सधै छे। स्याद्वादी इसो मानै छे। ज्ञान वस्तु छे तिहिको लक्षण छे जो समस्त ज्ञेयको जानपनो तिहितै योंकै कहतां स्वभाव सधै छे। स्वभावके सधतां वस्तु सधै छे। तिहितै इसो कह्यो जो स्याद्वाददर्शी, स्वतत्व स्पृशेत कहता वस्तुको द्रव्य पर्यायरूप मानै छे इसो अनेकांत वादीं जीव ज्ञान वस्तु इसो साधवाको समर्थ होइ। स्याद्वादी ज्ञान वस्तुको मानै छे, विश्वात् भिन्नं—विश्वात् कहता समस्त ज्ञेय थकी, भिन्नं कहतां निरालो छे, और किसो मानहि छे, अविश्वविश्वघटितं—अविश्व कहतां समस्त ज्ञेय तहि भिन्नपनै करि, इसो छे विश्व कहतां द्रव्य गुण पर्याय तिहिकरि, घटितं कहता जिसो छे तिसो अनादि तहि स्वयं सिद्ध निःपन्न छे। इसो छे ज्ञान वस्तु, इसो क्यों मानै छे, यत् तत्—कहतां जो जो वस्तु, तत् पररूपतः न तत्—कहतां सो वस्तु पर वस्तु थकी वस्तु रूप नहीं छे। भावार्थ इसो-जो यथा ज्ञान वस्तु ज्ञेयरूप थकी न छे ज्ञानरूप थकी छे। तथा ज्ञेय वस्तु फुनि ज्ञान

वस्तु यद्यपि ... वस्तुरूप छे, तिहिंतें इसो अर्थ उपज्यो जो पर्याय द्वार करि ज्ञान विभक्त्व छे द्रव्य द्वार करि आत्मरूप छे। इसी भेद स्याद्वादी अनुभवै छे तिहितें स्याद्वाद वस्तु स्वरूपको साधक छे, एकान्तपनो वस्तुको घातक छे।

भावार्थ-यहांपर जब एकान्तवादियोंका निराकरण किया है जो सर्व जगतको एक ज्ञानरूप ही मानते हैं। जो ज्ञान और ज्ञेयको भेद नहीं करते हैं। जिनके मतमें सब वस्तु भ्रमरूप है। जैसे दर्पणमें पदार्थ झलकते हैं। पदार्थ अलग हैं, दर्पण अलग है। इसी तरह ज्ञेय अलग हैं, ज्ञान अलग है। ज्ञान सर्व ज्ञेयको जानते हुए अनेक प्रकार पर्याय दृष्टिसे देखनेमें आता है तौभी वह ज्ञान आत्माका गुण है आत्माको छोड़कर कहीं जाता नहीं है। आत्मा वस्तु अलग है, जिसको आत्मा जानता है वे सब वस्तु अलग हैं। ऐसा भेद अनेकान्त मत बताता है सो ही यथार्थ है।

सवैया ३१ सा—कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि समझे त्रिलोक पिंड आतम दरब है ॥ याहीतें स्वछंद भयो डोलै मुखहू न बोले कहै या जगतमें हमारोही परब है ॥ तासों ज्ञाता कहै जीव जगतसों भिन्न है प जगसों विकाशी सोहि याहीतें गरब है ॥ जो वस्तु सो वस्तु पर रूपसों निराली सदा निहचै प्रमाण स्याद्वादमें सरब है ॥ १४ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द—बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरतो विष्वग्विचित्रोल्लसद्

ज्ञेयाकारविशीर्णशक्तिरभितस्त्रुट्यन्पशुर्नश्यति।

एकद्रव्यतया सदाप्युदितया भेदभ्रमं ध्वंसयन्

एकं ज्ञानमबाधितानुभवनं पश्यत्यनेकान्तवित् ॥ ४ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो जो कोई एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव पर्याय मात्रको वस्तु मानै छे व स्तुको नहीं मानै छे तिहित ज्ञान वस्तु अनेक ज्ञेयको जानै छे तिहिको जानतो होतो ज्ञेयाकार परिणवै छे इसा जानिकरि ज्ञानको अनेक मानै छे एक नहीं मानै छे तिहि प्रति उत्तर इसो जो एक ज्ञानविन मानता अनेक ज्ञान मानता अनेक ज्ञान इसो नहीं सधै छ। तिहितें ज्ञान एक मानिकरि अनेक मानिबो वस्तुको साधक छै। इसो कहिवै छे। पशु कहता एकान्तवादी वस्तुको नहीं साधि सकै छे, किसो छे, अभित त्रुट्यन् कहता ज्यों मरै छे त्यों मूरो होइ छे। और किसो छे। विष्वग्विचित्रोल्लसत् ज्ञेयाकारविशीर्णशक्ति -विष्वक् कहता अनन्त छे, विचित्र कहता अनन्त प्रकार छे इसो छे, उल्लसत् कहतां प्रगटरूप छतो छे, ज्यो ज्ञेय कहतां छ द्रव्यका समूह तिहिको आकार कहता प्रतिबिम्ब रूप परिणयो छे इसो ज्ञानको पर्याय, तिहि करि, विशीर्णशक्ति कहतां एतावन्मात्र ज्ञान इसो श्रद्धा करता गयी छे वस्तु साधिवाकी समर्थता तिहिको इसो छे मिथ्यादृष्टि जीव, इसो क्यों छे, बाह्यार्थग्रहणस्वभावभरत -बाह्यार्थ कहता ज्ञेय

ज्ञेय वस्तु तिहिकी आकृति ज्ञानको परिणाम इसो छे, स्वभाव कहतां वस्तुको सहज तिहिको, भरतः कहतां कौनहूंके बहे वरज्यौ न जाइ इसो अमिटपनो तिहि थकी। भावार्थ इसो-जो ज्ञानको स्वभाव छे जो समस्त ज्ञेयको जान तो होतो ज्ञेयकी आकृति परिणवै। कोई एकांतवादी एतावन्मात्र वस्तुको जानतो होतो ज्ञानको अनेक मानै छे। तिहे प्रति स्याद्वादी ज्ञानको एकपनो साधै छे, अनेकांतवित् ज्ञानं एकं पश्यति-अनेकांतवित् कहतां एक सत्ताको द्रव्य पर्यायरूप मानै छे। इसो सम्यग्दृष्टि जीव, ज्ञानं एकं पश्यति कहतां ज्ञान वस्तु यद्यपि पर्याय करि अनेक छे तथापि द्रव्यरूप करि एक करि अनुभवै छे। किसो छे स्याद्वादी, भेदभ्रमं ध्वंसयन्-ज्ञान अनेक इसा एकांत पक्षको नहीं मानै छे। किसा थकी, एकद्रव्यतया-कहतां ज्ञान एक वस्तु छे। इसा अभिप्राय करि। किसा छे अभिप्राय, सदा व्युदितया कहतां सर्व काल उदय मान छे, किसा छे ज्ञान अबाधितानुभवनं-कहतां अखण्डित छे। अनुभव गोचर जिहि विषै ज्ञान वस्तु इसो छे।

भावार्थ-एकांती ज्ञानको अनेक ज्ञेयोंके आकार ही मानता है ज्ञानकी भिन्न सत्ता नहीं मानता है उसका यहा निराकरण है कि ज्ञान स्वभावसे एकरूप आत्माका गुण है। उसमें अनेक ज्ञेय झलकते हैं। इससे उसको अनेक रूप कह सक्ते हैं, परन्तु द्रव्य करके ज्ञान अपने एक ज्ञानरूप हीमें है। ऐसा मानना अनेकांत है व सम्यक्तका विषय है।

सवैया ३१ सा—कोउ पशु ज्ञानकी अनन्त विचित्रता देखि, ज्ञेयको आकार नानारूप विसतर्यो है ॥ ताहिको विचारी कहै ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके, एकान्त पक्ष लोकनिसो लर्यो है ॥ ताको भ्रम भंजिवेको ज्ञानवंत कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्यो है ॥ ज्ञायक स्वभाव पर्यायसों अनेक भयो, यद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्यो है ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द- ज्ञेयाकारकलङ्कमेचकचिति प्रक्षालनं कल्पय-

न्नेकाकारचिकीर्षया स्फुटमपि ज्ञानं पशुर्नेच्छति।
वैचित्र्येऽप्यविचित्रतामुपगतं ज्ञानं स्वतः क्षालितं
पर्यायैस्तदनेकतां परिमृशन्पश्यत्यनेकान्तवित् ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो-जो कोई मिथ्यादृष्टी एकांतवादी इसो छे। जो वस्तुको द्रव्य रूप मात्र माने छे, पर्यायरूप नहीं मानै छे, तिहितैं ज्ञानको निर्विकल्प वस्तु मात्र छे ज्ञेयाकार परिणतिरूप ज्ञानको पर्याय नहीं मानै छे। तिहितैं ज्ञेय वस्तुको जानतां ज्ञानको अशुद्ध पनो मानै छे तिहे प्रति स्याद्वादी ज्ञानको द्रव्यरूप एक पर्यायरूप अनेक इसो स्वभाव साधै छे। इसो कहिजे छे, पशुः ज्ञानं न इच्छति-कहतां एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, ज्ञानं कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तुको, न इच्छति कहतां न साधिसकै न अनुभव गोचर करि सकै। किसो छे ज्ञान, स्फुटं अपि-कहता प्रकाश रूप करि प्रगट छे

यद्यपि किसो छे एकांतवादी। प्रक्षाल्य सन्नयन्-कलंक प्रक्षालिवाको अभिप्राय करै छे, कौन विषै। ज्ञेयाकारकलंकमेचकचिति मेचक कहतां भावत ज्ञेय ज्ञान विषै वस्तु तिहिके, आकार कहतां ज्ञेयके जानता होई छे तिहिको आकृति ज्ञान इसो जो कलंक तिहिकरि मेचक कहतां अशुद्ध हूओ छे इसो छे चिति कहतां जीव वस्तु तिहि विषै। भावार्थ इसो-जो ज्ञेयको जाने छे ज्ञान तिहिको स्वभाव नहीं मानै छे अशुद्धतानो करि मानै छे, एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव। एकांतवादीका अभिप्राय क्यू छे, एकाकारचिकीर्षया-एकाकार कहता समस्त ज्ञेयकै जानपनै करि रहित होत मन निर्विकल्परूप ज्ञानको परिणाम, चिकीर्षया कहतां यदा इसो होय तदा ज्ञान शुद्ध छे इसो छे अभिप्राय एकांतवादीको। तैहै प्रति एक अनेक ज्ञानको स्वभाव साधे स्याद्वादी सम्यग्दृष्टी जीव अनेकांतवित् ज्ञान पश्यति-अनेकांत कहतां स्याद्वादी जीव ज्ञान कहता ज्ञानमात्र जीव वस्तुको पश्यति कहतां साधि सकै अनुभव करि सकै। किसो छे ज्ञान स्वतः क्षालित कहतां सहज ही शुद्ध स्वरूप छे, स्याद्वादी ज्ञानको किसो जानि अनुभवै छे। तत् वैचित्र्ये अपि अविचित्रतां पर्यायै अनेकतां परिगत परिमृशन्-तत् कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तु वैचित्र्ये अपि अविचित्रता कहतां अनेक ज्ञेयाकार करि पर्यायरूप अनेक छे तथापि द्रव्यरूप एक छे। पर्यायै अनेकतां परिगत कहतां यद्यपि द्रव्यरूप एक छे तथापि अनेक ज्ञेयाकाररूप पर्याय करि अनेकपनाको पावै छे। इसो स्वरूपको अनेकांतवादी साधि सकै छे, अनुभव गोचर करि सकै छे। परिमृशन् कहतां इसो द्रव्यरूप पर्यायरूप वस्तुको अनुभवनो होतो स्याद्वादी इसो नाम पावै छ।

भावार्थ-यहां उस एकांतवादीका खंडन किया है जो ज्ञानको मात्र एकाकार द्रव्यरूप ही मानता है, उसमें जो ज्ञेयके निमित्तसे अनेक आकार झलकते हैं उन पर्यायोंका होना ज्ञानका स्वभाव नहीं मानता है। स्याद्वादी समझता है कि ज्ञान एकरूप भी है अनेकरूप भी है। द्रव्य अपेक्षा एक है क्योंकि आत्माका एक गुण है तथापि ज्ञेयाकार परिणमनेकी अपेक्षा अनेकरूप भी है। एकांतवादि जानता है कि ज्ञानमें अनेक ज्ञेयाकारका होना ज्ञानका स्वभाव नहीं किन्तु ज्ञानमें विकार है, अशुद्धता है, स्याद्वादी मानता है कि ज्ञानका स्वभाव ही अनेकरूप है। इसतरह अनेकांती वस्तुको जैसा है वैसा साधता है तथा अनुभवता है। एकांतमती एक अंशको ही मानकर वस्तु स्वरूपसे दूर होजाता है।

सवैया ३१ सा—कोउ मूढ़ी कहै ज्ञानमांहि ज्ञेयको आकार प्रति भासि रह्यो है कलंक ताहि धोइये॥ जब ध्यान जलसों पखालिके धवल कीजे तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइये॥ तासौं स्यादवादी कहै ज्ञानको स्वभाव यहै ज्ञेयको आकार वस्तु मांहि कहां खोइये॥ जैसे नाना रूप प्रतिबिंबकी झलक दीखै, यद्यपि तथापि आरसी विमल जोइये॥ १६॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तितावञ्चितः
स्वद्रव्यानवलोकनेन परितः शून्यः पशुर्नश्यति।
स्वद्रव्यास्तितया निरूप्य निपुणं सद्यः समुन्मज्जता
स्याद्वादी तु विशुद्धबोधमहसा पूर्णो भवन् जीवति ॥ ६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो–जो कोई एकांतवादी मिथ्यादृष्टि इसो छे जो पर्याय मात्रको वस्तुकरि मानै छे तिहितै ज्ञेयके जानतां ज्ञेयाकार परिणयो छे जो ज्ञानको पर्याय तिहिको, ज्ञेयके अस्तित्वपने करि ज्ञानको अस्तित्वपनो मानै छे। ज्ञेय तहि भिन्न निर्विकल्प ज्ञान मात्र वस्तुको नहीं मानै छे, तिहितै इसो भाव पाइजै छे जो परद्रव्यके अस्तित्वपनै ज्ञानको अस्तित्वपनो छे, ज्ञानके अस्तित्वपनै करि ज्ञानको अस्तित्वपनो न छे तिहि प्रति उत्तर इसो जो ज्ञान वस्तु आपणे अस्तित्वपनै करि अस्तित्वपनो छे तिहिका भेद चारि छे। ज्ञानमात्र जीववस्तु स्वद्रव्यपने अस्ति, स्वक्षेत्रपनै अस्ति, स्वकालपनै अस्ति, स्वभाव पनै अस्ति, परद्रव्यपनै नास्ति, परक्षेत्रपनै नास्ति, परकालपने नास्ति, परभावपनै नास्ति तिहिको लक्षण, स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प मात्र वस्तु, स्वक्षेत्र कहता आधार मात्र वस्तुका प्रदेश, स्वकाल कहतां वस्तु मात्रकी मूल अवस्था, स्वभाव कहता वस्तुकी मूलकी सहज शक्ति, परद्रव्य कहतां सविकल्प भेद कल्पना, परक्षेत्र कहता जो वस्तुका आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्र करि कह्या था तेई प्रदेश सविकल्प भेदकल्पना करि परप्रदेश बुद्धिगोचर करि कहिजे छे। परकाल कहता द्रव्यकी मूलकी निर्विकल्प अवस्था सोई अवस्थांतर भेद रूप कल्पना करि, परभाव कहतां द्रव्यकी सहज शक्तिको पर्यायरूप अनेक अशकरि भेद कल्पना इसो कहिजे छे। पशुः नश्यति कहता एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव जीव स्वरूपको नहीं साधि सकै छे। किसो छे। परितः शून्यः कहतां सर्व प्रकार तत्वज्ञान करि शून्य छे। किसा थकी। स्वद्रव्यानवलोकनेन–स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प वस्तु मात्र तिहिको अनवलोकनेन कहतां नहीं प्रतीति करे छे, और किसो छे। प्रत्यक्षालिखितस्फुटस्थिरपरद्रव्यास्तिता वंचितः–प्रत्यक्ष कहतां असहायपनै, अलिखित कहतां लिख्या होहि जिसा इसा छे, स्फुट कहतां जिसा छे तिसा, स्थिर कहतां अमिट छे, परद्रव्य कहतां ज्ञेयाकार ज्ञानको परिणाम तिहिकरि मान्यो छे, अस्तिता कहता अस्तित्वपनो तिहिकरि वंचित कहतां ठग्यो छे इसो छे एकांतवादी मिथ्यादृष्टीजीव. तु स्याद्वादी पूर्णो भवन् जीवति–तु कहतां एकांतवादी कहै छे त्यों नहीं छे। स्याद्वादी सम्यग्दृष्टि जीव, पूर्णो भवन् कहतां पूरो होतो, जीवति कहतां ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो साधिसकै अनुभव करि सकै, किसेकरि। स्वद्रव्यास्तितया–स्वद्रव्य कहतां निर्विकल्प ज्ञानशक्ति मात्र वस्तु तिहिकी अस्तितया कहतां

अस्तित्वाने करि। कथंभूतः। निपुण निरूप कहता ज्ञानमात्र जीव वस्तुको छे अनुभव ऐसो होइ करि, किसे करि। विशुद्धबोधमहसा-विशुद्ध कहता निर्मल इसो बोध कहता ज्ञान। तिहको महसा कहता प्रताप करि। किसो छे। सद्य समुन्मज्जता कहता तेही काल प्रगट होइ छे।

भावार्थ इसका द्रव्य स्वद्रव्य क्षत्र काल भावकी अपना अस्तित्व है। पर द्रव्य क्षत्र काल भावकी अपेक्षा नास्तित्व है। स्याद्वादी वस्तुको उभयरूप मानता है। एकांती एकरूप मानकर वस्तुका यथार्थ स्वरूप अनुभव नहीं कर पाता है। यहां इस बातको साधा है कि ज्ञान वस्तु पर ज्ञेयोंको जानते हुए भी पदार्थरूप होते हुए भी आप अपने स्वरूप करके अस्तिरूप है-अपना स्वरूप नहीं खो बैठती है। जैसे दर्पणमें अनेक पदार्थ झलकते हैं तो झलको, उनके झलकनसे दर्पणकी कांतिका भिन्न सत्ताका अभाव नहीं होसकता। दर्पण अपनी कांतिसे ही अस्तिरूप है, उस कांतिका यह स्वभाव है कि उसमें अनेक पदार्थ झलकें ऐसा ही ज्ञानका स्वभाव है। ज्ञान अपने आप करि अस्तिरूप है। उसमें अनेक पदार्थ झलकें यह भी ज्ञानका स्वभाव है, उनके झलकनसे ज्ञान अपने अस्तित्वको खो नहीं बैठता है।

सवैया ३१ सा—कोउ अज्ञ कहै ज्ञेयाकार ज्ञान परिणाम, जौलौं विद्यमान तौलौं ज्ञान परगट है॥ ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनाश होय, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अटल है॥ तासु प्रतिबोध यह अनुभौ कहति, ज्ञेय आकार भ्रमण ज्ञान न आकार नट है॥ निर्विकल्प अविनश्वर दशारूप ज्ञान जगवस्तुको अकारक अघट है॥ १०॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द-सर्वद्रव्यमयं प्रपद्य पुरुषं दुर्वासनावासितः
स्वद्रव्यभ्रमतः पशुः किल परद्रव्येषु विश्राम्यति।
स्याद्वादी तु समस्तवस्तुषु परद्रव्यात्मना नास्तितां
जानन्निर्मलशुद्धबोधमहिमा स्वद्रव्यमेवाश्रयेत्॥ ७॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो-जो कोई मिथ्यादृष्टी जीव इसो छे जो वस्तुको द्रव्यरूप माने छे पर्यायरूप नहीं माने छे तिहितै समस्त ज्ञेय वस्तुज्ञान विषे गर्भित माने छे, इसो कहै छे। उष्णको जानतां ज्ञान उष्ण छे, शीतलको जानता ज्ञान शीतल छे। तिहिप्रति उत्तर इसो जो ज्ञान ज्ञेयको ज्ञायक मात्र तो छे परन्तु ज्ञेयका गुण ज्ञेय विषै छे ज्ञान विषै ज्ञेयका गुण नहीं छे। किल पशुः विश्राम्यति-किल कहतां अवश्य करि, पशुः कहता एकांतवादी मिथ्यादृष्टी जीव, विश्राम्यति कहतां वस्तु स्वरूपको साधिवाको असमर्थ होतो थकांत मेदविज्ञ होइ छे। किसा थकौ, परद्रव्येषु स्वद्रव्यभ्रमतः-परद्रव्येषु कहता ज्ञेयको जानतां ज्ञेयकी आकृति परिणवै छे ज्ञान इसो छे ज्ञानको पर्याय तिहि विषै, स्वद्रव्यभ्रमतः स्वद्रव्य कहतां निर्विकार सत्ता मात्र ज्ञान वस्तु तिहिरूप, भ्रमतः कहतां होइ

है तथापि यह भी इसका स्वभाव है कि इसमें ज्ञेयोंके परिणमन द्वारा ज्ञेयाकारोंका परिणमन हुआ करे अर्थात् यह ज्ञान नित्य होते हुए भी पर्यायोके होने व विघटनेकी अपेक्षा अनित्य भी है, ऐसा मानता है।

सवैया ३१ सा—कोउ बालबुद्धि कहै ज्ञायक शकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्यं जानिये ॥ ज्ञायक शकति काल पाय मिटिजाय जब, तब अविरोध बोध विमल बखानिये ॥ परम प्रवीण कहै ऐसी तो न बने बात, जैसे विन परकाश सूरज न मानिये ॥ तैसे विन ज्ञायक शकति न कहावे ज्ञान, यह तो न पक्ष परतक्ष परमानिये ॥ २७ ॥

श्लोक—इत्यज्ञानविमूढानां ज्ञानमात्रं प्रसादयन्।
आत्मतत्त्वमनेकान्तः स्वयमेवानुभूयते ॥ १९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ इति अनेकांतः स्वयं अनुभूयते एव—इति कहतां पूर्वोक्त प्रकार अनेकांत कहता स्याद्वाद स्वयं आपणे प्रताप करि बलात्कार ही, अनुभूयते कहतां अंगीकार रूप होइ छे, एव कहता अवश्यकरि कौनको अंगीकार होइ छे। अज्ञानविमूढानां—अज्ञान कहतां पूर्वोक्त एकांतवाद तिहकरि, विमूढाना कहता मग्न हूवा छे इसा जे मिथ्यादृष्टि जीवराशि, भावार्थ इसो जो स्याद्वाद इसो प्रमाण छे जो सुनता मात्र एकांतवादी फुनि अंगीकार करै छे, किसा छे स्याद्वादी। आत्मतत्त्वं ज्ञानमात्रं प्रसाधयन्—आत्मतत्त्वं कहतां जीव द्रव्यको, ज्ञानमात्र कहतां चेतना सर्वस्व, प्रसाधयन् कहतां इसो प्रमाण करतो होतो। भावार्थ इसो जो ज्ञान मात्र जीव वस्तु इसो स्याद्वाद साधि सकै छे।

भावार्थ—यहां यह भलेप्रकार बता दिया है कि स्याद्वादके द्वारा ही अनेक धर्म या स्वभावरूप वस्तुकी सिद्धि होसकी है। वस्तु एक धर्म रूप नहीं है—उसको एक रूप ही मानना यथार्थ नहीं है अज्ञान है। वस्तु किसी नयसे अस्तिरूप है, किसी नयसे नास्तिरूप है, किसी नयसे नित्य है, किसी नयसे अनित्य है, किसी नयसे एकरूप है, किसी नयसे अनेकरूप है। वस्तु अनेकांत स्वरूप है ऐसा वर्णन। श्री समंतभद्राचार्यने आप्तमीमांसामें भलेप्रकार किया है। स्वामी कहते है—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्। असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १५ ॥

भावार्थ—सर्व वस्तु सतरूप है अपने ही स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावकी अपेक्षासे। अर्थात् वस्तुमें वस्तुपना है इसलिये वह सतरूप है भावरूप है उसी समय वह परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावकी अपेक्षासे असत् भी है। अर्थात् वस्तुमें अन्य वस्तुओंका अभावपना है। कोई पदार्थ उसी समय अस्तिरूप ठहराया जासक्ता है जब उसमें अपना तो भाव हो उसी समय परका अभाव हो। जीव द्रव्य है क्योंकि जीवपना तो उसमें है उसी समय अजीवपना उसमें नहीं है। ज्ञान है क्योंकि ज्ञानपना तो उसमें है उसी समय

सदृशता उसमें नहीं है। ऐसमें ज्ञान नहीं ज्ञानमें ज्ञेय नहीं तब ही ज्ञेय ज्ञानकी व्यवस्था बन सकी है।

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्यं पृथक् द्रव्यादिभेदतः । भेदाभेदविवक्षायामसाधारणहेतुवत् ॥ ३४ ॥

भावार्थ—सत्सामान्य की अपेक्षासे सब पदार्थ एकरूप हैं परन्तु भिन्न २ द्रव्य की अपेक्षासे अनेक रूप अलग अलग हैं। जैसे अग्निका असाधारण हेतु उष्णपना है सो अग्निसे अभेद है परन्तु अन्यसे भेदरूप है।

नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा । क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥ ५६ ॥

भावार्थ—वस्तु नित्य है क्योंकि प्रत्यभिज्ञानका विषय है अर्थात् आगे पीछे यह ज्ञान होता है कि यही है—यह ज्ञान बराबर होता रहता है इसीसे वस्तु नित्य है। अवस्थाकी दृष्टिसे देखते हैं तो भिन्न भिन्न कालमें भिन्न २ अवस्था है इससे वस्तु अनित्य भी है। जो स्याद्वादी हैं उनके द्वारा नित्य व अनित्यपना दोनों सिद्ध हैं। एकांत पक्ष वालोंकी बुद्धि इस तत्वपर नहीं पहुंचती है।

इस तरह जो आत्मतत्वकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अनेकांतको समझकर वस्तुका स्वरूप जैसा है वैसा ही मानें तब ही यथार्थ वस्तुका लाभ हो सकेगा।

दोहा—इहि विधि आतम ज्ञान हित स्याद्वाद परमाण। जाके वचन विचारसौं मूरख होय सुजान ॥२४॥

श्लोक—एवं तत्त्वव्यवस्थित्या स्वं व्यवस्थापयन्स्वयम् ।
अलङ्घ्यं शासनं जैनमनेकान्तो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एष अनेकान्तः व्यवस्थितः—एषः कहता इतनो कहिवे करि, अनेकान्त कहता स्याद्वाद, व्यवस्थित कहता कहिवाको आरम्भ्यो थो सो पूरो हुओ। किसा छे अनेकांत। स्वं स्वयं व्यवस्थापयन्—स्वं कहतां अनेकान्तपनाको स्वयं कहता अनेकान्तपना करि, व्यवस्थापयन् कहता बलोत्पन्न प्रमाण करतो होतो, किसे करि, तत्त्व-व्यवस्थित्या कहता जीवको स्वरूप साधिवे सहित किया छे, अनेकांत जैन कहता सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत छे, और किसो छे अलंघ्य शासनं कहता अमिट छे उपदेश जिहिको इसो छे।

दोहा—स्याद्वाद आतम दशा ता कारण बलवान। शिव साधक बाधा रहित अखै अखंडित आन ॥२५॥
स्याद्वाद अधिकार यह, कह्यो अलप विस्तार। अमृतचन्द मुनिवर कहै साधक साध दुवार ॥ २६ ॥
इति श्री समयसार नाटकको स्याद्वाद द्वार नवसार समाप्त भयो ॥ ११ ॥

बारहवां साध्य साधक अधिकार।

श्लोक–इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरोऽपि यो ज्ञानमात्रमयतां न जहाति भावः।
एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं तद्द्रव्यपर्य्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु ॥ १ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–इह तत् चित् वस्तु द्रव्यपर्ययमयं अस्ति–इह कहतां विद्यमान, तत् कहतां पूर्वोक्त, चित् वस्तु कहतां ज्ञानमात्र जीव द्रव्य, द्रव्यपर्यायमयं कहतां द्रव्य गुण पर्यायरूप छे। भावार्थ इसो जो जीव द्रव्यपनो कह्यो किसो छे जीव द्रव्य, एवं क्रमाक्रमविवर्तिविवर्तचित्रं–एवं कहता पूर्वोक्त प्रकार, क्रम कहतां पहलो विनशै तो आगिलो उपजै, अक्रम कहता विशेषण रूप छे परन्तु न उपजै न विनशै इसै रूप छे, विवर्ति कहतां अंशरूप भेद पद्धति, तिहिकरि विवर्त कहतां अवर्त्यो छे, चित्र कहतां परम अचंभो जिहिविषै इसो छे। भावार्थ इसौ छे, क्रमवर्ती पर्याय, अक्रमवर्ती गुण तिहि गुण पर्यायमय जीव वस्तु और किसो छे–यः भावः इत्याद्यनेकनिजशक्तिसुनिर्भरः अपि ज्ञानमात्रमयतां न जहाति–यः भावः कहतां ज्ञानमात्र जीव वस्तु, इत्यादि कहतां द्रव्य गुण पर्याय इहि आदि देइ करि, अनेक निजशक्ति कहतां अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, सप्रदेशत्व, अमूर्तत्व इसी छे अनंत गणना रूप द्रव्यको सामर्थ्यपनो त्यांहकरि, सुनिर्भरः कहतां सर्वकाल भरि तपस्य छे, अपि कहतां इसो छे तथापि ज्ञानमात्र मयता नहाति कहतां ज्ञानमात्र भावको नहीं त्यागे छे। भावार्थ इसो–जो गुण छे अथवा पर्याय छे सो सर्व चेतना रूप छे तिहिंतै चेतना मात्र जीव वस्तु छे प्रमाण छे। भावार्थ इसो–जो ऊपर हुंडी घाली थी जो उपेय तथा उपाय कहि सों। उपाय कहतां जीव वस्तुको प्राप्तिको साधन, उपेय कहतां साध्य वस्तु। तिहि माहे प्रथम ही साध्यरूप वस्तुको स्वरूप कह्यो, साधन कहिजे छे।

सवैया ३१ सा—जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अभोगी अमूरतीक परदेशवंत है ॥ उतपति रूप नासरूप अविचल रूप, रतनत्रयादिगुण भेदसों अनंत है ॥ सोई जीव दरब प्रमाण सदा एक रूप, ऐसे शुद्ध निश्चय स्वभाव विरतंत है ॥ स्याद्वाद माहि साध्यपद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेको साधक सिद्धंत है ॥ १ ॥

दोहा–साध्य शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत। साधक अविरत आदि बुध, क्षीण मोह परयंत ॥२॥

वसंततिलका–नैकान्तसङ्गतदृशा स्वयमेव वस्तुतत्त्वव्यवस्थितिमिति प्रविलोकयन्तः।
स्याद्वादशुद्धिमधिकामधिगम्य सन्तो ज्ञानीभवन्ति जिननीतिमलंघयन्तः ॥२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–संतः इति ज्ञानीभवंति–संत कहतां सम्यग्दृष्टी जीव-राशि, इति कहतां ऐसे प्रकार, ज्ञानीभवंति कहतां अनादिकाल तहि, कर्मबंध संयुक्त था

सोरठा-जे दुर्बुद्धी जीव, ते उत्तंग पदवी चहे। जे सम रसी सदीव, तिनकों कछू न चाहिये ॥९॥

सवैया ३१ सा—हासीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे, कायामें मरण गुरु वर्तनमें हीनता ॥ शुचिमें गिलानि वसे प्रापतीमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छवि छीनता ॥ रोग वसे भोगमें सयोगमें वियोग वसे, गुणमें गरब वसे सेवा माहि दीनता ॥ और जग रीत जेती गर्भित असाता तेति, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥ १० ॥

दोहा-जो उत्तंग चढि फिर पतन, नहि उत्तंग वह कूर। जो सुख अंतर भय वसे, सो सुख है दुखरूप ॥११॥
जो विलसे सुख संपदा, गये तहा दुख होय। जो धरती बहु तृणवती, जरे अग्निसे सोय ॥१२॥
शब्दमाहि सद्गुरु कहे, प्रगटरूप निजधर्म। सुनत विचक्षण श्रद्दहे, मूढ न जाने मर्म ॥१३॥

३१ सा—जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको। दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पथिककों पूछे पथ पुरको ॥ सो तो कहे तुमारो नगर ये तुमारे ढिग, मारग दिखावे समझावे खोज पुरको। एते पर सुष्ट पहचाने पे न माने दुष्ट, हिरदे प्रमाण तैसे उपदेश गुरुको ॥ १४ ॥

३१ सा—जैसे काहू जंगलमें पावसकि समें पाई, अपने सुभाय महा मेघ वरखत है। आमल कषाय कटु तीक्षण मधुर क्षार, तैसा रस वाढे जहा जैसा दरखत है ॥ तैसे ज्ञानवंत नर ज्ञानको वखान करे, रस कोउ माही है न कोउ परखत है। वोही धूनि सूनि कोउ गहे कोउ रहे सोद, काहूकों विषाद होइ कोउ हरखत है ॥ १५ ॥

दोहा-गुरु उपदेश कहा करे, दुराराध्य संसार। वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥१६॥
डूबा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रुचक शुद्ध। ऊंघा दुर्बुद्धी विकल, घूघा घोर अबुद्ध ॥ १७ ॥
जाके परम दशा विषे, कर्म कलंक न होय। डूबा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोय ॥१८॥
जो उदास ह्वै जगतसों, गहे परम रस प्रेम। सो चूंघा गुरुके वचन, चूंघे बालक जेम ॥१९॥
जो सुवचन रुचिसों सुने, हिये दुष्टता नाहि। परमारथ समुझे नहीं, सो सूंघा जगमाहि ॥२०॥
जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट। सो विषयी कुससे विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२१॥
जाके वचन श्रवण नहीं, नहि मन सुरति विराम। जडतासो जडवत भयो, घुंघा ताको नाम ॥२२॥

चौपाई—डूबा सिद्ध कहे सब कोऊ। सूघा ऊंधा मूरख दोऊ ॥
घुघा घोर विकल संसारी। चूंघा जीव मोक्ष अधिकारी ॥ २३ ॥

दोहा-चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नाश। लहे पोष संतोषसों, वरनों लक्षण तास ॥ २४ ॥
कृपा प्रशम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग। ये लक्षण जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥२५॥

चौपाई—जूवा आमिष मदिरा दारी। आखेटक चोरी परनारी ॥
येई सप्त व्यसन दुखदाई। दुरित मूल दुर्गतिके भाई ॥ २६ ॥

दोहा-दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुख धाम। भावित अन्तर कल्पना, मृषा मोह परिणाम ॥२७॥

३१ सा—अशुभमें हारि शुभ जीति यहै द्यूत कर्म, देहकी मगनताई यहै मांस भखिवो ॥ मोहकी गहलसों अजान यहै सुरापान, कुमतीकी रीत गणिकाको रस चखिवो ॥ निर्दय ह्वै प्राण घात करवो यहै सिकार, परनारी संग पर बुद्धिको परखिवो ॥ प्यारसों पराई सोंज गहिवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विडारे ब्रह्म लखिवो ॥ २८ ॥

दोहा-व्यसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार। किये प्रगट घट सिंधुमें, चौदह रतन उदार ॥२९॥

३१ सा—लक्ष्मी सुबुद्धि अनुभूति कउस्तुभ मणि धार कल्प उम नाल सु वचन है ॥ एरावति उत्तम प्रतीति रंभा उ चे दिव शामरसु निकरा सुरा प्रमोद घन है । ध्यान चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य शुद्ध भाव चन्द्रमा तुरगरूप मन है ॥ चौदह रतन ये प्रगट होय जहां तहां ज्ञानके उदोत घट सिन्धुको मथन है ॥ ० ॥

दोहा-किये अवस्थाम प्रगट चौदह रतन रसाल । कछु त्यागै कछु संग्रहै विधि निषेधकी चाल ॥३१॥

रमा शंख विष धनु सुरा वैद्य धेनु हय हेय । मणि शंक गज कल्पतरु सुधा सोम आदेय ॥३२॥

इह विधि जो परभाव विष वमै रमै निजरूप । सो साधक शिवपथको चिद्विवेक चिद्रूप ॥३३॥

कवित्त—ज्ञान दृष्टि जिन्हके घट अंतर निरखै द्रव्य सुगुण परजाय ॥ जिन्हके सहज रूप दिन दिन प्रति, स्यादवाद साधन अधिकाय ॥ ते केवली प्रणीत मारग मुख चित्त चरण राखै ठहराय ॥ ते प्रवीण करि क्षीण मोह मल अविचल होहिं परम पद पाय ॥ ३४ ॥

वसन्ततिलका छन्द—ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीमकम्पां भूमिं श्रयन्ति कथमप्यपनीतमोहाः ।
ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥ २ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—ते सिद्धा भवन्ति—ते कहता इसा छे जो जीवराशि, सिद्धा भवन्ति कहता सकल कर्म कलंक तहिं रहित मोक्षपदको पावै छे । किसा होइ करि। साधकत्वं अधिगम्य—कहता शुद्ध जीवको अनुभव गर्भित छे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप कारण रत्नत्रय तिहिरूप परिणयो छे आत्मा इसो होइ करि, और किसा छे ते । ये ज्ञानमात्रनिजभावमयीं भूमिं श्रयन्ति—ये कहता जे केई ज्ञान मात्र चेतना छे सर्वस्व जिहिको इसो निजभाव कहता जीवद्रव्यको अनुभव, तिहिमयीं कहता कोइ विकल्प नहीं छे जिहि विषै इसी, भूमि कहता मोक्षको कारणभूत अवस्थाको श्रयन्ति कहता एकाग्रपनै इसै रूप परिणवै छे । किसी छै भूमि, अकम्पा कहता निर्द्वन्द्व रूप सुख गर्भित छे, किसा छे जे जीवराशि। कथमपि अपनीतमोहा —कथमपि कहता अनंतकाल भ्रमता काललब्धि पाइ करि, अपनीत कहता मिट्यो छे, मोह कहता मिथ्यात्वरूप विभाव परिणाम ज्याहको इसा छे । भावार्थ इसो—इसा जीव मोक्षका साधक होहे । तु मूढा अमूं अनुपलभ्य परिभ्रमन्ति—तु कहता कह्यो अर्थ गाढो कीजै छे । मूढा कहता नहीं छे जीव वस्तुको अनुभव ज्याहको इसा जे केई मिथ्यादृष्टि जीव राशि । अमूं कहता शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव इसी अवस्था कहु अनुपलभ्य कहता विनपाइकरि, परिभ्रमन्ति कहता चतुर्गति संसार माहैं रुलै छे । भावार्थ इसो—शुद्ध जीव स्वरूपको अनुभव मोक्षको मार्ग छे दूसरो मार्ग नहीं ।

भावार्थ—यहां स्पष्ट बता दिया है कि जो कोई परम पुरुषार्थ करके जिस तरह बने उस तरह मिथ्यात्व भावको दूर कर रत्नत्रय गर्भित निज ज्ञान चेतनामय एक शुद्ध भावका अनुभव करते हैं वेही परमपदको पाते हैं। मिथ्यादृष्टी जीव शुद्ध आत्मानुभवरूई मोक्षमार्गको न पाकर चारों गतिमें भ्रमण किया करते हैं । योगसारमें कहा है—

जइ बधउ मुक्कउ मुणहि तो बंधियहि णिगतु । सहजसरूवि जइ रमइ तो पावइ सिव संतु ॥८६॥

भावार्थ—जो यह विकल्प किया करेगा कि मैं बधा हूं मुक्त कैसे हूंगा या मैं व्यवहार नयसे बंधरूप हूं निश्चय नयसे मुक्त हूं वह अवश्य बंधको प्राप्त होगा। जो कोई अपने सहज स्वभावमें रमण करेगा वही परम शांतमय मोक्षपदको पासकेगा।

सवैया ३१ सा—चाकसो फिरत जाको ससार निकट आयो, पायो जिन्हे सम्यक् मिथ्यात्व नाश करिके ॥ निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन्हे किनी मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिके॥ सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनासी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके ॥ मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनत काल भरिके ॥ ३५ ॥

वसततिलका—स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः ।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः ॥ ८ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-भावार्थ इसो जो अनुभव भूमिकाको किसो जीव योग्य छे इसो कहिजे छे। स एकः इमां भूमिं श्रयति-स कहता इसो जीव, एकः कहतां यही एक जाति जीव, इमां भूमि कहतां प्रत्यक्ष छे शुद्ध स्वरूपको अनुभव रूप इसी अवस्थाको, श्रयति कहतां आलबनको योग्य छे। किसो छे जो जीव यः स्वं अहरहः भावयति-यः कहता जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव, स्वं कहतां जीवको शुद्ध स्वरूपको, अहरहः भावयति कहतां निरन्तरपनें अखंड धाराप्रवाह रूप अनुभवै छे। किसे करि अनुभवै छे। स्याद्वाद-कौशलसुनिश्चलसयमाभ्यां—स्याद्वाद कहतां द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप वस्तुको अनुभव, तिहिको, कौशल कहतां विपरीतपना तहि रहित वस्तुको ज्यों छे त्यो अंगीकार तथा, सुनिश्चल-सयमाभ्यां कहतां समस्त रागादि अशुद्ध परिणतिको त्याग त्यांह दुवे सहायकरि, और किसो छे इह उपयुक्तः—इहि कहता आपणा शुद्ध स्वरूपको अनुभव विषे, उपयुक्तः कहता सर्व काल एकाग्रपनें तल्लीन छे। और किसो छे। ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्री-कृतः—ज्ञान नय कहतां शुद्ध जीवको स्वरूपको अनुभव मोक्षमार्ग छे शुद्ध सरूपको अनुभव विना जो कोई क्रिया छे सो सर्व मोक्षमार्ग तहि शून्य छे। क्रियानय कहतां रागादि अशुद्ध परिणामका त्याग पाए विना जो कोई शुद्ध स्वरूपको अनुभव कहै छे सो समस्त झूठो छे अनुभव नहीं छे। काई इसो ही अनुभवको मरम छे। जिहितै शुद्ध स्वरूपको अनुभव अशुद्ध रागादि परिणामको मेटि करि छे। इसी छे जो ज्ञाननय तथा क्रियानय त्याहको छे जो, परस्पर मैत्री कहतां माहोमाहे छे अत्यंत मित्रपनो तिहिको ब्योरो। शुद्ध स्वरूपको अनुभव छे सो रागादि अशुद्ध परिणतिको मेटिकरि छे, रागादि अशुद्ध परिणतिको विनाश शुद्ध स्वरूपको अनुभवको लीयो छे तिहिकरि, पात्रीकृत कहतां ज्ञाननय क्रिया नयको एक थानक छे। भावार्थ इसो जो दुवे नयको अर्थकरि विराजमान छे।

भावार्थ-यहां यह बताया है कि शुद्ध स्वरूपका अनुभव वही कर सक्ता है जो स्याद्वाद नयसे अनेकांत स्वरूप आत्माको अनेकप्रकार समझता हो और जो संयमी हो अर्थात् रागादि अशुद्ध परिणामको मेटकर शुद्ध भावोंमें सन्मुख हो। जिसका मन इन्द्रिय विषयोंमें व अनेक मानसिक प्रकार विकल्पोंमें उलझ रहा होगा वह शुद्ध आत्माका अनुभव न कर सकेगा, इसलिये अनुभवकर्ताको संयमी होना योग्य है। फिर वह निरन्तर सर्व कार्योंसे ममता हटाकर आत्माका चिन्तवन करता हो तथा एकांत नयके मतसे रहित हो अर्थात् मात्र शुद्ध स्वरूपके ज्ञानसे ही मोक्ष होजायगा या मात्र बाहरी श्रावक या मुनिकी क्रिया पालनेसे ही मोक्ष होजायगा, इस एकांतको छोड़कर जो ज्ञान और क्रियाको दोनोंको परस्पर एक दूसरेका सहायक समझता है कि शुद्ध स्वरूपको ज्ञान चारित्र पालनेमें सहायक है बिना स्वात्मानुभवके चारित्र कुचारित्र है। तथा चारित्र पलना अशुद्ध परिणाम मेटनेमें कारण है। इसतरह ज्ञान और चारित्र सहित वर्तन करता हुआ ही मोक्षके साधनभूत स्वानुभवमई एक शुद्ध भावको आश्रय करता है। तत्व०में कहा है—

यदि चित्ते भवेत् स्थितिर्निजे भवति तदेव बोधवृत्तम्। परद्रव्याक्रमणं न ज्ञानिनो वृत्त ॥१९-१२॥

भावार्थ-जब शुद्ध चैतन्यरूप आत्मामें स्थिरता सम्यक्त व ज्ञानके बलसे होती है और परद्रव्यका स्मरण नहीं होता है वही शुद्ध नयसे ज्ञानी जीवके चारित्र है। अर्थात् रत्नत्रयकी एकता ही स्वानुभवरूप मोक्षका साधन है।

सवैया ३१ सा—ज जीव दरवरूप तथा परजायरूप दोउ न प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है॥ जे अशुद्ध भावनिके त्यागी भए सरवथा विषैसों विमुख है विरागता वहत है॥ जे जे ग्राह्य भाव त्याग भाव दोउ भावनिको अनभौ अभ्यास विषै एकता करत है॥ तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोक्ष मारगके साधक अबाधक महत है ॥ ३५ ॥

वसंततिलका—चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहासः शुद्धप्रकाशभरनिर्भरसुप्रभातः।
आनन्दसुस्थितसदास्खलितैकरूपस्तस्यैव चायमुदयत्यचलार्चिरात्मा ॥२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ तस्य एव आत्मा उदयति-तस्य कहता पूर्वोक्त जीवको, एव कहता अवश्यकरि, आत्मा कहता जीव वस्तु उदयति कहता सकल कर्मको विनाश करि प्रगट होइ छे। अनंतचतुष्टयरूप होइ छे। और किसो प्रगट होइ छे। अचलार्चि कहता सर्वकाल एकरूप छे केवलज्ञान केवलदर्शन तेजपुंज जिहिको इसो छे। और किसो छे। चित्पिण्डचण्डिमविलासिविकासहास -चित्पिण्ड कहता ज्ञानपुंज तिहिको, चण्डिम कहता प्रताप, तिहिको विलासि कहता एकरूप परिणति इसो, विकास कहता प्रकाश स्वरूप तिहिको हास कहता निधान छे। और किसो छे। शुद्ध प्रकाशभरनिर्भरसुप्रभात—शुद्ध प्रकाश कहता रागादि अशुद्ध परिणति मिटिकरि हुओ छे, शुद्ध तत्वरूप परिणाम

तिहिको भर कहतां वारंवार शुद्ध स्वरूप परिणति तिहिकरि निर्भर कहतां हूओ छे सुप्रभातः कहतां साक्षात् उद्योत जहां इसो छे। भावार्थ इसो–जो यथा रात्रि सम्बंधी अंधेरो मिटतां दिवस उद्योत स्वरूप प्रगट होइ छे तथा मिथ्यात्त्व रागद्वेष अशुद्ध परिणति मेटि करि शुद्धत्व परिणाम विराजमान जीव द्रव्य प्रगट होइ छे। और किसो छे, आनन्द सुस्थिरसदास्खलितैकरूपः–आनंद कहतां द्रव्यको परिणामरूप अतींद्रिय सुख तिहिकरि सुस्थित कहतां आकुलतातहि रहितपनो तिहि करि सदा कहतां सर्वकाल अस्खलित कहतां अमिट छे एकरूप कहतां तिहिरूप सर्वस्व जिहिको इसो छे।

भावार्थ–यह है कि शुद्ध आत्मानुभवके वारवार अभ्यासके बलकर ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मोका नाश होजाता है और केवलज्ञानरूप सूर्यका उदय होजाता है तब अरहंत अवस्थामें यह जीव परम वीतराग निराकुल भावमें तिष्ठा हुआ शुद्ध आत्मीक आनन्दका विलास करता रहता है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

जीवा जिणवर जो मुणइ जिणवर जीव मुणेइ, सो समभाव परिट्ठियउ लहु णिव्वाण लहेइ ॥३६॥

भावार्थ–जो शुद्ध नयसे जीवोंको जिनेन्द्ररूप व जिनेन्द्रको जीवरूप अनुभव करता है वही समताभावमें विराजमान होकर शीघ्र निर्वाणको पाता है।

दोहा–विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोख। ता परणतिको बुध कहै, ज्ञानक्रियासों मोख ॥३७॥
जगी शुद्ध सम्यक कला, वगी मोक्ष मग जोय। वहै कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय ॥३८॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम। जैसे जो दीपक धरै, सो उजियारो धाम ॥३९॥

सवैया ३१ सा—जाके घट अन्तर मिथ्यात अन्धकार गयो, भयो परकाश शुद्ध समकित भानको॥ जाकी मोह निद्रा घटि ममता पलक फटि, जाणे निज मरम अवाची भगवानको॥ जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानको॥ ताही सुविचक्षणको संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवाणको ॥ ४० ॥

वसंततिलका–स्याद्वाददीपितलसन्महसि प्रकाशे शुद्धस्वभावमहिमन्युदिते मयीति।
किं बन्धमोक्षपथपातिभिरन्यभावैर्नित्योदयः परमयं स्फुरतु स्वभावः ॥ ३ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–अयं स्वभावः परं स्फुरतु–अयं स्वभावः कहता छतो छे जीव वस्तु, परं स्फुरतु कहता यही एक अनुभव रूप प्रगट हुओ। किसो छे, नित्योदयः कहतां सर्वकाल एकरूप प्रगट छे, और किसो छे। इति मयि उदिते अन्यभावैः किम–इति कहतां पूर्वोक्त विधि मयि उदिते कहतां हौं शुद्ध जीवस्वरूप इसो अनुभव रूप प्रत्यक्ष होते संते। अन्यभावैः कहतां अनेक छे जे विकल्प त्यांइकरि, किं कहता कौन प्रयोजन छे। किसा छे, अन्यभावै–बंधमोक्षपथपातिभिः–बंध पथ कहता मोह रागद्वेष बंधको कारण छे, मोक्षपथ कहता सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षमार्ग छे इसो जो पक्षपात कहतां

खण्डरूप होइ करि मूल तहि खोज मिटै छे, इतना नय एक विषै क्यों घटै छे। उत्तर इसो जो जिहितै इसो छे जीव द्रव्य, **चित्रात्मशक्तिसमुदायमयः**—चित्र कहतां अनेक प्रकार, तिहिको व्यौरो—अस्तिपनो, नास्तिपनो, एकपनो, अनेकपनो, ध्रुवपनो, अध्रुवपनो, इत्यादि अनेक छे इसी जे आत्मशक्ति कहतां जीव द्रव्यका गुण त्यांहको जो समुदाय कहतां द्रव्यको अभिन्नपनो, तिहिमयः कहतां इसो छे जीव द्रव्य तिहितै एक शक्ति एक शक्तिको कहै छे, एक नय, एक एक नय यों कहतां अनन्त शक्ति छे तिहितै अनन्तनय होहि छे, यों कहता घणा विकल्प उपजै छे, जीवको अनुभव खोयो जाय छे। तिहितै निर्विकल्प ज्ञान वस्तु मात्र अनुभव करिवा योग्य छे।

भावार्थ—यद्यपि यह आत्मा अनन्त शक्तियोंका भण्डार है—तथापि उसको एक अखण्ड रूप ही अनुभव करना श्रेष्ट है। क्योंकि एक एक स्वभावका भिन्न२ विचार करनेसे अनेक विकल्प उठेंगे तब स्वरूपमें थिरता न होगी। वास्तवमें जब किसीको समझना हो तब उसमें अनेक तरहसे विचार करना योग्य है। जब उसको समझ लिया गया तब तो उसका जब स्वाद लेना हो तब तो उपयोगको थिर ही करना उचित है। बिना थिरताके कभी स्वाद नहीं आता है। इसीलिये मैं अपने शुद्ध वीतराग ज्ञानमय स्वभावमें स्थिर होगया हूं। यह स्वरूपमें मगनता ही मोक्षकी साधक है। परमात्मप्रकाशमें कहा है—

घणु पढतुवि होइ जडु, जो ण हणेइ विअप्पु। देहि वसंतुवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥२१०॥

भावार्थ—जो शास्त्रोंको पढ़ते हुए भी संकल्प विकल्प नहीं दूर करता है वह मूर्ख है, वह अपनी देहमें वसते हुये भी निर्मल परमात्माका अनुभव नहीं करपाता है।

सवैया ३१ सा—अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये॥ दीसे एक नयकी प्रति पक्षी अपर दूजी, नैको न दिखाय वाद विवादमें रहिये॥ थिरता न होय विकलपकी तरंगनिमें, चंचलता बढे अनुभौ दसा न लहिये॥ तातें जीव अचल अबाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिकें समाधि सुख गहिये॥ ४२॥

आर्या छन्द—न द्रव्येण खंडयामि न क्षेत्रेण खंडयामि न कालेन खंडयामि।
न भावेन खंडयामि सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रो भावोऽस्मि॥ ८॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावः अस्मि—कहतां हों वस्तुस्वरूप छूं और किसो छूं। ज्ञानमात्रः कहतां चेतनामात्र छे सर्वस्व जिहिको इसो छू, एकः कहतां समस्त भेद विकल्प तहि रहित छूं, और किसो छूं, सुविशुद्धः कहतां द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म उपाधितै रहित छूं और किसो छूं। द्रव्येण न खंडयामि—कहतां जीव स्वद्रव्य रूप छे इसो अनुभवतां पुनि हों अखंडित छूं, क्षेत्रेण न खंडयामि—जीव स्वक्षेत्र रूप छे इसो अनुभवतां पुनि अखंडित छूं। कालेन न खंडयामि—कहतां जीव स्वकालरूप छे इसो अनुभवतां पुनि हों अखंडित

है। भावयति न खण्डयति—कहुंथ जीव स्वभावरूप छे इसो अनुभवता पुनि हौं अखण्डित है। भावार्थ इसो जो एक जीव वस्तु स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावरूप चारि प्रकार भेदरि कहिजे छे तथापि चारि सत्ता नहीं छे एक सत्ता छे। तिहिको दृष्टांत—चारि सत्ता यों तो नहीं छे। यथा एक आम्रफल चारि प्रकार छे। तिहिको ब्यौरो—कोई अंश रस छे, कोई अंश चीकन छे, कोई अंश गुठली छे, कोई अंश मीठा छे तथा एक जीव वस्तु कोई अंश जीवद्रव्य छे, कोई अंश जीव क्षेत्र छे, कोई अंश जीव काल छे, कोई अंश जीव भाव छे। यों तो नहीं छे। यों तो मानतां सर्व विपरीत छे। तिहितैं यों छे। यथा एक आम्रफल स्पर्श रस गंध वर्ण विराजमान पुद्गलको पिंड छे तिहितैं स्पर्शमात्रकै विचारतां स्पर्शमात्र छे, रसमात्रकै विचारतां रसमात्र छे, गंधमात्रकै विचारतां गंधमात्र छे वर्णमात्रकै विचारतां वर्णमात्र छे तथा एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान छे तिहितैं स्वद्रव्यरूप विचारतां स्वद्रव्य मात्र छे, स्वक्षेत्ररूप विचारतां स्वक्षेत्र मात्र छे, स्वकालरूप विचारतां स्वकाल मात्र छे, स्वभावरूप विचारतां स्वभाव मात्र छे, तिहितैं इसो कह्यो जो वस्तु सो अखण्डित छे। अखण्डित शब्दको इसो अर्थ छे।

भावार्थ—ज्ञानी ऐसा अनुभव करता है कि मैं एक अखण्डित चेतनामात्र वस्तु हूं। स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावसे अस्ति रूप होता हुआ भी मैं अखण्डित हूं, ऐसा नहीं कि मेरा द्रव्य कोई और हो, क्षेत्र कोई और हो, काल कोई और हो, भाव कोई और हो। एक ही अखण्ड असंख्यात प्रदेशमय मैं स्वद्रव्य रूप हूं अर्थात् गुणपर्याय समुदाय रूप हूं। मैं उतने ही प्रदेशवाला होकर स्वक्षेत्र रूप हूं। मैं स्वभाव पर्यायोंमें सर्व काल परिणमन रूप हूं इससे स्वकाल रूप हूं। मैं अनन्त गुणोंका व गुणांशोंका समूह रूप हूं इससे स्वभाव रूप हूं। एक ही वस्तु हूं चारि दृष्टि करि चार रूप दिखता हूं। सत्ता चार नहीं है सत्ता एक ही है। जैसे आमके पुद्गलमें सर्वांग स्पर्श रस गंध वर्ण व्यापक हैं तैसे मेरे आत्मामें सर्वांग मेरा द्रव्य क्षेत्र काल भाव व्यापक है। भेदरूप विचारते हुए जैसे आम कभी चिकना कभी मीठा कभी गंधमय कभी पीला दिखता है वैसे भेदरूप विचारते हुए जीव द्रव्य चार रूप दिखता है। अभेदमें जैसे आम एक अखंड है वैसे मैं आत्मा एक अखंड सत्तारूप वस्तु हूं। पंचाध्यायीमें यही बात बताई है—

अखंड है इसी तरह एक पदार्थमें भेदकी दृष्टिसे अनेक गुणोंका कथन किया जाता है परंतु यदि सामान्यसे व द्रव्य रूपसे देखा जावे तो वे सब एक द्रव्यरूप ही हैं। अखंड द्रव्यमें सर्व व्यापक है।

सवैया ३१ सा—जैसे एक पाको आम्र फल ताके चार अंश, रस जाली गुठली छीलक जब मानिये ॥ ये तो न बने पै ऐसे बने जैसे वह फल, रूप रस गन्ध फास अखण्ड प्रमानिये ॥ तैसे एक जीवको दरब क्षेत्र काल भाव, अंश भेद करि भिन्न भिन्न न बखानिये ॥ द्रव्यरूप क्षेत्र रूप कालरूप भावरूप, चारों रूप अलख अखण्ड सत्ता मानिये ॥ ४३ ॥

शालिनी छन्द-योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥ ९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—भावार्थ इसो—जो ज्ञेय ज्ञायक सम्बन्ध ऊपर बहुत भ्रांति चाली छे सो कोई इसो समझिसे जो जीव वस्तु ज्ञायक पुद्गल आदि देइ भिन्न रूप छ द्रव्य ज्ञेय छे। सो योंतो नहीं छे। ज्यों सारत कहिजे छे त्यों छे। अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि-अहं कहतां हौं, यः कहतां जो कोई, ज्ञानमात्रः भावः अस्मि कहतां चेतना सर्वस्व इसो वस्तु स्वरूप छूं, स ज्ञेय न एव कहतां सो हौं ज्ञेयरूप छौं परंतु इसो ज्ञेयरूप न छौं। किसे ज्ञेयरूप न छौं। ज्ञेयज्ञानमात्रः—ज्ञेय कहतां आपणा जीव तहि भिन्न छ द्रव्यको समूह तिहिको, ज्ञानमात्र. कहतां जानपनो मात्र, भावार्थ इसो—जो हौं ज्ञायक, छ द्रव्य म्हारा ज्ञेय योंतो न छे। तो क्यों छे। उत्तर इसो जो ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रज्ञेयः—ज्ञान कहता जानपना रूप शक्ति, ज्ञेय कहतां जानवा योग्य शक्ति, ज्ञातृ कहतां अनेक शक्ति विराजमान वस्तु मात्र इसा तीनि भेद, मद्वस्तुमात्रः कहतां मेरो स्वरूप मात्र छे, ज्ञेय इसो ज्ञेयरूप छौं। भावार्थ इसो—जो हौं आपणा स्वरूपको—वेद्यवेदक रूप जानों छौं तिहिते म्हारो नाम ज्ञान, जिहिते आपकरि जानिवा योग्य छे, तिहिते म्हारो नाम ज्ञेय, जिहिते इसी दोइ शक्ति आदि देइ अनंत शक्तिरूप छौं तिहिते म्हारो नाम ज्ञाता। इसा नाम भेद छे, वस्तु भेद नहीं छे। किसो छौं, ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्—ज्ञान कहतां जीव ज्ञायक छे, ज्ञेय कहतां जीव ज्ञेयरूप छे इसी कल्लोल कहतां वचनको भेद तिहिकरि, वल्गन् कहतां भेदको पावे छे। भावार्थ इसो—जो वचनको भेद छे, वस्तुको भेद नहीं छे। ज्ञेयः—इसा स्वरूप जानवा योग्य छे।

भावार्थ—आत्मानुभव करनेवाला ऐसा अनुभव करता है कि मैं ही ज्ञान ज्ञेय व ज्ञाता हूं। मैं आप ही अनुभव करने वाला हूं, आपहीको अनुभव करता हूं, अनुभव करना भी मेरा स्वभाव है। मैं एकसाथ तीनों रूपोंसे तन्मय हूं। मेरे ज्ञानमें परद्रव्य स्वयं झलको तो झलको, मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो निश्चयसे आप आपको जानने देखने वाला

है। शास्त्रोंमें यह कहा कि भगवान परमात्मा परवस्तुको जानते हैं मात्र व्यवहार है। निश्चयसे वे स्वय आप अपनेको जानते हैं। स्वात्मानुभव बिल्कुल स्वाश्रय आत्मपरिणतिको ही कहते हैं। परमात्मप्रकाशमें कहा है —

सयलवि [illegible] विलउ परमसमाहि भणंति। तेण सुहासुहभावडा मुणि सयलवि मिल्लंत ॥१९१॥

भावार्थ–सब विकल्पों या भेदोंसे रहित होनेको परम समाधि कहते हैं इसलिये मुनि सब शुभ अशुभ परभावोंका त्याग कर देते हैं।

सवैया ३१ मा—कोउ ग्यानवान कहै ग्यान तो हमारो रूप [illegible] सो हमारो रूप नांही है॥ एक नै प्रमाण [illegible] दूजी अब कहूं [illegible] आप आप [illegible] नांही है॥ [illegible] मेरो नाम [illegible] विराग [illegible] जैसे [illegible] माही है॥ [illegible] वचनके [illegible] कोउ [illegible] विलास [illegible] नाही है॥ ४४॥

चौपाई—[illegible] हमारी। तातें वचन [illegible] भारी॥

[illegible] पाकाही। [illegible] पारखा [illegible] ॥ ४ ॥

दोहा–निजस्वरूप आतम [illegible] पर [illegible]।

[illegible] पर [illegible] लियो [illegible] ॥ ४ ॥

वसन्ततिलका छन्द–क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं

क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।

तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः

परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्॥ १०॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–भावार्थ इसो–इहि शास्त्रको नाम नाटक समयसार छे। तिहितैं यथा नाटक विषै एक भाव अनेकरूप करि दिखाइजे छे तथा एक जीवद्रव्य अनेक भावकरि साधिजे छे। मम तत्त्वं सहजं कहतां म्हारो ज्ञानमात्र जीव वस्तु सहज ही इसो छ किसो छे। क्वचित् मेचकं लसति–कहतां कर्म संयोग थकी रागादि भावरूप परिणति कै देखता अशुद्ध इसो आस्वाद आवे छे। पुनः कहतां एकान्तपन इसो ही छ यों नहीं छे। इसो पुनि छे। क्वचित् अमेचकं–कहतां एक वस्तुमात्र रूप देखतां शुद्ध छे एकांत पने इसो पुनि न छे तो किसो छे। क्वचित् मेचकामेचकं–कहतां अशुद्ध परिणति रूप, वस्तु मात्ररूप एक ही बारकै देखतां अशुद्ध पुनि छे शुद्ध पुनि छे। इसो दोउ विकल्प घटै छै इसो क्यों छे। तथापि कहतां तो पुनि, अमलमेधसां तत् मनः न विमोहयति–अमल मेधसां कहतां सम्यग्दृष्टि जीवहको, तत् मनः कहतां तत्त्वज्ञानरूप छै जो बुद्धि, न विमोहयति कहतां संशयरूप नहीं भर्मै छे। भावार्थ इसो–जो जीव स्वरूप शुद्ध पुनि छै, अशुद्ध पुनि छै शुद्ध अशुद्ध पुनि छै। इसो कहता अवधारिबाको भ्रमको ठौर छे तथापि जे स्याद्वाद स्वरूप वस्तु अवधारहि छे त्याहको सुगम छे, भ्रम नहीं उपजे छ। किसो छे वस्तु-

परस्परसुसंहृत प्रगटशक्तिचक्रं-परस्पर कहतां माहोमाही एक सत्तारूप, सुसंहृत कहता मिली छे इसी छे, प्रगट शक्ति कहता स्वनुभवगोचर जो जीवकी अनेक शक्ति त्याहको, चक्र कहतां समूह छे जीव वस्तु । और किसो छे, स्फुरत कहता सर्वकाल उद्योतमान छे।

भावार्थ-यह है कि जीवका स्वभाव अनेक रूप है। इसको स्याद्वाद विना किसी विरोधको सिद्ध करता है। जब वैभाविक शक्तिकी अपेक्षा देखा जावे तो जीव अशुद्ध भी होसक्ता है। यह भी शक्ति है। जब वस्तुमात्र एकरूप देखा जावे तब यह शुद्ध ही झलकता है। दोनों स्वभावोंको एक ही वार देखो तो दोनो रूप मालूम पडता है। जैसे ज्ञानी जलके स्वभावको जानता है कि यह निर्मल व शीतल है, अग्निके संयोगसे उष्णरूप भी होसक्ता है तथापि वह ज्ञानी निर्मल जलको ही पीता है उसी तरह सम्यग्दृष्टी निर्मल आत्मस्वभावका ही स्वाद लेता है। तथापि भिन्न २ नयोंसे वस्तु स्वभावको जानता है।

जैसा तत्व०में कहा है—

ज्ञाभ्यां दृग्भ्यां विना नस्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनं । यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं स्याद्वादवादिभिः ॥२०॥

भावार्थ-जैसे दो नेत्रोंके विना भलेप्रकार पदार्थोंका अवलोकन नहीं होता है उसी-तरह निश्चय व्यवहार नयोंके विना जीव वस्तुका यथार्थ ज्ञान नहीं होता है ऐसा स्याद्वादके ज्ञाताओने कहा है-

सवैया ३१ सा—करम अवस्थामें अशुद्ध सो विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है ॥ उभै नय प्रमाण समकाल शुद्धा शुद्धरूप, ऐसो परयाय धारी जीव नाना रंग है ॥ एक ही समैमें त्रिधारूप पै तथापि याकी, अखण्डित चेतना शकति सरवंग है ॥ यहै स्यादवाद याको भेद स्यादवादी जाने, मूरख न माने जाको हियो दृग भंग है ॥ ४७ ॥

कलश-इतो गतमनेकतां दधदितः सदाप्येकता-
मितः क्षणविभङ्गुरं ध्रुवमितः सदैवोदयात् ।
इतः परमविस्तृतं धृतमितः प्रदेशैर्निजै-
रहो सहजमात्मनस्तदिदमद्भुतं वैभवम ॥ ११ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-अहो आत्मनः तत् इदं सहजं वैभवं अद्भुतं-अहो कहता संबोधन वचन । आत्मनः तत्वं कहतां जीव वस्तुको, तत् इदं सहजं कहतां अनेकांत स्वरूप इसो, वैभव कहता आत्माके गुणरूप लक्ष्मी, अद्भुत कहतां आचंभो प्रवर्ते छे । किहिने इसो छे। इतः अनेकतां गतं-इत कहतां पर्यायरूप दृष्टि देखतां, अनेकता कहता अनेक छे, इस भावको, गत कहतां प्राप्त हुओ । इतः सदापि एकतां दधत्-इत कहता कोई वस्तु द्रव्यरूपकै देखतां, सदापि एकतां दधत् कहता सदा ही एक छे इसी प्रतीतिको

उपजावै छे। और किसो छे। इत क्षणविभंगुर-इत कहता सब समय प्रति अखंड धारा प्रवाहरूप परिणवै इसी दृष्टि देखता, क्षणविभंगुर कहता विनसै छे उपजै छे। इत सदा एव उदयात् ध्रुव-इत कहता सर्वकाल एकरूप छे इसी दृष्टिक देखता, सदा एव उदयात कहता सर्वकाल अविनश्वर छे, इसो विचारता, ध्रुव कहता शाश्वतो छे। इत कहता वस्तुको प्रमाणदृष्टि देखता, परमविस्तृत कहता प्रदेशन करि लोक प्रमाण छे। ज्ञानकरि ज्ञेय प्रमाण छे। इत निजैः प्रदेशैः धृत -कहता तिस प्रमाणकी दृष्टि देखता, निजैः प्रदेशैः कहता आपणा प्रदेश मात्र, धृत कहता प्रमाण छे।

भावार्थ-यह जीव वस्तु अनेकांतमें अनेक रूप झलकती है, पर्यायोंकी अपेक्षा अनेक रूप व क्षणभंगुर। द्रव्य स्वभावकी अपेक्षा एकरूप व अविनाशी। प्रदेशोंके विस्तारकी अपेक्षा असंख्यात प्रदेशी लोक प्रमाण। ज्ञानकी अपेक्षा सर्वव्यापी। वर्तमान प्रदेशोंकी अपेक्षा शरीर प्रमाण इत्यादि अनेक रूपमें वस्तुको जानकर सम्यग्दृष्टी आत्माके स्वभावमें ही भोक्ता होते हैं। योगसारमें कहा है-

अप्पा अप्प जो मुणइ जो परभाव चएइ। सो पावइ सिवपुरगमणु जिणवरु एउ भणइ॥३४॥

भावार्थ-जो ज्ञानी परभावोंको व सब विकल्पोंको छोड़कर एक आत्माको ही आत्माके द्वारा अनुभव करते हैं वे ही मोक्षनगरमें जाते हैं ऐसा जिनेंद्रोंने कहा है।

सवैया ३१ सा—निहचै भाव दृष्टि ज्ञान तब एक रूप गुण परजय मे भावसो बहुत है॥ असंख्य प्रदेश धुवरूप सत्ता परमाण ज्ञानकी प्रभासो लोकालोकमान जुत है॥ परजै तरंगनीके अंग छिन भंगर है चतन शकति सो अखंड अचल जुत है॥ सो है जीव जगत विनायक जगत सार जाकी मौज महिमा अपार अद्भुत है॥ ४८॥

कलश-कषायकलिरेकतः स्खलति शान्तिरस्त्येकतो
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमाऽऽत्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुतः॥१२॥

खण्डान्वय सहित अर्थ-आत्मनः स्वभावमहिमा विजयते-आत्मनः कहता जीव द्रव्यको, स्वभावमहिमा कहता स्वरूपकी बड़ाई। विजयते कहता सब तहि उत्कृष्ट छे, किसो छे महिमा। अद्भुतात् अद्भुतः -कहता आश्चर्य तहि आश्चर्य छे। सो किसो आश्चर्य, एकतः कषायकलिः स्खलति एकतः कहता विभाव परिणाम शक्तिरूप विचारतां, कषाय कहता मोह रागद्वेष त्याहकी, कलिः कहता उपद्रव इसो होइकरि, स्खलति कहता स्वरूपतहि भ्रष्ट होइ परिणवै छे। इसो छओ ही छे, एकतः शान्तिः अस्ति, एकतः कहता जीवको शुद्ध स्वरूप विचारता। शान्ति अस्ति कहता चेतना मात्र स्वरूप छे रागादि—

अशुद्धपनो छतो ही नहीं। और किसो छे। एकतः भावोपहतिः अस्ति—एकतः कहतां अनादि कर्म संयोग रूप परिणयो छे तिहितै, भव कहतां संसार चतुर्गति, तिहि विषै, उपहतिः कहतां अनेकवार भ्रमण, अस्ति कहतां छे। एकतः मुक्तिः स्पृशति—एकतः कहतां जीव वस्तु सर्वकाल मुक्त छे इसो अनुभव आवै छे, और किसो छे, एकतः जगत् त्रितयं स्फुरति—एकतः कहता जीवको स्वभाव स्वपर ज्ञायक रूप इसो विचारतां, जगत्—कहतां समस्त ज्ञेय वस्तु तिहिको, त्रितय कहता अतीत अनागत वर्तमान काल गोचर पर्याय, स्फुरति कहतां एक समय मात्र काल विषै ज्ञान माहैं प्रतिबिम्ब रूप छे। एकतः चित् चकास्ति—एकतः कहतां वस्तुको स्वरूप सत्ता मात्र विचारतां, चित् कहतां शुद्ध ज्ञानमात्र, चकास्ति कहतां इसो शोभै छे। भावार्थ इसो जो व्यवहार मात्र करि ज्ञान समस्त ज्ञेयको जानै छे निश्चयकरि नहीं जानै छे, आपणा स्वरूप मात्र छे, जिहितै ज्ञेयसो व्याप्यव्यापक रूप नहीं छे।

भावार्थ—ज्ञानी जीव आत्माको अनेक स्वरूपसे जानते हैं। विभाव परिणमनकी अपेक्षा कषायरूप, संसारमें एकेंद्रियादि पर्यायरूप व स्वभावकी अपेक्षा परम वीतराग व सदा ही मुक्त रूप पहचानते हैं। व्यवहारसे सर्व ज्ञेयोंका जाननेवाला व निश्चयसे आप आपको जाननेवाला ऐसा मानते हैं। स्याद्वादीके ज्ञानमें अनेकरूप आत्माका स्वरूप झलकता है तथापि वे एक शुद्ध भावका ही अनुभव करते हैं। योगसारमें कहा है—

अप्पा दंसणु णाण मुणी अप्पा चरणु वियाणि। अप्पा संजम सील तउ अप्पा पच्चक्खाणि ॥८०॥

भावार्थ—आत्मा ही दर्शन है, ज्ञान है, आत्मा ही चारित्ररूप है, आत्मा ही संयम, शील, तप व प्रत्याख्यान है। जो कुछ है सो एक आत्मा ही है ऐसा अनुभव करो।

सवैया ३१ सा—विभाव सकति परनतिसौं विकल दीसै, सुद्ध चेतना विचारतें सहज संत है॥ करम संजोगसौं कहावै गति जोनि वासि, निहचै स्वरूप सदा मुकत महंत है॥ ज्ञायक स्वभाव धरै लोकालोक परगासि, सत्ता परवान सत्ता परवानवन्त है॥ सो है जीव जानत जहान कौतुक महान, जाकी कीरति कहां न अनादि अनंत है॥ ४९॥

मालिनी—जयति सहजतेजःपुंजमज्जत्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पोऽप्येक एव स्वरूपः।
स्वरसविसरपूर्णाच्छिन्नतत्त्वोपलम्भः प्रसभनियमितार्चिश्चिच्चमत्कार एषः ॥१३॥

खण्डान्वय सहित अर्थ—एषः चिच्चमत्कारः जयति—अनुभवको प्रत्यक्ष छे ज्ञान मात्र जीव वस्तु सर्वकाल विषै जैवतो प्रवर्तो। भावार्थ इसो—जो साक्षात् उपादेय छे। किसो छे, सहजतेजःपुंजमज्जत्रिलोकीस्खलदखिलविकल्पः—सहज कहतां द्रव्यके स्वरूप छे इसो, तेज कहतां केवलज्ञान तिहि विषै, मज्जत् कहता ज्ञेयरूप मग्न छे। इसो त्रिलोकी कहता समस्त ज्ञेय वस्तु तिहि करि, स्खलत् कहता उपज्या छे, अखिलविकल्प कहतां अनेक

कहतां सर्वकाल सर्व प्रकार, ज्वलतु कहतां परिपूर्ण प्रताप संयुक्त प्रकाशमान होउ, किसो छे, विमलपूर्ण–विमल कहतां पूर्वापर विरोध इसो मल तिहिंते रहित तथा पूर्ण कहतां अर्थ-करि गंभीर इसो छे। ध्वस्तमोहं–ध्वस्त कहतां मूल तहि उखाड्यो छे। मोहं कहतां भ्रांति जिहि इसो छे। भावार्थ इसो–जो इहि शास्त्र विषे शुद्ध जीवको स्वरूप निःसंदेहपनें कह्यो छे। और किसो छे, आत्मना आत्मनि आत्मानं अनवरतनिमग्नं धारयन्–आत्मना कहतां ज्ञान मात्र शुद्ध जीव करि, आत्मनि कहतां शुद्ध जीव विषे, आत्मानं कहतां शुद्ध जीवको, अनवरतनिमग्नं धारयन् कहतां निरंतर अनुभव गोचर करतो होतो। किसो छे आत्मा–अविचलितचिदात्मनि–अविचलित कहतां सर्वकाल एकरूप इसो छे, चित् कहता चेतना सोई छे आत्मस्वरूप जिहिको, इसो छे। नाटक समयसार विषे अमृतचन्द्र सूरि कह्यो जो साध्य साधक भाव सो संपूर्ण हुओ। नाटक समयसार शास्त्र पूरो हुओ। आशीर्वाद कहिजे छे।

भावार्थ–यहा यह कहा है कि यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। इसमें मोक्षमार्गका कथन है, शुद्ध जीवका प्रकाश है। यह सदा ही निरंतर प्रकाशमान रहो, इसको सब कोई सदा पढ़ते सुनते रहो व आत्मानुभव करते हो। इस सं० वृत्तिके कर्ता श्री अमृतचद्र आचार्य हैं, इन्होंने यह आशीर्वाद दिया है।

सवैया ३१ सा—अक्षर अरथमें मगन रहे सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा कामगविकी ॥ अमल अबाधित अलख गुण गावना है, पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥ मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा, जैसे उभै जामलौं किरण दीपै रविकी ॥ ऐसी है अमृतचन्द्र कला त्रिधारूप धरै । अनुभव दशा ग्रंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ५१ ॥

दोहा–नाम साध्य साधक कह्यो द्वार द्वादशम ठीक । समयसार नाटक सकल, पूरण भयो सटीक ॥५२॥

शार्दूलविक्रीडित छन्द–यस्माद्द्वैतमभूत्पुरा स्वपरयोर्भूतं यतोऽत्रान्तरं

रागद्वेषपरिग्रहे सति यतो जातं क्रियाकारकैः ।

भुञ्जाना च यतोऽनुभूतिरखिलं खिन्ना क्रियायाः फलं

तद्विज्ञानघनौघमग्नमधुना किञ्चिन्न किञ्चित्किल ॥ १९ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–किल तत् किंचित् अखिलं क्रियायाः फलं अधुना तत् विज्ञानघनौघमग्नं खिन्नं न किंचित्–किल कहतां निश्चासौं, तत् कहतां जिहिको औगुण कहिसी इसो जो, किंचित् अखिलं क्रियाया फलं कहता कछु एक पर्यायार्थिक नय करि मिथ्यादृष्टी जीव कहु अनादिकाल ते करि नानाप्रकार भोग सामग्री तिहिंके भोगवतां, मोह रागद्वेष रूप अशुद्ध परिणति तिहिनै कर्मको बन्ध अनादिकाल तहि थोडी निवरी, अबना

कहतां सम्यक्त्वकी उत्पत्ति तहि लेइ करि, तत्त्वविज्ञानघनौघमग्न कहता शुद्ध जीव स्वरूपके अनुभव विषै समायो होतो। भिन्न कहता मिल्यो सो, न किंचित् कहता भिन्नता कायो छे ही नहीं। जो थो सो रह्यो मिल्यो छै क्रियाको फल, यस्मात् स्वपरयो पुराद्वैत अभूत्-यस्मात् कहता जिहि क्रिया फल थकी, स्वपरयो कहता पर आत्मस्वरूप यह पर स्वरूप इसो, पुरा कहता अनादिकाल तहि लेइकरि, द्वैत अभूत् कहता द्विविधापनो हुओ। भावार्थ इसो-जो मोह रागद्वेष स्वचेतना परिणति जीवको इसो मा यो और क्रियाफल तहि कायो हुओ। यत्र अत्र अन्तर भूत-यत कहता जिहि क्रिया फल थकी। अत्र कहता शुद्ध जीव स्वरूप विषै, अंतर भूत कहता अंतराय हुओ। भावार्थ इसो-जो जीवको स्वरूप तो अनंत चतुष्टयरूप छे अनादि नहि लेइ अनंतकाल गयो जीव आपणा स्वरूपको न पायो चतुर्गति संसारको दुःख पायो, फुनि क्रियाका फल थकी और क्रिया फल तहि कायो, हुओ। यत्र रागद्वेषपरिग्रह सति क्रियाकारकैं जात-यत्र कहता जिहि क्रियाका फलथकी। रागद्वेष कहता अशुद्ध परिणति तिहिनैं, परिग्रहे कहता तिहिरूप परिणाम इसो, सति कहतां होतेसन्ते, क्रियाकारकैं जात कहता जीव रागादि परिणामइको कर्ता छे तथा भोक्ता छे इत्यादि जता विकल्प उपना तेता क्रियाका फलथकी उपना, और क्रियाका फलथकी कायो हुओ। यत्र अनुभूति भुञ्जाना-यत्र कहता जिहि क्रिया फलथकी, अनुभूति कहतां आठ कर्मके उदयको स्वाद, भुंजाना कहता भोगयो। भावार्थ इसो-जो आठही कर्मके उदय जीव अत्यन्त दुखी छे सो फुनि क्रियाका फलथकी। -

भावार्थ-यहांपर यह बताया है कि अनादिकालसे यह जीव रागद्वेष मांहमें पड़ा हुआ था। मैं कर्ता मैं भोक्ता इसी दुनियामें जकड़ा था। जिस दोषसे इसने आठ कर्म बांध और चारों गतिमें भ्रमण कर महा कष्ट पाया। इस सबका कारण अज्ञान था, इसको भेदज्ञान हुआ नहीं कि मैं कौन हूं व रागद्वेष कौन हैं इससे घोर आपत्तिमें पड़कर अपना बुरा किया। अब श्री गुरुके उपदेशके प्रतापसे या मिथ्यात्वके चले जानेसे वह सब भ्रम मिट गया और यह जीव अपने ज्ञानमई स्वभावमें जैसा था वैसा लीन होगया। तब मानो ऐसा भाया कि कुछ था ही नहीं। सब दुःखका कारण एक भ्रम था सो चला गया। स्वानुभव होगया। अपनेको सिद्ध समान अनुभव किया। परमात्मप्रकाशमें कहा है-

जइउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहि णिवसइ देउ। तइउ णिवसइ बंभु परु देहहं म करि भेउ ॥२६॥

भावार्थ-जैसा निर्मल ज्ञानमई परमात्मा सिद्ध अवस्थामें है वैसा ही परब्रह्म संसार अवस्थामें इस देहके भीतर है, निश्चयसे दोनोंमें कोई भेद नहीं है ऐसा अनुभव कर।

दोहा-अब कवि कुछ पूरव दशा कहे आपसों आप। सहज हर्ष मनमें धरे, करे न पश्चाताप ॥ ५१ ॥

सवैया ३१ सा–जो मैं आप छाडि दीनो पररूप गहि लीनो, कीनो न बसेरो तहां जहां मेरा स्थल है ॥ भोगनिको भोगि व्है करमको करता भयो, हिरदै हमारे राग द्वेष मोह मल है ॥ ऐसे विपरीत चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरे क्रियाकी ममता ताको फल है ॥ ज्ञानदृष्टि भासी भयो क्रीयासों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनकोसो छल है ॥ ५८ ॥

उपजाति छन्द–स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः

स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्त्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥ १६ ॥

खण्डान्वय सहित अर्थ–अमृतचंद्रसूरेः किञ्चित् कर्तव्यं न अस्ति एव–अमृतचंद्रसूरेः कहतां ग्रंथकर्त्ताको नाम छे तिहिको, किंचित् कहतां नाटक समयसारको, कर्तव्य कहतां करिवो, न अस्ति एव कहतां नही छे। भावार्थ इसो–जो नाटक समयसार ग्रन्थकी टीकाको कर्ता अमृतचन्द्र नाम आचार्य छता छे तथापि महान् छै। बडा छे, संसार तहि विरक्त छे। तिहि तहि ग्रन्थ करिवाको अभिमान नहीं करे छे। किसो छे अमृतचन्द्रसूरि, स्वरूपगुप्तस्य–कहतां द्वादशांगका रूप सूत्र अनादि निधन छे, कोईको कीयो नही छे इसो जानि आपको ग्रन्थको कर्तापनो नहीं मान्यो छे जिहि इसो छे। इसो क्यो छे जिहितें, समयस्य इयं व्याख्या शब्दैः कृता–समयस्य कहतां शुद्ध जीव स्वरूपकी, इयं व्याख्या कहतां नाटक समयसार नाम ग्रन्थरूप बखान, शब्दैः कृता कहता वचनात्मक छे ये शब्दराशि त्यांह करि, करी छे। किसा छे शब्दराशि, स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैः–स्वशक्ति कहतां शब्द माहि छे अर्थ सूचिवाकी शक्ति तिहि करि संसूचित कहतां प्रकाशमान हुवा छे, वस्तु कहतां जीवादि पदार्थ त्यांहका, तत्त्वैः कहता जिसो क्यो द्रव्य गुण पर्यायरूप, उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप अथवा हेय उपादेय आप वस्तुको निश्चो त्यांह करि इसा छे शब्दराशि।

भावार्थ–यहां संस्कृत श्लोकके कर्ता अमृतचन्द्र आचार्य अपनी लघुता बताते हैं कि मैं इस व्याख्याका कर्ता नहीं हूं। इस समयसारको मूल कारण शब्द है, शब्दोंमे ही यथार्थ तत्त्व झलक रहा है। मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है, मैं तो आत्मा अपने स्वरूपमें मगन हूं। तथा यह आगमका सार जो तत्त्वज्ञान है वह प्रवाहरूपसे अनादि अनन्त है। इसका कर्ता कोई नहीं होसक्ता है।

दोहा–अमृतचंद मुनिराजकृत, पूरन भयो गरंथ। समयसार नाटक प्रगट, पंचम गतिको पंथ ॥५९॥

इति श्री [illegible] राजमल्लजीकृत टीका समाप्त।

— ❧ ❧ —

दोहा—जो एकांत नय पक्ष गहि, छके कहावे दक्ष। सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ११ ॥ ग्रन्थ उकति पथ उथपे, थापे कुमत स्वकीय। सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विपरीती जीय ॥ १२ ॥ देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिने समानजु कोय। नमैं भक्तिसु सबनकूं, विनै मिथ्यात्वी सोय ॥ १३ ॥ जो नाना विकलप गहे, रहे हिये हैरान। थिर व्है तत्व न सद्दहे, सो जिय संशयवान ॥ १४ ॥ जाको तन दुख दहलसें, सुरति होत नहिं रंच। गहलरूप वर्ते सदा, सो अज्ञान तिर्यंच ॥ १५ ॥ पंच भेद मिथ्यात्वके, कहे जिनागम जोय। सादि अनादि स्वरूप अब, कहूं अवस्था दोय ॥ १६ ॥ जो मिथ्यात्व दल उपसमें, ग्रंथि भेदि बुध होय। फिरि आवे मिथ्यात्वमें, सादि मिथ्यात्वी सोय ॥१७॥ जिन्हे ग्रंथि भेदी नहीं, ममता मगन सदीव। सो अनादि मिथ्यामती, विकल वहिर्मुख जीव ॥१८॥ कह्या प्रथम गुणस्थान यह, मिथ्यामत अभिधान। अल्परूप अब वर्णवूं, सासादन गुणस्थान ॥१९॥

सवैया ३१ सा—जैसे कोउ क्षुधित पुरुष खाई खीर खांड, वोन करे पीछेके लगार स्वाद पावे है ॥ तैसे चढि चौथे पाचे छठे एक गुणस्थान काहू उपशमीकू कषाय उदे आवे है ॥ ताहि समै तहासे गिरे प्रधान दशा त्यागि, मिथ्यात्व अवस्थाको अधोमुख व्है धावे है ॥ बीच एक समै वा छ आवली प्रमाण रहे, सोइ सासादन गुणस्थानक कहावे है ॥२०॥

दोहा—सासादन गुनस्थान यह, भयो समापत बीय।
मिश्रनाम गुणस्थान अब, वर्णन करूं तृतीय ॥ २१ ॥

सवैया ३१ सा—उपशमि समकीति कैतो सादि मिथ्यामति, दुहूंनको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है ॥ अनतानुबंधी चोकरीको उदै नाहि जामें, मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहे है ॥ जहां सद्दहन सत्यासत्य रूप सम काल, ज्ञान भाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहे है ॥ याकी थिति अंतर मुहूरत उभयरूप, ऐसो मिश्र गुणस्थान आचारज कहे है ॥ २२ ॥

दोहा—मिश्रदशा पूरण भई, कही यथामति भाखि।
अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहूं जिनागम साखि ॥ २३ ॥

सवैया ३१ सा—केई जीव समकीत पाई अर्ध पुद्गल, परावर्तकाल ताई चोखे होई चित्तके ॥ केई एक अंतर महूरतमें गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोक्ष वित्तके ॥ ताते अंतर महूरतसों अर्ध पुद्गलसों, जेते समै होहि तेते भेद समकितके ॥ जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ, तबहीसों गुन गहे दोष दहे इतके ॥ २४ ॥

दोहा—अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करन करे जो कोय। मिथ्या गठि विदारि गुन, प्रगटे समकित सोय ॥ २५ ॥ समकित उतपति चिन्ह गुन, भूषण दोष विनाश। अतीचार जुत अष्ट विधि, वरनों विवरन तास ॥ २६ ॥

दोहा–क्षयोपशम वर्ते त्रिविधि, वेदक चार प्रकार। क्षायक उपशम जुगल युत, नौधा समकित धार॥ ४३॥ चार क्षपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय। क्षे षट् उपशम एकयो, क्षयोपशम त्रिक होय॥ ४४॥ जहां चार प्रकृति क्षपे, द्वै उपशम इक वेद। क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद॥ ४५॥ पंच क्षपे इक उपशमे, इक वेदे जिह ठोर। सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह और॥ ४६॥ क्षय षट् उपशम एकविदे, उपशम वेदक होय॥ ४७॥ उपशम क्षायककी दशा, पूरव षट् पदमाहि। कहि अब पुन रुक्तिके, कारण वरणी नांहि॥ ४८॥ क्षयोपशम वेदकहि क्षे, उपशम समकित चार। तीन चार इक इक मिलत, सब नव भेद विचार॥ ४९॥ अब निश्चै व्यवहार, सामान्य अर विशेष विधि। कहूं चार परकार, रचना समकित भूमिकी॥ ५०॥

सवैया ३१ सा–मिथ्यामति गांठि भेदि जगी निरमल ज्योति। जोगसो अतीत सो तो निहचै प्रमानिये॥ वहै दुंद दशासों कहावे जोग मुद्रा धारी। मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानिये॥ चेतना चिन्ह पहिचानि आपा पर वेदे, पौरुष अलप ताते सामान्य बखानिये॥ करे भेदाभेदको विचार विसतारूप, हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये॥५१॥

दोहा–थिति सागर तेतीस, अन्तर्मुहूरत एक वा। अविरत समकित रीत, यह चतुर्थ गुणस्थान इति॥ अब वरनू इकवीस गुण, अर बावीस अभक्ष। जिन्हके संग्रह त्यागसों, सोभे श्रावक पक्ष॥ ५२॥

सवैया ३१ सा–लज्जावंत दयावंत प्रसन्त प्रतीतवंत, पर दोषको ढकैया पर उपकारी है॥ सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबमें इष्ट, शिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है॥ सहज विनीत पाप क्रियासों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है॥ ५३॥

छंद–ओरा घोरबरा निशि भोजन, बहु बीजा बैंगण संधान॥ पीपर बर ऊमर कठूंबर, पाकर जो फल होय अजान॥ कंद मूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरा पान॥ फल अति तुच्छ तुसार चलित रस, जिनमत ये बावीस अखान॥ ५४॥

दोहा–अब पंचम गुणस्थानकी, रचना वरनूं अल्प।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प॥ ५५॥

सवैया ३१ सा–दर्शन विशुद्ध कारी बारह विरत धारी, सामाइक चारी पर्व प्रोषध विधि वहे॥ सचितको परहारी दिवा अपरस नारी, आठों जाम ब्रह्मचारी निरारंभी होय रहे। पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मंडे, कोऊ याके निमित्त करे सो वस्तु न गहे॥ ऐते देशव्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हें भगवंतजी कहे॥५६॥

दोहा–संयम अंश जगे जहां, भोग अरुचि परिणाम। उदै प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताका नाम ॥ ५७ ॥ आठ मूल गुण संग्रहै, कुव्यसन क्रिया नहिं होय। दर्शन गुण निर्मल करै, दर्शन प्रतिमा सोय ॥ ५८ ॥ पंच अणुव्रत आदरै, तीन गुणव्रत पाल। शिक्षाव्रत चारों धरै, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥ ५९ ॥ द्रव्य भाव विधि संयुक्त, हिये प्रतिज्ञा टेक। तजि ममता समता गहै, अन्तर्मुहूरत एक ॥ ६० ॥

चौपाई–जो अरि मित्र समान विचारै। आरत रौद्र कुध्यान निवारै ॥
सयम सहित भावना भावै। सो सामायिकवंत कहावै ॥ ६१ ॥

दोहा–प्रथम सामायिककी दशा, चार पहरलों होय। अथवा आठ पहररहै, पोसह प्रतिमा सोय ॥ ६२ ॥ जो सचित भोजन तजै, पीवे प्रासुक नीर। सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥ ६३ ॥

चौपाई–जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पालै। तिथि आये निशि दिवस संभालै ॥ गहि नव बाडि करै व्रत रख्या। सो षट प्रतिमा श्रावक आख्या ॥ ६४ ॥ जो नव बाडि सहित विधि साधै। निशि दिन ब्रह्मचर्य आराधै ॥ सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता। सील शिरोमणी जगत विख्याता ॥६५॥ तियथल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीछ भाखे मधु बैन ॥ पूरव भोग केलि रस चिंतन, गरुव आहार लेत चित चैन ॥ करि सुचि तन सिंगार बनावत, तिय परजंक मध्य सुख सैन ॥ मनमथ कथा उदर भरि भोजन, ये नव बाडि कहे जिन बैन ॥६६॥

दोहा–जो विवेक विधि आदरै, करै न पापारंभ।
सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रणथंभ ॥ ६७ ॥

चौपाई–जो दशधा परिग्रहको त्यागी। सुख संतोष सहित वैरागी ॥
समरस संचित किंचित ग्राही। सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ६८ ॥

दोहा–परकौं पापारंभको, जो न देई उपदेश।
सो दशमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥ ६९ ॥

चौपाई–जो स्वच्छंद वरते तजि डेरा। मठ मंडपमें करै बसेरा ॥
उचित आहार उदंड विहारी। सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ७० ॥

दोहा–एकादश प्रतिमा दशा, कहीं देशव्रत माहिं। वही अनुक्रम मूलसौं, गहीसु छूटे नाहिं ॥ ७१ ॥ षट प्रतिमा ताई जघन्य, मध्यम नव पर्यंत। उत्कृष्ट दशमी ग्यारवीं, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ७२ ॥

चौपाई–एक कोटि पूरव गणि लीजे। तामें आठ वरष घटि कीजे ॥
यह उत्कृष्ट काल स्थिति जाकी। अन्तमुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ॥

दोहा-सत्तर लाख किरोड मित, छप्पन सहज किरोड़। येते वर्ष मिलायके, पूरव संख्या जोड़ ॥ ७४ ॥ अंतर्मुहूर्त द्वै घड़ी, कछुक घाटि उतकिष्ट। एक समय एकावली, अंतर्मुहूर्त कनिष्ट ॥ ७५ ॥ यह पचम गुणस्थानकी, रचना कही विचित्र। अब छठे गुणस्थानकी, दशा कहूं सुन मित्र ॥ ७६ ॥ पंच प्रमाद दशा धरे, अठ्ठाइस गुणवान। स्थविर कल्प जिन कल्प युत; है प्रमत्त गुणस्थान ॥ ७७ ॥ धर्मराज विकथा वचन, निद्रा विषय कपाय। पंच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ॥ ७८ ॥

सवैया ३१ सा-पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगि चित चैनको ॥ षट आवश्यक क्रिया दर्वीत भावित साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको ॥ मंजन न करे केश लुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पै सुगंध श्वास वैनको ॥ ठाड़ो करसे आहार लघु मुंनी एक वार, अठाइस मूल गुण धारी जती जैनको ॥ ७९ ॥

दोहा-हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज। किंचित त्यागी अणुव्रती, सब त्यागी मुनिराज ॥ ८० ॥ चले निरखि भाखे उचित, भखे अदोष अहार। लेय निरखि, टारे निरखि, सुमति पंच परकार ॥ ८१ ॥ समता वंदन स्तुति करन, पडकोनो स्वाध्याय। काऊत्सर्ग मुद्रा धरन, ए षडावश्यक भाय ॥ ८२ ॥

सवैया ३१ सा-थविर कलपि जिन कलपि दुवीध मुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत हैं ॥ दोउ अठावीस मूल गुणके धरैया दोउ, सरवस्वि त्यागी व्है विरागता गहत है ॥ थविर कलपि ते जिन्हके शिष्य शाखा संग, बैठिके सभामें धर्म देशना कहत है ॥ एकाकी सहज जिन कलपि तपस्वी घोर, उदैकी मरोरसों परिसह सहत हैं ॥ ८३ ॥ ग्रीषममें धूप थित सीतमें अकंप चित्त, भूख धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ॥ डंस मसकादिसों न डरे भूमि सैन करे, वध बंध वियामें अडोल व्है रहत हैं ॥ चर्या दुख भरे तिण फाससों न थरहरे, मल दुरगंधकी गिलानी न गहत हैं ॥ रोगनिको करे न इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनीके उदै ये परिसह सहत हैं ॥ ८४ ॥

छंद-येते संकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत। लज्जा संकुच दुख धरे, नगन दिगंबर होत, नगन दिगंबर होत, श्रोत्र रति स्वाद न सेवे। त्रिय सनमुख दृग रोक, मान अपमान न वेवे। थिर व्है निर्भय रहे, सहे कुवचन जग जेते। भिक्षुक पद संग्रहे, वहे मुनि संकट येते ॥ ८५ ॥

दोहा-अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उत्कर्ष विलोय। ज्ञानावरण उदोत मुनि, सहे परीसह दोय ॥ ८६ ॥ सहे अदर्शन दुर्दशा, दर्शन मोह उद्योत। रोके उमंग अलाभकी, अंतरायके होत ॥ ८७ ॥

सवैया ३१ सा–एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात, ज्ञानावरणकी दोय एक अन्तरायकी ॥ दर्शन मोहकी एक द्वाविंशति बाधा सब केई मनसाकि केई वाक्य केई कायकी ॥ काहूको अल्प काहू बहुत उनीस ताई, एकहि समेमें उदे आवे असहायकी ॥ चर्या थिति सज्या माहि, एक शीत उष्ण माहि, एक दोय होहि तीन नाहि समुदायकी ॥८८॥

दोहा–नाना विधि सकट दशा, सहि साधे शिव पथ। थविर कल्प जिनकल्प धर, दोऊ सम निग्रंथ ॥ ८९ ॥ जो मुनि सगतिमें रहै, थविर कल्प सो जान ॥ एकाकी ज्याकी दशा, सो जिनकल्प बखान ॥ ९० ॥

चौपाई–थविर कल्प धर कछुक सरागी। जिन कल्पी महान वैरागी ॥ इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी। पूरण भई जथारथ वरनी ॥९१॥ अब वरणो सप्तम विसरामा। अपरमत्त गुणस्थानक नामा ॥ जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे। धरम ध्यान स्थिरता परकासे ॥९२॥

दोहा–प्रथम करण चारित्रको, जासु अत पद होय।
जहां आहार विहार नहीं, अप्रमत्त है सोय ॥ ९३ ॥

चौपाई–अब वरणू अष्टम गुणस्थाना। नाम अपूरव करण बखाना ॥ कछुक मोह उपशम करि राखे। अथवा किंचित क्षय करि नाखे ॥ ९३ ॥ जे परिणाम भये नहि कबही। तिनको उदै देखिये जबही ॥ तब अष्टम गुणस्थानक होई। चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ९४ ॥ अब अनिवृत्ति करण सुनि भाई। जहां भाव स्थिरता अधिकाई ॥ पूरब भाव चलाचल जेते। सहज अडोल भये सब तेते ॥ ९५ ॥ जहां न भाव उलट अधि आवे। सो नवमो गुणस्थान कहावे ॥ चारित्र मोह जहां बहु छीना। सो है चरण करण पद चीना ॥ ९६ ॥ कहू दशम गुणस्थान दु,शाखा। जहा सूक्षम शिवकी अभिलाखा ॥ सूक्षम लोभ दशा जहा लहिये। सूक्षम सांपराय सो कहिये ॥ ९७ ॥ अब उपशांत मोह गुण ठाना। कहौं तासु प्रभुता परमाना ॥ जहां मोह उपशममें न भासे। यथाख्यात चारित परकासे ॥ ९८ ॥

दोहा–जहा स्पर्शके जीव गिर, परे करे गुण रद।
सो एकादशमी दशा, उपसमकी सरहद ॥ ९९ ॥

चौपाई–केवलज्ञान निकट जहां आवे। तहां जीव सब मोह क्षपावे।
प्रगट यथाख्यात परधाना। सो द्वादशम क्षीण गुण ठाना ॥ १०० ॥

दोहा–षट साते आठे नवे, दश एकादश थान। अन्तर्मुहूरत एकवा, एक समै थिति मान ॥ १०१ ॥ क्षपक श्रेणि आठे नवे, दश अर वलि बार। थिति उत्कृष्ट जघन्य भी, अन्तर्मुहूरत काल ॥ १०२ ॥ क्षीणमोह पूरण भयो, करि चूरण चित चाल। अब सयोग गुणस्थानकी, वरणू दशा रसाल ॥ १०३ ॥

सवैया ३१ सा—जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनश गई, चौकरी अघाती जरी जेवरी समान है ॥ प्रगटे तव अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान, वीरज अनन्त सुख सत्ता समाधान है॥ जाके आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति ऐसी, इक्यासी चौर्यासी वा पच्यासी परमान है ॥ सोहै जिन केवली जगतवासी भगवान, ताकी ज्यों अवस्था सो सयोग गुणथान है ॥ १०४॥

३१ सा—जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु काउसर्ग मुद्रा थिर पाल है ॥ क्षेत्र सपरस कर्म प्रकृतीके उदे आये, विना डग भरे अन्तरिक्ष जाकी चाल है ॥ जाकी थिति पूरव करोड आठ वर्ष घाटि, अन्तर मुहूरत जघन्य जग जाल है ॥ सोहै देव अठारह दूषण रहित ताको, वनारसि कहे मेरी वदना त्रिकाल है ॥ १०५ ॥

छन्द—दूषण अठारह रहित, सो केवली संयोग । जनम मरण जाके नहीं, नहि निद्रा भय रोग । नहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति । जरा खेद पर खेद, नांहि मद वेर विषै रति । चिंता नाहि सनेह नांहि, जहां प्यास न भूख न ॥ थिर समाधि सुख, रहित अठारह दूषण ॥ १०६ ॥

छन्द—वानी जहां निरक्षरी, सप्त धातु मल नांहि । केश रोम नख नहि बढे, परम औदारिक मांहि, परम औदारिक माहि, जहां इन्द्रिय विकार नसि । यथाख्यात चारित्र प्रधान थिर शुक्ल ध्यान ससि ॥ लोकाऽलोक प्रकाश, करन केवल रजधानी । सो तेरम गुणस्थान, जहां अतिशयमय वानी ॥ १०७ ॥

दोहा—यह सयोग गुणथानकी, रचना कही अनूप ।
अब अयोग केवल दशा, कहूं यथारथरूप ॥ १०८ ॥

सवैया ३१ सा—जहां काहू जीवकों असाता उदै साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदै पाईये ॥ मन वच कायासो अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाईये ॥ जामें कर्म प्रकृतीकि सत्ता जोगि जिनकिसी, अंतकाल द्वै समैमें सकल खपाईये ॥ जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रमाण सोह, चौदहो अयोगी गुणठाना ठहराईये ॥ १०९ ॥

दोहा—चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय मूल ।
आश्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्षको मूल ॥ ११० ॥

चौपाई—आश्रव सवर परणति जोलों । जगवासी चेतन है तोलों ॥ आश्रव संवर विधि व्यवहारा । दोऊ भवपथ शिवपथ धारा ॥ १११ ॥ आश्रवरूप बंध उतपाता, संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता ॥ जो संवरसों आश्रव छीजे । ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११२ ॥

सवैया ३१ सा—जगतके प्राणि जीति व्है रह्यो गुमानि ऐसो, आश्रव असुर दुखदानि महाभीम है ॥ ताको परताप खंडिवेको प्रगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम

है ॥ जाके परभाव आगे भाग परभाव सब, नागर नवल सुम सागरको मीम है ॥ सवरको रुप घरे साधे शिव राह ऐसो, ग्यान पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ॥ ११३ ॥

चौपाई–भयो ग्रंथ संपूरण भाखा। वरणी गुणस्थानककी शाखा ॥ वरणन और कहांलों कहिये। यथा शक्ति कहि चुप व्है रहिये ॥ १ ॥ लहिए पार न ग्रन्थ उदधिका। ज्यौंज्यौं कहिये त्यौंत्यौं अधिका ॥ ताते नाटक आगम अपारा। अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ २ ॥

दोहा–समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होय।
ताते कहत बनारसी, पूरण कथै न कोय ॥ ३ ॥

सवैया ३१ सा–जैसे कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीतै कहि भांति चक्री कटकसौं लरनो ॥ जैसे कोऊ परवीण तारू भुज भारू नर, तिरै कैसे स्वयंभू रमण सिंधु तरनो ॥ जैसे कोउ उद्यमी उछाह मन मांहि घरे करे कैसे कारिज विधाता कोसो करनो ॥ तैसे तुच्छ मति मेरी तामैं कविकला थोरि, नाटक अपार मैं कहांलों याहि वरनो ॥ ४ ॥

सवैया ३१ सा–जैसे वट वृक्ष एक तामें फल है अनेक, फल फल बहु बीज बीज बीज वट है ॥ वट मांहि फल फल मांहि बीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है ॥ तैसे एक सत्तामें अनन्त गुण परयाय, पर्यायें अनन्त नृत्य तामेंऽनन्त ठट है ॥ ठटमें अनन्त कला कलामें अनन्त रूप, रूपमें अनन्त सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ५ ॥ ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उड़े सुमति खग होय। यथा शक्ति उद्यम करे, पार न पावे कोय ॥ ६ ॥

चौपाई–ब्रह्मज्ञान नभ अन्त न पावे। सुमति परोक्ष कहांलों धावे ॥
जिहि विधि समयसार जिनि कीनो। तिनके नाम कहू अब तीनो ॥ ७ ॥

सवैया ३१ सा–प्रथम श्रीकुंदकुन्दाऽचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥ ताहीके परम्परा अमृतचन्द्र भये तिन्हे संसकृत कलश समारि सुख लयो है ॥ प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोयो है ॥ शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादिहीको भयो है ॥ ८ ॥

चौपाई–अब कछु कहूं यथारथ वानी। सुकवि कुकवि विकथा कहानी ॥ प्रथमहि सुकवि कहावे सोई। परमारथ रस वरणे जोई ॥ ९ ॥ कलपित बात हिए नहि आने। गुरु परम्परा रीत बखाने ॥ सत्यारथ सैली नहि छंडे। मृषा वादसों प्रीत न मंडे ॥ १० ॥

दोहा–छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रमान।
जो इहविधि रचना रचे, सो है कवि सुजान ॥ ११ ॥

चौपाई–अब कहों है जैसा। अपराधी हिय अन्ध ...जे जिसमों ॥१२॥ ...
रस वरणे हितसों।

परमारथ पथ भेद न जाने ॥ वानी जीव एक करि बूझे। जाको चित जड ग्रंथ न सुझे ॥१३॥ वानी लीन भयो जग डोले। वानी ममता त्यागि न बोले ॥ है अनादि वानी जगमांही। कुकवि बात यह समुझे नांही ॥ १४ ॥

सवैया ३१ सा–जैसे काहु देशमें सलिल धारा कारंजकि, नदीसो निकसी फिर नदीमें समानी है ॥ नगरमें ठोर ठोर फैलि रहि चहुं ओर। जाके ढिग वहे सोई कहै मेरा पानी है ॥ त्योंहि घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहीकी वानी है ॥ करम कलोलसों उसासकी बयारि बाजे, तासों कहे मेरी धुनी ऐसो मूढ प्राणी है ॥ १५ ॥

दोहा–ऐसे है कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दोर। रहे मगन अभिमानमें, कहे औरकी और ॥ १६ ॥ वस्तु सरूप लखे नहीं, वाहिज दृष्टि प्रमान। मृषा विलास विलोकिके, करे मृषा गुण गान ॥ १७ ॥

सवैया ३१ सा–मांसकी गरंथि कुच कंचन कलश कहे, कहे मुख चंद जो सलेषमाको घरु है ॥ हाडके सदन याहि हीरा मोती कहे ताहि, मासके अधर ऊठ कहे बिंब फरु है ॥ हाट दंड भुजा कहे कोल नाल काम जुधा, हाडहीके थंभा जंघा कहे रंभा तरु है ॥ योंही झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि, येते पर कहे हमे शारदाको वरु है ॥ १८ ॥

चौपाई–मिथ्यामति कुकवि जे प्राणी। मिथ्या तिनकी भाषित वाणी ॥
मिथ्यामति सुकवि जो होई। वचन प्रमाण करे सब कोई ॥ १९ ॥

दोहा–वचन प्रमाण करे सुकवि, पुरुष हिये परमान।
दोऊ अंग प्रमाण जो, सोहे सहज सुजान ॥ २० ॥

चौपाई–अब यह बात कहूंहं जेसे। नाटक भाषा भयो सु ऐसे ॥ कुंदकुंदमुनि मूल उधरता। अमृतचंद्र टीकाके करता ॥ २१ ॥ समेसार नाटक सुखदानी। टीका सहित संस्कृत वानी ॥ पंडित पढे अरु दिढमति बूझे। अलप मतीको अरथ न सूझे ॥ २२ ॥ पांडे राजमल्ल जिनधर्मी। समयसार नाटकके मर्मी ॥ तिन्हे गरंथकी टीका कीनी। बालबोध सुगम करि दीनी ॥२३॥ इहविधि बोध वचनिका फैली। समे पाइ अध्यातम सैली ॥ प्रगटी जगमांही जिनवाणी, घरघर नाटक कथा बखानी ॥ २४ ॥ नगर आगरे मांहि विख्याता। कारण पाइ भये बहुज्ञाता ॥ पच पुरुष अति निपुण प्रवीने। निसिदिन ग्यान कथा रस भीने ॥ २५ ॥

दोहा–रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम। तृतिय भगोतीदास नर, कोरपाल गुन धाम ॥ २६ ॥ धर्मदास ये पच जन, मिलि बैठहि इक ठोर। परमारथ चरचा करे, इनके कथा न और ॥ २७ ॥ कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं और सिद्धंत। कबहूं बिंग

बनायके, कहे बोध बिरतान्त ॥ २८ ॥ चित्रंवकोर अरु धर्म पुर, दुमति भगौतीदास। धैनुर ग्राम धिरता भये, रूपचन्द परकाश ॥ २९ ॥ इसविधि ज्ञान प्रगट भयो, नगर आगरे माहिं। देश देसमें विस्तरे, मृषा देशमें नाहिं ॥ ३० ॥

चौपाई–जहां तहां जिनवाणी फैली। लखे न सो जाकी मति मैली ॥
जाके सहज बोध उतपाता। सो ततकाल लखे यह बाता ॥ ३१ ॥

दोहा–घटघट अन्तर जिन बसे, घटघट अंतर जैन।
मत मदिराके पानसो, मतवाला समुझैन ॥ ३२ ॥

चौपाई–बहुत बड़ाई कहांलों कीजे। कारिज रूप बात कहि लीजे ॥ नगर आगरे माहि विख्याता। बनारसी नामे लघु ज्ञाता ॥ ३३ ॥ तामें कवित कला चतुराई। कृपा करे ये पाचौं भाई ॥ ये प्रपंच रहित हित खोले। ते बनारसीसों हसि बोले ॥३४॥ नाटक समयसार हित जीका। सुगम रूप राजमल टीका ॥ कवित बद्ध रचना जो होई। भाषा ग्रन्थ पढ़े सब कोई ॥ ३५ ॥ तब बनारसी मनमें आनी। कीजे तो प्रगटे जिनवानी ॥ पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी। कवित बधकी रचना कीनी ॥ ३६ ॥ सोरहसै तिरानवे बीते आसु मास सित पक्ष वितीते ॥ तेरसी रविवार प्रवीणा। ता दिन ग्रन्थ समापत कीना ॥३७॥

दोहा–सुख निधान शक बधनर, साहिब साह किरान। सहस साहि सिर मुकुट मणि साह जहां सुलतान ॥ जाके राजसु चैनसो, कीनों आगम सार। इति भीति व्यापे नही यह उनको उपकार ॥ ३९ ॥ समयसार आतम दरब, नाटक भाव अनन्त। सोहै आगम नाममें, परमारथ विरतन्त ॥ ४० ॥

इति श्री परमागम समयसार नाटक श्री अमृतचन्द्र आचार्यकृत कलशा पाडे राजमलकृत भाषा टीका बनारसीदासकृत कवित्त पद त्रिविध नाम ग्रन्थ समाप्त।

इस राजमलीय टीकाको प्रसिद्ध करानेके लिये लिखकर पूर्ण किया। मिती आश्विन सुदी १४ गुरुवार वीर स० २४ ९ वि० स० १९८६ ता० १७ अक्टूबर सन् १९२९।

तुच्छबुद्धि–ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद,
धाराशिव उर्फ उसमानाबाद निजाम राज्य–जिला शोलापुर (दक्षिण)।

—>>※<<—

लेखककी प्रशस्ति।

दोहा–अग्रवाल शुभ वंशमें, जन्म लखनऊ जास। पिता सु मक्खनलाल हैं, पुत्र तृतिय हूं तास ॥१॥ उन्निससै पैंतिस बरस, विक्रम संवत जान। जन्म सुकार्तिक मासमें सीतल नाम बखान ॥२॥ बत्तिस वय अनुमानमें, तज प्रपंच दुखदाय। श्रावक व्रत निज शक्ति सम, धरे आत्म सुखदाय ॥ ३ ॥ भ्रमण करत साधत धरम, वर्षाऋतु इक थान। वसत ज्ञान संग्रह करण, संगति लखि सुखदान ॥४॥ विक्रम छयासी उन्निसै, उन्निस उन्नित माहिं। धाराशिव वर्षाऋतु, रहा आन सुख छांहि ॥ ५ ॥ दो सहस्र ऊपर भये, जैनी नृप करकन्डु। उत्तर दिश पर्वत तले, गुफा मांहि गुण मडु ॥६॥ पार्श्वनाथ जिन बिम्बसो, पद्मासन धार। ध्यानमई पाषाणमय, रच्यो हस्त नौ सार ॥ ७ ॥ दर्शन पूजन जासको, करत पाप क्षय होय। स्वानुभूति निजमें जगे, सुख उपजै दुख खोय ॥ ८ ॥ हूमड़ जाति शिरोमणी, नेमचंद गुणवान। भ्राता माणिकचंद हैं, गृही धर्मरत जान ॥९॥ हीराचन्द सुश्रेष्ठि हैं, श्री शिवलाल बखान। नेमचन्द अध्यातम प्रिय, जाति खण्डेला जान ॥ १० ॥ श्री नेम पुत्री गुणी, माणिकबाई नाम। धर्म प्रेम वात्सल्ययुत, धरत शांत परिणाम ॥ ११ ॥ इत्यादि साधर्मि यह, करत शास्त्र रस पान। करत जात आनंदसे, बढ़त ज्ञान अमलान ॥१२॥ नूतन मंदिर एक है, ऋषभदेव भगवान। पार्श्वनाथको जीर्ण है, मंदिर दूनो जान ॥ १३ ॥ थिरता लखिके ग्रन्थ यह, लिखो स्वपर सुखदाय। जग प्रकाश हो भवि पढ़ें, निज रुचि अनुपम पाय ॥१४॥ राजमल्ल ज्ञानी भये, टीका रची महान। समयसार कलशानकी, भाषामय सुखदान ॥१५॥ कुन्दकुन्द आचार्यकृत, समयसार अविकार। प्राकृतमयका भाव लखि सुधा चंद्र गुणकार ॥१६॥ संस्कृत कलशे भर दिये, अध्यातम रस सार। पान करत ज्ञानी जना, लहैं तृप्ति अविकार ॥ १७ ॥ राजमल्लकी बुद्धिको, हो प्रकाश बहु थान ॥ लिखे ग्रन्थ हित जानके, ज्ञान ध्यान सुख खान ॥१८॥ आश्विन सुदि चौदस दिना, वार वृहस्पति जान। नेमचंदके थानमें, कियो पूर्ण अघ हान ॥ १९ ॥ पढ़ो पढ़ावो भविक जन आध्यातम रुचि धार। भेद ज्ञान पावो विमल, प्रगटो आतम सुखकार ॥ २० ॥ लगो मन निज तत्त्वको, हो अनुभूति निजात्म। निजमें थिरता पायके, पावो पद परमात्म ॥ २१ ॥ निज सुख निजमें ही बसे, निजसे प्रगट होय। निजको ही दीनं सदा। निज ज्यों थिर होय ॥ २२ ॥ आपी मारग मोक्षका, आपी मोक्ष स्वरूप। निज आपी आपी लखा, आतम अनूप ॥ २३ ॥ निश्चय रूपी आपको, शरण परम सुखदाय। व्यवहारनि पंच परमगुरु, हैं शरण सुखदाय। २४ ॥ अर्हत्सिद्धाचार्यको, उपाध्याय यतिनाथ। बार बार वन्दन करूं, हाथ जोड़ दे माथ ॥ २५ ॥